करणीदान बारहठ



सूर्य प्रकाशन मन्दिर

बीकानेर

खुरदरा आदमी

प्रकाशक : सूर्य प्रकाशन, मन्दिर बीकानेर
मूल्य : पैंतालीस रुपये मात्र
संस्करण : प्रथम, 1986
आवरण : अवधेश कुमार
मुद्रक : पराग प्रिंटर्स दिल्ली-32

KHURDARA AADAMEE by Karneedan Barhath Price Rs. 45/-

मेरे ग्रामीण भाइयों को

जो

अब भी शोषित एवं शासित हैं

खुरदरा आदमी

सोने का सूरज उठते ही मेरे गाव को सिंदूरी रग से रग देता, उसकी पहली किरण मेरे घर के मडेरे को चूमती, फिर सरकती-सरकती सारे आगन मे फैल जाती। दोपहर तक सारा गाव जैसे धूप मे नहाने लगता। सोते हुए गाव को धीमी-धीमी हवा सहलाती, लोरी देती और चादनी चादी की झीनी चादर का आवरण डाल देती। गोबर-मिट्टी से लिपा-पुता गाव धूप, चादनी में दिन-रात मुस्काता रहता।

शनिवार के दिन जल्दी छुट्टी हो गई थी, इसलिए मैं और मोमन दोनों गाव के बाहर चल पड़े। दोपहर की धूप खाने को दौड़ती होगी, लेकिन हम तो धूप और छांव में अभी भेद नही कर पाये। हमारा विचार था कि पीपल के पास कुछ साथी मिल जायेंगे, वही हम 'कुराडडी' खेलेंगे, लेकिन कोई भी नही था, हम बहुत निराश हो गए। सामने तालाब का मैला पानी अपनी दुर्गन्ध के साथ पडा हुआ था, उसमें कुछ भैंसे लेट रही थीं। चारों ओर आखें फैलाकर देखने पर भी कोई आदमी नजर नहीं आया, तब हमने विचार किया कि सेठ रामकुमार वाली तलैया में स्नान करते चलें। इस तलैया तक का रास्ता वीरान ही था।

तलैया की मेड पर खडे होकर हम दोनों ने नजर पसारी, लेकिन कोई दिखाई नही दिया। दरअसल, इस तलैया का पानी पीने के काम में लिया जाता है, इसलिए इसमे स्नान करना मना था। स्नान करने पर . का डर था और फिर पीटे जाने का। मोमन बड़ा था और सम[illegible]
लिए मोमन ने पहले तो मेरी ड्यूटी लगा दी कि तू देखना

कर लू। लेकिन फिर दोनों ने मिलकर यह निर्णय लिया— इस दोपहरी में कौन आता है, यार, चलो दोनों एक साथ ही स्नान कर लेते है।

हम दोनो ने अपनी-अपनी कमीजें उतारीं और फिर कच्छे। दोनों पानी मे प्रवेश कर गए। मस्ती मे हाथो, पैरो से पानी को पीटते रहे, पीटते रहे। अधिक देर नही हो पायी कि खुद सेठ रामकुमार का सिर मेड के ऊपर से दिखाई दिया। भय के मारे हम दोनो भाग खड़े हुए। खेतों की ओर— नग धड़ग। एक 'कैर' की ओट मे छिपकर देखते रहे। सेठ आया, उसने हमारे कपड़े उठाये और चलने बना। मेरा दिल तो धड़कने लगा। पास मे बैठे मोमन ने सेठ को एक गदी गाली निकाली। मैंने पूछा—'अब क्या करेंगे, मोमन ?'

—अबे, डरता क्यो है, स्साले। उसने मुझे भी गाली निकाली।

—डरते यो है कि अब घर कैसे जायेंगे?

फिर हम दोनों ने अपनी गलती महसूस की कि हमें नहाते समय अपनी कच्छी तो रखनी ही चाहिए थी।

मैं बारह साल का था और मोमन मेरे से एक साल बड़ा। उसकी मा मेरी मां को बार-बार यह बात कहा करती थी—मेरा मोमन तेरे सम्पत से एक ही साल बड़ा है, फिर भी कितना बड़ा लगता है। वह अपने भूरे बाल टटोल कर दम भरता था—देख, अब मैं जल्दी ही जवान होने वाला हू। दरअसल, जवान होने का हरेक को शौक होता है। उसमे अभी जवानी के लक्षण थे भी नही, लेकिन कुछ बनावटी लक्षण दिखलाने की व्यर्थ की चेष्टा करने का आदी हो गया था वह। यहा तक कि वह अपनी होने वाली बहू की भी कल्पना करने लग गया था। अपने अड़ोस-पड़ोस की लड़कियों से भी दोस्ती करने लगा था। उसने कई बार पड़ौसी दरोगे की लड़की शेरकी से अपने प्रेम की बात भी बताई थी। शेरकी जरूर उससे बड़ी थी। लेकिन वह कहता था कि वह उससे प्रेम करती है। वह उसकी बाजरी की झुरमुट की कहानी सुनाता था। शेरकी उसे बुलाकर ले गई थी। उसके सामने नगी होकर लेट गई थी। उसने उसका सब कुछ देख लिया था। मुझे यह कहानी गंदी लगती थी, लेकिन वह उसे मजा लेकर सुनाता था।

शायद तीन साल मे मैंने नगा रहना बन्द कर दिया था, यही बात

मोमन कह रहा था।

—अब कैसे करेंगे, यह कहकर मोमन ने चिन्ता प्रकट की। इस समय सेठ दूर चला गया था, घरों में ओझल हो गया था।

—इससे अच्छा था, वह हमें पीट लेता।

मानव मूल रूप में रहना पसन्द नहीं करता, और यह संस्कार हमें मिल चुके थे।

—दोपहर का समय है, यार कौन देखता है?

--सभी लोग खेतों में ही तो हैं।

—मेरा बाप तो खेत में है और मां भी। घर भी तो बन्द है।

—मेरे पिताजी नौकरी पर हैं। मैंने भी बताया।

फिर अड़ौसी-पड़ौसी की चिन्ता हुई थी। कुछ बूढ़े घरों में जरूर रहते हैं। यह भी चर्चा आई।

—तो क्या यहीं थोड़े ही पड़े रहेंगे, कुछ देर बाद यहां भी तो आदमी आने लगेंगे। मोमन ने कुछ साहस बटोरा।

सचमुच उस वक्त हम दोनों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी : ओठ सूखते जा रहे थे।

मोमन ने फिर हिम्मत दिखाई—यार, भाग कर घरों में घुस जायेंगे, आगे-पीछे हाथ दे लेंगे।

—तो चलो। मैंने भी साथ दिया।

और सचमुच हम तीव्र गति से भागे, इतनी गति से कि हमारा मूलरूप किसी को दिखाई न दे।

मैं घर में घुसा तो घर में कोई न था। मैं अपनी रसोई में छिपकर बैठ गया। बहुत देर तक तो सांस उखड़ा-उखड़ा रहा। मैं केवल अपने ही बारे में सोच रहा था, आगे बीतने वाली घटना के बारे में। मैं बार-बार हनुमान जी का नाम ले रहा था—'संकट मोचन नाम तिहारो' हमारे बीच में बड़ी चर्चा रहती थी कि हनुमान जी सबसे शक्तिशाली देवता है। ५१
उन्होंने साथ भी दिया। पिताजी आए, तब मैं और दीवार से [illegible]
लेकिन उन्होंने मुस्करा कर मेरी ओर कपड़े फेंक दिए और मैंने ५८ [illegible]
तब मैंने महसूस किया कि मैंने नये सिरे से जीना शुरू किया था

मुझे मालूम हुआ कि सेठ पिताजी से रास्ते में मिल गया था। पिताजी से शिकायत भी की और कपडे भी लौटा दिए।

चौथी क्लास तक के इस स्कूल में दो ही मास्टर थे। बड़ा मास्टर रघुवीरसिंह था जो दूसरी-तीसरी चौथी क्लास को पढ़ाता था। रघुवीरसिंह ठिगने कद का आदमी, सिर पर काली टोपी रखता था और हाथ में हैड-मास्टरी बेंत। उसकी ठोडी आगे को थी, इसलिए सभी लडके उसे 'चीमिया' मास्टर कहते थे। गाव वालो ने भी यह शब्द लडकों से ही पकड़ा था। उन्होंने भी उसे बाद में यह कहना शुरू कर दिया था। मैं अपनी क्लास में आखिर बैठता था। मुझे सब 'झंपू' कहते थे। मैं सबसे छोटा था और सभी से डरता था इसलिए 'झंपू' शब्द मेरे लिए उपयुक्त ही था। मास्टरजी सवालों पर अधिक जोर देते। सवाल का उत्तर न मिलने पर दो डंडे लगाते। मेरा शायद ही कोई सवाल ठीक होता, इसलिए हर सवाल के बाद दो डडे खाने लाजमी थे। इन डडो से बचने के हम लोग कई उपाय करते थे। सबसे बड़ा उपाय तो यह था कि हम सकट मोचन हनुमान जी का बहुत पाठ करते। राम को भी हम कम शक्तिशाली नहीं मानते थे। रास्ते पर दीवारों पर 'राम' का नाम लिखा रखते थे। उसको चुचकारते हुए स्कूल पहुचते। इससे हमें शायद ही लाभ मिला था। लेकिन विश्वास यही था कि हमारी ही आस्था में कमी है, देवी-देवता तो शक्तिशाली होते ही हैं।

हमारा स्कूल सरकारी होते हुए भी सरकारी नही था। उसमें सबसे बडी खराबी यह थी कि उसका कोई निश्चित टाइम नही था। सुबह 'कलेवा' करते ही स्कूल जाना पड़ता, दोपहर को खाने की छुट्टी मिलती। फिर शाम को ही छुट्टी मिलती। कभी-कभी शाम को खेल-कूद भी होता। हमारा हैड-मास्टर कबड्डी अधिक खिलाता। अन्त में मैं ही बचता। मैं कबड्डी खेलने वाले की टाग पकड लेता और वह मुझे खीचता हुआ 'लाइन' के हाथ लगा देता। लेकिन मुझे फिर भी शाबाशी मिलती।

हमारा स्कूल इतवार को भी नही होता। उस दिन स्कूल हैडमास्टर के घर पर लगता। हम बैठे-बैठे पढते रहते और हैडमास्टर को मन ही मन गाली निकालते— स्साला, इतवार को भी छुट्टी नहीं करता।' बड़े लडके

हाथ जोड़कर निवेदन करते—'मास्टरजी, हम आपको कतीरे, ककड़ी लाकर देंगे।' तब हैडमास्टरनी हमारी सिफारिश करती। हमें छुट्टी मिल जाती। हमारी हैडमास्टरनी एक गोरे रंग की थी, धोती पहनती, बहुत सुन्दर लगती थी। एक दिन हैडमास्टर और हैडमास्टरजी अपने कमरे में एक पलग पर बैठे बात कर रहे थे। क्या पता क्या बात कर रहे थे। फिर उन्होंने अपना दरवाजा बन्द कर लिया। मोमन ने किवाड़ों के दराज में से देखना शुरू कर दिया। उसने मुझे भी दिखाया। तब उसने बताया, शेरकी मेरे साथ ऐसे ही करती है। हैडमास्टरनी की गोरी, चिट्टी पिंडलियां बिलकुल नंगी अवस्था में हवा में झूल रही थीं। हैडमास्टर की मूछें उसके सुन्दर मुख पर पड़ी थीं। उस समय मुझे हैडमास्टरनी पर ही दया आयी थी—बेचारी को यह नरपशु···। क्योंकि मेरे सामने तो हैडमास्टर का वही रूप था—हाथ में डंडा और दांत भींचकर तड़ातड़—राक्षस कहीं। का लेकिन मोमन ने बताया—हैडमास्टरनी हैडमास्टर से प्यार करती है जैसे शेरकी मेरे से। बाद में मैं हैडमास्टरनी को देखता तब उसकी गोरी पिंडलियां ही याद आतीं, जैसे कि उसका औरत रूप सारा का सारा पिंडलियों में ही समाया हुआ था। मैं हमेशा उसे उसकी धोती के नीचे से देखता, कभी वह बर्तन मांजती, रसोई बनाती, सब्जी काटती। मैं चाहता कि वह थोड़ी-सी धोती ऊंची कर ले मैं उसकी गोरी पिंडलियों को फिर से देख सकूं, किन्तु ऐसा अवसर कभी आया ही नहीं।

एक दिन हमारा हैडमास्टर और दूसरा मास्टर दोनों चिलम सुलगाये बाहर बैठे धूआं फेंक रहे थे। हम तो यही चाहते थे कि वह बाहर ही बैठा रहे और हम उस निर्दयी डंडों से बच जायें। इतने में बनवारी नाम के लड़के ने एक शरारती लड़के जुगलाल से आकर कहा, तुझे हैडमास्टरनी बुला रही है।

तब जुगलाल ने लगते ही कहा—क्यों, उसने हैडमास्टरनी से बदले में कुछ मांगा। वह मांग नंगी भाषा में थी। मैं तो उसका अर्थ नहीं समझा था, मैंने लगभग अनुमान लगाया कि शायद यह मोमन वाली बात है। सारी क्लास हँस पड़ी थी। जुगलाल नहीं गया। थोड़े ही देर में ह[illegible] गया। बनवारी ने उसकी शिकायत कर दी—गुरुजी, [illegible]

ने बुलाया था। वह गया नहीं। इसने कहा, मुझे वह क्या देगी ? शायद हैडमास्टर उसका अर्थ समझ गया। उसने हँसते हुए जुगलाल का हाथ पकड़ा, चल खड़ा हो, तुझे दिलाऊं। तब जुगलाल झेंप गया। वह गिड़गिड़ाने लगा—गुरुजी, ऐसे कहा ही नहीं, बनवारी झूठ बोलता है।

—चल बे, खड़ा हो, तुझे दिलाऊं।

—नहीं, गुरुजी।

—अरे, खड़ा तो हो

—नहीं, गुरुजी।

—नालायक कहीं का, अभी से······और हैडमास्टर की ठोडी और आगे आ गई। उसे गुस्सा नहीं आया था। उसे धोती का आगे का हिस्सा इकट्ठा किया और कुर्सी पर बैठ गया। उसने हमें सवाल बोल दिया—यदि एक खेत को ····।

दूसरे दिन से जुगलाल स्कूल नहीं आया। मोमन ने मुझे सारी बात समझा दी।

पीथा जाखड़ हमारे घर आता, कभी-कभी, हाथ में माला लिए—राम ही राम, राम-राम। उसको देखते ही मेरे पिताजी का मुंह फक हो जाता, खून जैसे पीला पड जाता, हाथ-पैर ढीले पड़ जाते। पिताजी कहते—'आओ चौधरी, दूध लाओ, भई चौधरी के लिए।

—राम ही राम, राम ही राम, नहीं भई, दूध नहीं अभी रोटी खाकर आया हू, राम ही राम।

मा घूंघट निकाल कर दूध का गिलास उसके सामने कर देती।

—बहू बड़ी अच्छी है, राम ही राम, राम ही राम वह हाथ में माला रखता और दूसरे हाथ से दूध का गिलास गट-गट्-गट् खींच लेता।

मुझे उस दूध पीने पर बड़ा गुस्सा आता। मां मुझे तो इंकार कर देती और इस दुष्ट को दूध पिला देती है। मैं मां पर गुस्सा करता तब मां मुझे समझाती—बेटा चौधरी अपने पैसे मांगता है। इसने अपनी जमीन इसके बदले में ले रखी है।

— अच्छा मा, कब से ?

—तेरे बाप की शादी हुई थी तभी से

—कितने पैसे है, मा, तीन पैसे तो मेरे पास पड़े हैं। सचमुच मैंने दियासलाई की खाली पेटी मे तीन पैसे इकट्ठे कर रखे थे।

—पूरे पाच सौ रुपये और ब्याज।

—अच्छा, तब मैं अपने तीन पैसो का ओछापन समझने लगा था।

—कब छुडालेंगे ना ? मैंने हिम्मत करके पूछा जैसे कि मैं अभी जमीन छुडाने की हिम्मत जुटा चुका हू।

मा ने सगर्व कहा—जब तू बडा हो जायगा।

और मैं बाहर खेलने भाग गया।

मैं कभी-कभी मा के पास खडे होकर अपने आप को नापता—मा, देख मैं बडा हो रहा हूं। तेरी कांख तक को आ गया हू। इस बार खूब दूध पीऊगा, तब अगली बार तेरे कधे तक आ जाऊगा।

मा इस दूध के लिये बहुत जल्दी सबेरे उठती। अपनी अकेली गाय को चारा डालती, उसके बैठने की जगह सवारती, फिर दूध दुहती। एक छोटी-सी बिल्ली थी हमारे घर मे। बहुत प्यारी थी वह। दूध दुहते समय वह मां पास पहुच जाती—म्याऊ—म्याऊ, ऐसे पुकारती वह। फिर साथ-साथ ही मा के पास आ जाती। मां उसे कटोरी मे दूध डाल देती वह दूध पीकर मेरे पास आकर सो जाती।

मा दही डालती, तब वह फिर पास मे बैठ जाती। दही ठंडा होता रहता, वह पास में ही बैठी रहती। कोई कुत्ता पास मे आ जाता, वह पजा मारती। कुत्ता भाग जाता। मा उसी के भरोसे दही छोडकर अपने काम मे लगी रहती।

सुबह उठकर मैं हाथ-मुह धोता। मा रात की खिचड़ी और दही डालती। तब तक छोटी बहन मगनी भी उठ जाती। बिना हाथ-मुंह धोए ही वह मेरे साथ बैठने की कोशिश करती,। मैं उसे फटकार देता। तब वह मा के पास जाकर शिकायत करती। तब तक मैं अपनी खिचडी साफ कर जाता। कभी-कभी वह और मैं बराबर बैठ जाते। तब [illegible]
दही डालने का झगडा शुरू कर देता। मै ज्यादा मागता, [illegible]
मागती। इस प्रकार कई बार-छीना झपटी हो जाती।
बाल काफ़ी बढ़ गए थे। मैं बाल खीच देता और वह रो

बचपन में भाई-बहनों में क्यों विवाद रहता है और अब तो इतना लम्बा फासला हो गया कि दो घड़ी का मिलन भी कठिन है।

पिताजी पुलिस में सिपाही थे यानी कांस्टेबल। जमाना ही ऐसा था कि आदमी तो खुरदरा था, लेकिन उसका दिल गीला होता था। इसलिए सोचने का तरीका किरकिरा नहीं होता था। वे गांव के थाने में नौकरी करते थे। उनका अफसर था एक मुसलमान थानेदार। पिताजी उनकी रोटी पकाते थे। उनका परिवार वहां नहीं रहता था। उसके घर में प्रायः 'मीट' बनता था। पिताजी कभी-कभी 'मीट' घर पर भी लाते थे। मुझे वह 'मीट' स्वादिष्ट लगता था। इसलिए उनकी प्रतीक्षा में मैं खिचड़ी नहीं खाता था।

पुलिस की ड्यूटी बड़ी अजीब होती है। वे महीने बेकार भी रह सकते हैं तो महीनों ड्यूटी पर। वे प्रायः थानेदार साहब के साथ ही बराबर जाते थे। जब वे बाहर जाते, हमारे घर पर पड़ौसी खाती की लड़की सोती थी—चुन्नी। चुन्नी गेहुए रंग की मोटी-मोटी लड़की थी और थी अभी कुंवारी। रात को वह मुझे साथ सुला लेती। मां बहुत देर तक बातें करती रहती। चुन्नी मां को 'काकी' यानी 'चाची कहती थी। चुन्नी कहती—काकी, कहानी सुना। मां बच्चों की कहानी सुनाती। मां के पास नई कहानी कहां से आती। कुछ ही कहानियां थीं उसके पास। उन्हीं कहानियों की वह पुनरावृत्ति करती रहती। लेकिन पता नहीं, मां को क्या आदत थी कि वह कहानी कहती-कहती बीच में ही सो जाती। चुन्नी कहती—मां काकी, सो गई? मां बीच में ही उचट कर कहती—'हूंऽऽ' फिर और कुछ बोलने लगती जिसका कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं होता। चुन्नी और मैं दोनों यह समझ लेते कि मां अब सोयेगी। मां बेचारी करे भी क्या? दिन-भर तो काम में जुटी रहती है, कहीं चैन भी नहीं। रात को पड़ते ही नींद तो आएगी ही। चिमनी तो पहले ही बुझा दी जाती है। अंधेरे में केवल मैं और चुन्नी जागते रहते। उत्पात हमेशा अंधेरा ही चाहता है। चुन्नी पहले मुझे अपने शरीर से चिपका लेती। फिर अपने सामने की दोनों गोलाइयों पर मेरा हाथ रख देती। पहले अपने कमीज के ऊपर ही, फिर कमीज के भीतर। फिर मुझे दबाने को कहती। मैं उसका आदेश ही मानता। वह मुझे चूमती—एक बार, दो बार, कई बार। फिर वह अपनी दोनों जांघों के

बीच मेरा हाथ रख देती, मुझे अपने ऊपर आने को कहती । मेरी जाघों के बीच अपना हाथ डालकर मुझे वैसे ही करने को कहती, जैसे हैडमास्टर हैडमास्टरनी के साथ कर रहा था। फरक इतना ही था कि उसकी गौरी पिंडलिया दिखाई देती थी और चुन्नी की नही। मेरी इच्छा यही रहती थी कि मैं चुन्नी की गौरी पिंडलियो को जरूर देखू जिन्हे मैं केवल महसूस कर सकता था। इस खेल से मुझे नीद आने लगती और मैं सो जाता कभी-कभी मैं रात को जाग जाता तब मैं महसूस करता कि चुन्नी की लम्बी सासे मेरे गालो पर गिर रही हैं। कमर के नीचे का सारा अग नगा पडा है। मैं उसकी जाघो पर अपने हाथ फेरता। फिर मैं अपना हाथ उसकी गोलाइयो पर फेरता। वे भी रात को नगी ही रहती थी। मुझे फिर नीद आ जाती। लेकिन कभी-कभी वह भी जग जाती और फिर वही खेल शुरू कर देती। मुझे यह भी याद है कि कभी मै छोटा था, तब मै मा के साथ सोया करता था, अपने हाथो को इसी तरह घुमाया करता था। मुझे मा के स्तनो से दूध मिलता था और चुन्नी के स्तनो से भी इसी तरह का एक रस। जब पिताजी घर होते, चुन्नी नही सोया करती थी। चुन्नी की हल्की-सी याद आती और मैं सो जाता। मा उस दिन कहानी भी नही कहती थी। एक दिन चुन्नी ने बाजरी के झुरमुट मे भी यही खेल किया। उस समय मैं उसकी गौरी पिंडलिया देख गया था। वे हैडमास्टरनी की पिंडलियो से कम गौरी नही थी। रात के बिस्तर में केवल मैं उसकी कपल्ना मात्र कर सकता था। जिस दिन चुन्नी का विवाह हुआ, उस दिन मुझे सब कुछ वीरान और उजडा-उजडा-सा लगा था। वह घूघट निकालकर विदा ले गई। वह बहुत लम्बी दीखने लगी थी। मैं उसके कमर तक ही आता था। बहुत दिनों के बाद वह फिर हमारे घर सोई थी। उस समय उसका बच्चा साथ मे सोया हुआ था।

हमारे पडोस मे मेरे बाबाजी का घर था। [illegible]
बहुत शोकीन तबीयत के थे। उन्होने अपना सारा [illegible]
खराब कर दिया। उनके बडे-बडे बाल होते थे [illegible]
एक बन्दूक। घर से निकलते थे तो शान से निकलते [illegible]

ताई के पास बहुत गहना था, लेकिन तेरे बाबा ने सारा घर एक मालण को खिला दिया। तेरी ताई बहुत नाराज होती थी, लेकिन तेरे बाबाजी इसे बहुत पीटते थे।

मा ने बताया—मैं जब इस घर में आई, मुझे बहुत काम करना पड़ता था। तेरी ताई तो लेटी ही रहती थी। मेरे फोड़े हो गए थे। सारा शरीर सूज गया था। मैं घर में घुसकर बहुत रोती थी। लेकिन इसे रत्ती-भर भी दया नहीं आयी। आखिर तेरे नानाजी मुझे आकर ले गए।

मा ने बताया—एक बार ऐसा हुआ कि तेरे ताई के कुछ गहनों की चोरी हो गई। इसने मेरे पिताजी के सिर यह चोरी मढ़ दी। लेकिन तेरे पिताजी ने चमत्कार दिखाया। तेरे पिताजी गोगाजी के भक्त हैं। ये गोगाजी के थान के आगे लेट गए, रोटी-पानी कुछ नहीं खाया-पिया। तीन दिन तक थान के आगे लेटे रहे। गहने ले गई थी पड़ोस की स्यामण। हुआ यह कि तीसरे दिन एक साप उस स्यामण औरत की छाती पर फन फैलाकर फुकार मारने लगा। औरत रातोंरात गहना तेरे पिता के सामने लाकर पटक गयी। मेरे दादा उस समय जिन्दा थे। वे बहुत नाराज हुए।

मेरी मा, दरअसल, मेरे ताया के घर से बहुत असंतुष्ट थी। उसके दिमाग में उनके प्रति पूर्वाग्रह थे। इसलिए हमारे दिमाग में भी उन्हीं पूर्वाग्रहों का धीरे-धीरे जन्म हो रहा था। खेत में भी छोटी-मोटी बातों को लेकर झगड़ा हो ही जाया करता था यानी कि उनकी गाय हमारे खेत में घुस गई या हमारा बछड़ा उनके मोठ खा गया था हमारे से कोई उनकी मतीरों तोड़ लाया या उनमें से किसी ने हमारे खेत से मिट्टा तोड़ लिया। वे किसी और से प्रेम रखने में आनन्द पाते थे, हम भी किसी और से। हमें उनकी बुराई करने में मजा आता था, शायद उन्हें भी हमारी बुराई में मजा आता होगा।

पीथा जायड़ अभी हमारा खेत कब्जे में लिए बैठा था। इस बार एक घटना हो गई कि हमारा बछड़ा उनके खेत में घुस गया। ताई ने शोर मचाया। मेरे पिताजी भी खेत में थे। वे भी बोल पड़े। तब तायाजी भी उधर से आ निकले। उन्होंने ताना मार दिया—क्या तू भी बोलता है, तेरा खेत गिरवो पड़ा है। यह बात पिताजी को बुरी लगी। उन्होंने पीथा का

चटपट हिसाब कर दिया। कुछ नगदी दिया, हमारी एक गाय दे दी; एक बछड़ा दे दिया, कुछ रुपये कहीं से उधार भी लिए। जब गाय घर से गयी, मां, मैं, मगनी बहुत रोये थे। कुन्दन भी रोने लग गया था। कुन्दन, मेरा दूसरा भाई मां की गोद में आ गया था।

दूसरे दिन घर में दो बकरियां आ गई थी। मां खुश नहीं हुई थी। मां ने बताया — बकरी भी कोई धन होता है। दिन भर 'बो-बो' करती है। न दही का सुख, न घी का, छाछ का भी सुख नहीं। यहां तक कि गोबर का भी सुख नहीं। मां दिन-भर घर में शोर करती। पिताजी पर भी इसकी प्रतिक्रिया होती। वे चुपचाप घर में आते, खा-पीकर चुपचाप घर से निकल जाते। मां अब देर से उठती। काम ही क्या था? जब बकरियों का दूध निकालती, तब शोर करती। कुछ गालियां बकरियों पर गिरती, कुछ पिताजी पर, पीथा जाखड़ तो बीच में घसीटा ही जाता, लेकिन अन्त में ताया के घर पर कई बड़बड़ाहट होती। उसका मतलब था कि जो कुछ हुआ इनकी वजह से ही हुआ। न तायाजी कुछ कहते, न पिताजी गुस्सा करते और न ही गायें जाती और ये बकरियां आती।

हम लोग सुबह दही के स्थान पर बकरियों का दूध लेते। कुन्दन तो अभी बच्चा ही था। उसे हम गोद में लेकर धूप में ले आते। मगनी, मैं और कुन्दन धूप में बैठ जाते। सर्दी के दिन थे, इसलिए धूप प्यारी लगती थी। मगनी बकरी के बच्चे ले आती। बच्चे सुन्दर थे और बहुत प्यारे लगते थे। एक बच्चा तो बहुत सुन्दर था, काला, सफेद कई तरह के नक्शे बने हुए थे उसके शरीर पर। कुन्दन उसकी पूछ पकड़ लेता, मैं उसका मुह चूमता। मगनी उसको गोद में लिए बैठी रहती। मां उदास-उदास काम करती रहती। आखिर मां का सत्याग्रह सफल हुआ ही। दो सौ रुपये में गाय घर आ गई। एक चौधरी बेगा लाल वही लेकर घर में आया, साथ में लिखा-पढ़ी करने वाला बनिया था और दो सौ रुपये पर पिताजी का अगूठा लगाकर चले गए। मुझे लगा कि पिताजी का अंगूठा कितना कीमती है, इससे गाय भैंस, ऊट, बकरी सभी आ सकते है। एक दिन मगनी ने कहा भी था—मां, पिताजी के अगूठे से अपने एक चील गाडी ले आए। सब सब उड़कर चले। लेकिन मां ने बताया पैसे चुकाने पर पता लगेगा कि यह कितनी कीमती है,

इस पैसे पर ब्याज लगेगा बेटे ब्याज। तब मुझे उस चौधरी और बनिये पर मिलकर गुस्सा आया था। मां अब संतुष्ट थी।

उस साल बड़ी बरसात हुई। खेत मे हरी बाजरी के सिट्टे खेजड़ी की टहनियों को छूने लग गए। मतीरों की बेलें धोरों पर फैली हुई थीं। मोठ टांगें पसारे लेटे हुए थे। गुवार बाजरी की बराबरी करने लगा था। हमारे स्कूल की बीस दिन की छुट्टी थी। मां ने प्रस्ताव रखा—क्यों नहीं खेत में चलें? पिताजी ने भी स्वीकार कर लिया।

खेत में एक झोंपड़ी बन गई। वहीं गाय के लिए भी एक आवास तैयार हो गया। हमारे खेत में झाड़ियों के झुरमुट में दो-तीन बेल ऐसी थीं कि उनमें रोज पांच-चार मतीरे पके हुए मिलते हैं। लाल गिरी के मिसरी की तरह मीठे मतीरे रोज मिलते थे। गाय और बकरियों को खुपरिया खाने को मिलती थी।

हमारे पड़ौस में एक सुनार का खेत था। सुनारों ने भी खेत में 'टाणी' लगा ली थी। तीजा थी उनकी लड़की। वह दोपहर को हमारे डेरे में आ जाती। बात यह थी कि उनके खेत में मतीरे नहीं थे। मतीरों का मोह उसे हमारे खेत में खींच ले आता। दोपहर को वह अपने दोनों पैर पसार कर मतीरे की खुपरी लेकर बैठ जाती। मतीरा खाती रहती और हंसती रहती। उसके ओंठ मतीरे की गिरी की तरह लाल थे, दांत सफेद बीज से मोहक लगते थे। वह साथ मे ककड़ी लाती थी जिनका छिलका उतारकर नमक लगाकर खुद भी खाती थी, हमे खिलाती थी। फिर मैं उसी के साथ उठकर चल पड़ता। कांटों के डर से वह अपनी घघरी ऊंची कर लेती, उसकी गोरी पिंडलियां साफ दिखाई देती थीं। वह मेरा हाथ पकड़ लेती और खींचकर धोरे पर चढ़ जाती। वह कभी मेरे पर गिर जाती और खिलखिलाकर हंस देती। गोल-गोल गेंद से उभार उसकी कमीज के नीचे मे हिलते नजर आते। मुझे चुन्नी और हैडमास्टरनी दोनों एक साथ याद आ जाती। मैं सोचता, शायद तीजा भी मेरे साथ यह खेल खेलने का प्रस्ताव रखे और मैं बिना झिझक के उसके साथ वह खेल खेलने तैयार हो जाऊं। फिर वह झाड़ी के पास जाकर बेर तोड़ने लगती। तीजा 'सीऽऽ' कांटा चुभ गया।' कहकर वह हथेली मेरे पास लाती। उसकी हथेली भी बेर

से कम लाल नही थी। हम दोनो अपने-अपने बेर तोडकर खाते रहते। यह कार्यक्रम प्राय' यो ही चलता था। तीजां हर रोज दोपहर को आ ही जाती थी, लेकिन उस खेल के लिए न उसने प्रेरित किया और न मैंने ही प्रस्ताव रखा बीस दिन की छुट्टिया समाप्त हो गई।

एक दिन घर कुछ सामान आया, बिस्तर खाटें, पिंजरा। तब मैंने पूछा—'मा, यह सामान किसका आ रहा है?

—तेरा हैडमास्टर आ रहा है न यहा।

—हैडमास्टर, क्यो?

—उनका बच्चा बीमार है।

—बीमार है तो यहा ठीक हो जायेगा?

—वहा कोई डर है, बेटा।

—क्या डर है, मां?

—कहते है, वहां भूत रहता है।

—भूत...

मैंने भूतों की कई कहानिया मोमन से सुनी थी। कहते हैं, भूत के पैर उलटे होते हैं। 'डाकण' बच्चो को ले लेती है। शनिवार की रात को वह बिल्ली बनती है। हमारे मुहल्ले में ही सुनारी थी। उसको सभी 'डाकण' कहते थे। जब वह किसी घर मे जाती, सभी अपने बच्चो में छिपा लेते। वैसे तो हमारे मुहल्ले मे 'पित्तर' भी थे। एक माली का घर था। उसमे 'पूरण' नाम का आदमी था। वह मर गया था। सभी लोग कहते है, मा भी कहती है—वह 'पित्तर' बन गया। आत्मा माली में घुस जाता है, उसी के मुह से बोलता है, फिर वह मागता है। मैं जब उस घर के पास से निकलता, मुझे बड़ा डर लगता था। मा कहती थी, 'पित्तर' से डरते नहीं हैं, वह तो देवता होता है। मैं तो उससे भूत की तरह ही डरता था।

हैडमास्टर और हैडमास्टरनी दोनों हमारे घर में आ गए। मा जिस कोठे में 'कुत्तर' काढ़ती थी, उस घर में वे रहने लगे। मैं फिर उस घर ? नहीं गया। सभी औरतें कहती थी, मां भी कहती थी, 'डाकण' ने इसका कलेजा निकाल लिया। इसके पेट में गड्दा पड़ता था। पिताजी भी मन्त्र, 'झाडा' बहुत जानते थे। वे एक झाडू से 'झाडा' डालते थे। कहते हैं इन्होंने—

श्मशान में जाकर इस झाड़े का पोषण किया है। मैं उस कोठे में उस बच्चे नहीं गया। मुझे डर लगा—शायद कोई भूत मेरे से न चिपट जाय। कुन्दन को देखने को भी नहीं भेजता था, वैसे वह बड़ा हो गया था। तीन-चार दिन बाद रात को एकदम शोर हुआ। उस कोठे से जोर से रोने की आवाज आई। मैंने पुकारा — मां। लेकिन मां नहीं थी। मैंने पुकारा— पिताजी। पिताजी भी नहीं थे। ममनी नींद में सो रही थी, कुन्दन भी। मैंने चारों ओर से अपनी रजाई लपेट ली और दुबक कर पड़ा रहा। वह आवाज तेजी पकड़ गई। बीच-बीच में ढाढस बंधाने की भी आवाज आ रही थी। मैं समझ गया —हैडमास्टर का बच्चा मर गया है, हैडमास्टरनी रो रही है।

सुबह हैडमास्टरनी बाहर आकर बैठ गई थी। मैंने उसे दूर से ही देखा। दुबली, पतली, बड़ी कमजोर हो गई थी। औरतें झुंड की झुंड आती थी और वह पीट-पीटकर रोती थी। हैडमास्टर हमारे कमरे में बैठा था। आदमी उसके पास आते थे। वह बहुत फीका और सीधा हो गया था। मैंने समझा–अब यह किसी लड़के को नहीं पीटेगा। एक दिन वे सामान बांधकर फिर हमारे घर से चला गया था। मैं लगभग एक वर्ष तक उस कोठे में नहीं गया।

गांव में एक साल बड़े परिवर्तनों का आया। स्कूल आठवीं क्लास का आया। गांव वालों ने कहा,अंग्रेजी स्कूल बन गया। आर्यसमाज की शाखा खुल गई। 'चीबिया' हैडमास्टर बदल गया, नया हैडमास्टर आ गया। वह अंग्रेज की तरह कपड़े पहनता था, यानी पैंट, कोट, टाई और सिर पर टोप। लोगों ने अजीब चीज यह देखी कि वह मूछ नहीं रखता था। उस साल बिना मूछ के खद्दरधारी भी गांव में आने लगे। बीच के गुवाड़ में एक सभा करते थे। उसमें भजन गाते थे, भाषण देते थे। वे ब्राह्मणों के खिलाफ बोलते थे, उनके खिलाफ भजन भी गाते थे। हमारे पंडित जी उन्हें गाली निकालते थे, हमारा सेठ हरदयाल बहुत चीखलाता था। पिताजी भी उनसे खुश नहीं थे। वे लोग स्कूल में भी आए थे। उन्होंने सभी लड़कों को मुफ्त में एक-एक पुस्तक दी थी। मैं वह पुस्तक अपने घर ले आया था। उसमें एक सुन्दर आरती थी—जय जगदीश हरे। मैं वह पुस्तक घर में जोर-जोर से

पढ़ रहा था। पिताजी आते ही मेरे पर बरस पड़े उल्लू, क्या पढ़ रहा है यह ?

—किताब है, मास्टरजी ने दी है।

—फेंक इस किताब को, स्साले आ गए हैं धर्म बिगाड़ने। कहते हैं—चूड़े-चमारों को साथ खिला लो, कमीने कहीं के।

मैं सचमुच सकपका गया।

पिताजी यह बात ठीक ही कह रहे थे। उसमें अछूत जाति के प्रति सहानुभूति थी। छूआछूत मिटाने का आग्रह था। कुछ पंडे-पुजारियों की आलोचना थी। उसमें बुराई क्या थी। मेरी समझ में नहीं आई। फिर भी मैंने वह किताब छोड़ दी। पिताजी ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर लिए और चूल्हे में फेंक दी। मुझे बहुत दुख हुआ फिर उन्होंने तड़ककर आदेश दिया - अपने पोथी पढ़, फालतू की किताबें पढ़ता रहता है। और पिताजी बाहर चले गए।

रात को आर्यसमाज की सभा हुई। मैं चुपके से उसमें चला गया। अच्छी खासी भीड़ थी। कुछ भजन गाए गए। सभी भजन पंडे-पुजारियों के खिलाफ थे। फिर एक लम्बा भाषण हुआ। वह सारा भाषण ही आग-सी फेंक रहा था। भीड़ 'तड़-तड़' ताली पीट रही थी। ऐसा लगता था कि सुबह उठते ही यह भीड़ सारे ब्राह्मण, बनियों के मकानों में घुस जायेगी और उनकी लाशें बिछा देगी, मंदिर टूट जायेंगे और दुकानें लूट ली जायेंगी। इतना जोशीला भाषण मैंने पहली बार सुना था। घोटघोट सिर वाला आदमी जिसकी कोई दाढ़ी-मूंछें भी सफाचट थीं अपने लम्बे हाथों को फैलाता हुआ मुझे विराट् रूप-सा लगा।

मां दही बिलो रही थी, मैं अपना बस्ता खोले अपने स्कूल का काम कर रहा था, उसी समय पडिताइन आटे के लिए आई। मुझे वही रात वाला विराट् रूप याद आ गया। मैंने मां को टोक दिया—'मां, तू इस पडिताइन को आटा क्यों डालती है ?'

—धरम है, बेटा।

—इन्होंने ही तो देश का बेड़ा गर्क कर दिया।

—देश क्या होता है ?

—अपना देश, भारत।

—तुझे किसने बतलाया ?

मैं रात वाले वक्ता का नाम नही बताया, वरना मा पिताजी से शिकायत करते और फिर⋯

मैंने कहा—पुस्तक मे लिखा है।

—किताब मे ?

—हा, किताब मे।

—तब तेरी किताबें गलत पढाती हैं।

—नही मा, मै ठीक कह रहा हू। तू समझती नही, इन पडे-पडिताइनो ने हमे खत्म कर दिया।

बेटा, धरम-करम काम आता है। पिछले जनम मे जिसने अच्छा करम किया, वह इस जनम मे अच्छा फल पाता है। इस जनम मे जो अच्छा करम करेगा, वह अगले जनम में अच्छा फल पायेगा।

वाह, मा, वाह तू समझती ही नहीं।

दरअसल, रात वाली बातें मुझे पूरी याद नही आ रही थी। मेरी तीव्र इच्छा हुई थी कि अब की बार वह भाषण मा को सुनाऊ ताकि मां की अकल दुरुस्त हो जाये। मा को बात सुनने की भी फुरसत नही थी। उसने घी निकाला और धीरे से मक्खन कुलडी में डालकर रोटी के काम मे लग गई।

मैंने मन ही मन सोचा कि अब की बार पूरी बातें याद करके रखूगा।

पिताजी आ गए थे। उनके चेहरे पर उदासी थी। उन्होंने जेब मे एक पुरजा निकाला और मेरे सामने रख दिया, देखना, सम्पत्, इस हिसाब को पढना।

काली स्याही से लिखा बनिये का पुर्जा एक-एक कर पढने की कोशिश करने लगा। बनिये की लिखावट भी अजीब होती है। रोजाना पढने वाला ही पढ़ सकता है। मैं अटक-अटककर पढता, पिताजी टोकते रहते—'अरे, बेवकूफ, छ साल धूल मे ही मिला दिए, अब तक इस परचे को भी नही पढ सकता।' मेरी गाड़ी और अटक जाती और वे टोकने से नही चूकते। फिर वे सारी पढाई को ही निरर्थक और बेमानी बतला देते। कहते—'क्या पढाई करते हो। बनिए जिस हिसाब को अंगुलियों पर निकाल देते हैं, उसे

ये आजकल के छोकरे ननेट इंग्लिश से भी नहीं निकाल सकते।' मैं कहता था — पिताजी, पता नहीं ये बनिये कैसे लिखते हैं?

—अच्छा यह हिसाब ठीक है क्या? वे उसी पुरखे में से कोई हिसाब देते मानो कि उन्होंने चौदह सेर खांड ली और मन पर भाव बताया, कितना देना हुआ। मैं हिसाब में तो पहले से ही कमजोर था, फिर ऐसा अटपटा हिसाब निकालना मेरे सामर्थ्य से बाहर था। फिर वे पूरी तरह खीज प्रकट करते।

पर्चे के अन्त में 'टोटल' था और फिर ब्याज। मैंने वह रकम सही बतला दी। ब्याज की रकम सुनते ही वे अत्यन्त निराश हो गए। अनाज का हिसाब लगाया और निर्णय लिया कि अब की बार भी पूरा नहीं पड़ेगा। गाय की रकम भी साथ जोड़ ली। मां ने रास्ता निकाला—आधा-आधा दे दो आगे फिर देखा जायेगा।

—भली आदमन, पिताजी कहने लगे, एक बार पूरी रांद कट जाये तो फिर ब्याज तो न पड़े। किसान को तो ब्याज नहीं उभरने देता।

—उधार मत लिया करें, नकदी दिया करें। मैंने अपनी टांग अड़ा दी।

—लो, यह अभी से टांग अड़ाने लगा। मां ने टोक दिया।

—यह ठीक कह रहा है, लेकिन उधार बिना पार नहीं पड़ती।

मुझे रात का भाषण याद आ रहा था कि ये बनिये किसान के शत्रु हैं, लेकिन मैं डर गया, पिताजी लड़ेंगे, इसलिए मैं चुप ही रहा। पिताजी कुछ गहरी चिन्ता में उलझे थे। पिताजी जब चिन्ता में होते थे, तब बहुत डरावने लगते थे जैसे कि किसी ने कुछ कह दिया तो खा जायेंगे। मां फिर भी ऐसी स्थिति को संभाल लेती थी।

मोहल्ले की स्त्रियां दिन में मां के पास इकट्ठी हो जाती थीं। एक काले रंग की काकी थी मेरी, बड़ी अच्छी औरत थी। एक भाभी थी गोरे रंग की, बिल्कुल जवान, बड़ी छैल-छबीली रहती थी। पैरों में पूरे गहने पहने रखती थी, कड़ी, छैलकड़ी, कड़ियों में घुंघरू होते थे। चलती थी, बोलते थे 'छम-छम-छम'। दूर से ही पता चल जाता है, भाभी आ र, कान में सोने की बूजली, सिर में बोरला ऊंगा जिसमें कांच के रंग मोर्ने, मणिये रखती थी। गले में नकली कांचों का हार होता था।

रखती थी सिर्फ जिसमे उसके भरे हुए गोरे उरोज साफ झाकते थे। कांचली अब फटी, अब फटी —ऐसी लगती थी। कभी-कभी अपने बच्चे को भी साथ लाती थी। उस समय वह अपने दोनो पैर पसारकर उस बच्चे को गोद में ले लेती और गोरा स्तन बाहर निकालकर उसकी तीखी नोक उसके मुह में दे देती। वह नही लेता, तब वह मेरी ओर इशारा करके बच्चे को कहती, 'अरे, बोबा लेता है कि नही, मैं सम्पत् को दे रही हू, ले रे सम्पत।' मुझे बड़ी शरम आती। मैं अलग खिसक जाता, लेकिन कनखियो से उसका भरा हुआ स्तन देखता रहता, एक सनसनी-सी मेरे भीतर दौड़ जाती। एक भाभी आ जाती—हल्का-सा घूंघट रखती थी। उसका घूघट ही मुझे अच्छा लगता था। उस घूघट से उसका प्यारा रूप मनभावना लगता था। उसकी बड़ी आखें ऐसी लगती थी जैसे कि दो दीपक हैं, टिमटिमा रहे है और उनके ऊपर हल्का-सा एक काच डाल दिया है। वह अपना घूघट कभी इधर, कभी उधर करती थी, ऐसा लगता था जैसे कि अब तक तो इस आगन में अंधेरा था, अब रोशनी फैल गई है। उसके पैरो में छड होती थी, उसके ऊपर महंगा घूमता था। वह भी आगी यानी कांचली ही रखती थी, लेकिन वह नीचे मुडती जरूर रहती थी ताकि उसका पेट नही दिखाई दे। उसका बोरिया छोटा होता था। वह राजपूत घर की थी और वैसी ही लगती थी। फिर उनकी महफिल जुड़ती। वे एक-दूसरे की जूएं निकालती और 'चुगलियां' करती। भाभी मुझे कहती —'ला देवर, मैं तेरी जूएं निकालू।' मैं उन दिनों अंग्रेजी बाल रखने लग गया था। मैं भाभी के आगे बैठ जाता। वह मेरे से भी घूघट निकालती थी—हल्का-सा घूघट। मैं मा से शिकायत भी करता— 'मा, यह भाभी मुझे अपना मुंह नही दिखाती।' मा मुस्कराकर कहती— 'पगले, तेरी भाभी है न। तेरे से घूघट ही तो निकालती।' जब वह जूएं निकालती, अपना मुंह खोल लेती थी, ऐसे ही जुएं पकडने के बहाने मेरे सिर में 'चिऊटी' काट लेती। मैं पहले से ही एक काम करता, दर्पण छिपा कर आगे रख लेता, पहले उसे उलटा रखता, फिर धीरे से सीधा करता, उसका मुह शीशे मे देख लेता, फिर जोर से शोर मचाता—'मुह देख लिया है, मुंह देख लिया।' वह जोर से अपना घूघट मुंह मे लपेट लेती। बाद में ऐसा होने लगा था ज्योंही मैं दर्पण के भीतर उसका मुह देखता, वह

मुस्करा देती। उसके लाल ओठों मे सफेद दांतों की मुस्कान बड़ी आकर्षक लगती और मैंने शोर मचाना बन्द कर दिया। उसके प्यारे हाथ मेरी जुएं निकालने के बहाने मेरे बालो मे रेंगते मुझे सुहाने लगे थे। चोटी से लेकर एड़ी तक एक नशा-सा दौड़ता जो शरीर से सारे अगों में घूम जाता। जाघो के बीच उत्तेजना-सी बढ़ जाती और मैं चाहता कि भाभी जीवन-पर्यन्त मेरी जुए ही निकालती रहे। मां जुएं भी निकलवाती और ताई की चुगली करती रहती। वह इस अवसर पर दोहरा लाभ उठाती थी।

काकी मुझे उपालम्भ देती—'सम्पत, तू मेरे मोहन को भी स्कूल ले जाया कर। वह बहुत आवारा हो गया।' मैं कहता—'काकी, तेरा मोहन ऐसा नालायक है कि पूछ मत। मुझे मालूम है वह आवारा लडकों के साथ बीडी पीता है, पीपलो के नीचे छोटी-छोटी ताशें खेलता है।'

—मुझे मालूम है, सम्पत, करू क्या ? मैं उसे पीटती हूं, तेरे काकाजी भी पीटते है, मानता ही नही।

बडी सीधी-सादी है बेचारी काकी। बीमार रहती है, रात को चार बजे ही खासने लगती है। बाहर टट्टी जाती है तो पैर घीसती हुई चलती है।

अचानक मोमन के घर जाने का विचार आया। मोमन चार दिन से स्कूल नही आया, बात क्या है। मोमन का घर मेरे नजदीक ही था। घर पहुचा, उसकी मा रोटी खा रही थी। बाजरे की रूखी रोटी पर रगड़कर लाल मिर्च डाल रखी थी।

—आ, सम्पत, रोटी खा।

मैं मोमन की मा को ताई कहता था। वह बूढी ताई थी। होगी पचास साल की तो। मुह पर झुरिया पड गई थी। दात तो सारे मौजूद थे।

मैंने पूछा – ताई, मोमन कहा गया ?

– मोमन तो खेत गया।

— स्कूल नही आता आजकल, मास्टर जी पूछ रहे थे।

— क्या करे बेटा, घर का काम नही चलता। तेरा ताया तो गया। छोटा काम सभाल नही सकता। भैंस ले ली है। काम व

फिर पढ़कर करेगा भी क्या ? कागज-पत्तर तो पढ़ने लग ही गया। बनिये का हिसाब भी देख लेता है। रही नौकरी की बात। हमारा कौन है जो नौकरी लगाये, तेरे तो पिताजी पुलिस में है। कहीं न कहीं चेप ही देंगे।

—मोमन पढ़ने में अच्छा था। मैंने बताया।

—कौन पूछता है पढ़ने को। सिफारिश चलती है बेटा।

यानी कि मोमन ने स्कूल छोड़ दिया।

मैं खड़ा-खड़ा ही बाहर आ गया। मैंने सोचा— चलो सुलतान के यहां चलें। सुलतान मेरे से कुछ दूर था। मेरा सहपाठी तो था ही, साथ में लंगोटिया भी था। मैंने घर में घुसते ही आवाज दी— सुलतान !'

सुलतान भीतर के कमरे से बाहर निकला। मुझे देखते ही हँसकर बोला—अरे यार, तुझे याद ही कर रहा था।

सुलतान अकेला ही था।

—क्या बात थी ? मैंने पूछा।

—यार मेरी काकी है न।

—हां,हा, वही जो मेरी नानी है।

—हा, वही, वह मेरी मां को बड़ी गालियां निकालती है। ऊपर कोठे पर चढ़ जाती है और स्साली, वहीं से शोर करती है।

—हा, यार, है तो वह गन्दी।

—गन्दी क्या, तुझे क्या बताऊं ? स्साला, उसका मामा है ना !

—हा, हा !

—वह स्साला उससे लगा हुआ है।

—तुझे क्या मालूम ?

—मैंने खुद देखा है। मां को भी पता है। मा ने उसे वह सुनाई, वह सुनाई कि बस।

—ठीक किया।

—फिर उसने मा के लिए भी गन्दी बात कही। तभी से मुझे गुस्सा आ रहा है। ऐसा गुस्सा आ रहा है कि उसका खून कर दूं।

—गुस्सा तो आना ही है।

उसने फिर एक तलवार निकाली।

—यह देख, तलवार। इसी से साली का खून करूंगा।

मुझे तलवार देखकर भय लगा। उसने खोलकर आधी तलवार नंगी कर दी। सीसे की तरह चमक रही थी।

—वह समझती क्या है ? मेरे काकाजी (चाचाजी) पुलिस मे थानेदार है। स्साली को जेल में दे देंगे। साथ मे इस स्साले मामा को भी।

सुलतान ने अपने चाचा की कई फोटू दिखाई जो दीवार पर लटकी हुई थी। चाचा की मूछे रोबदार थी और बिल्कुल थानेदारी।

—मेरे चाचा के पास एक पिस्तौल भी थी। वह अपने पिस्तौल से ही उन दोनों को मार देगा।

तब मैंने सोचा कि उसने स्वय तो उसे मारने का कार्यक्रम रद्द कर दिया है।

फिर हमने बात बदल डाली। बात मोमन पर आकर ठहर गई।

मैंने बताया—उसने पढाई छोड़ दी है।

सुलतान को मोमन पसन्द नहीं था। उसकी रुचियां सुलतान के विचारों के प्रतिकूल थी। उसे मोमन और शेरकी वाली बात का भी पता था। उसने यह भी बतलाया कि वह दिन में गधियों के पीछे पड़ा रहता है, गन्दा लड़का है। मुझे भी कहा कि तू उसके साथ मत रहा कर।

दूसरे दिन सुलतान की मां और उसकी चाची मे फिर झगड़ा छिड़ा। सुलतान का चाचा और पिता बाहर आ गये। सुलतान के पिता ने उसके चाचा के एक लाठी मारी, इतनी जोर से मारी कि उसकी पीठ पर ज्यों की त्यों उभर आई। सुलतान बाहर तलवार लेकर आ गया था। लोगों ने बीच मे पडकर बात समाप्त करवा दी।

दूसरे दिन मैं सुलतान से मिला। उस समय उसका गुस्सा कम हो गया था। उसने मुझे उस लाठी का पोज बताया जो उसके पिता ने उसके चाचा की पीठ पर जमाई। फिर उसने उसकी चाची के क्रन्दन का अभिनय किया फिर उसने चाची के मामे के लुक-छुप कार्यक्रम का प्रकाश डाला।

एक दिन सुलतान के बहनोई आ गए। उस दिन सुलतान ने एक कार्य-क्रम निश्चित किया।

उसने मुझे कुछ झरोखे दिखाए कि उन्हें इन झरोखों के पास बैठना

होगा। स्त्रिया उनके बहनोई को उन झरोखो के दूसरी ओर लायेंगी। फिर हम तमाशा देखेंगे। निश्चित समय पर निश्चित कार्यक्रम चालू हुआ। जवान लड़किया, बहुए एकत्रित हो गईं। पहले उन्होंने कुछ गीत गाए। हम दोनो झरोखो के पास बैठे उन्हें देख रहे थे। फिर कुछ जवान लड़कियां उस बहनोई के पास आईं। कुछ ऊलजुलूल प्रश्न किए। बेचारा बहनोई चुपचाप बैठा था, मुह लटकाए हुए। लड़कियां खुलखुल कर हँसती थी, छातिया मटकाती थी, किसी तरह का शर्म-सकोच उनमे नही था। फिर जवान स्त्रिया उसके पास आ धमकी। उन्होने ऊलजुलूल बातें की। उन्हें अश्लील बोलने मे भी कोई झिझक नही थी। मैं सोचने लगा ये ही लड़कियां, स्त्रिया दिन मे शर्म की गठरी बनी घूमती हैं, आखों से केवल जमीन को ही देखती हैं, छाती पर तीन-तीन परतें डाली रहती हैं कितनी बेशर्म होती जा रही हैं अब? फिर एक अधेड़ औरत ने 'घूमर' नाचना शुरू किया। उसने अपने घाघरे के चक्कर चढा दिए। पहले उसने अपनी पिंडलिया दिखाई, फिर जांघे और फिर उसकी कमर से नीचे का सारा हिस्सा नगा हो गया था। बहनोई कुछ भी नही देख पा रहा था। उसने तो अपनी आखें जमीन पर गाड़ ली थी। सुलतान ने उस समय मेरे अगुली लगाई जिस समय उसका घाघरा पूरे चक्कर पर था। मै उसका आशय समझ गया—देख ले, यही दिखाने मैं तुम्हें यहां लाया था। अन्य स्त्रियां उस समय खिलखिलाकर हँस रही थीं—देख लो जीजा जी, देख लो, यह तुम्हारी बुआ जी है—हा-हा-हो-हो! अचानक सुलतान की हँसी फूट पड़ी और एकदम कार्यक्रम ठप्प हो गया। हमे तुरन्त भागना पड़ा।

इसी तरह सुलतान मुझे किसी और घर मे ले गया। वहा भी उसने कमरे के झरोखे तैयार किए। हमने निर्णय लिया कि अबकी बार हँसना नही है। उस घर का 'जवाई' पहले से ही कमरे मे बैठाया हुआ था। कई बहुए एक लड़की को भीतर धकेल रही थीं। आखिर वे उसे धकेलने में सफल हो गईं। उसके आगे दरवाजा बन्द कर दिया गया। लड़की ने भीतर प्रवेश पाते ही उस पुरुष को मुस्कराकर देखा। पुरुष ने हाथ पकड़कर उसे गोद मे डाल लिया। प्रकाश उन दोनों के चेहरों पर गिर रहा था। लड़की ने पुरुष की आखो मे देखा और पुरुष ने लड़की की आखो मे। दोनो ने एक

दूसरे को इस तरह से चूमना शुरू किया जैसे कि वे वरसों से एक दूसरे के प्यार के प्यासे हो। आगे के दृश्य देखकर तो मुझे फिर चुन्नी, हैडमास्टरनी की याद आ गई। उस समय फिर सुलतान को अंगुली लगाई। उस रात मैं बहुत देर तक नही सो सका। ऐसा लगा था कि यौवन का सूर्य निकट भविष्य मे उगने वाला है और उसकी आभा अब जीवन गगन पर अंगड़ाई लेने लगी है।

पढाई से फुरसत मिलते ही हम गांव के तालाव पर चले जाते। पहले हम तालाब के चारों ओर घूमते। तालाव का दृश्य अपने ढग का ही था। पानी से भरा तालाव किसी भी रूप मे झील से कम नही होता था। चारो ओर बड़े-बड़े पीपल के पेड अपनी डालियों से पानी को छू रहे थे। फिर हम एक बरगद के पेड की डाली पर बैठ जाते और भविष्य की कल्पना करते, वर्तमान पर बात करते। कितनी ही बातें हमारे पास होती थी, कभी किसी मास्टर को पकड लेते, कभी किसी लड़के पर बात चल जाती, कभी किसी लड़की पर। आगे की कल्पना भी बड़ी मीठी होती थी। कभी पटवारी वनते, कभी पुलिस के थानेदार। गाव का एक ही तालाब था। गाव की स्त्रिया, लड़किया सभी इस तालाव पर पानी भरने आती थी, इसलिए उन पर भी नजर फेंकना आसान ही था। हमे महसूस होने लगा था कि अब हम बच्चे तो नही रहे।

स्कूल आठवी से दसवी क्लास का हो गया। इसलिए मुझे पढने के लिए बाहर जाना नही पडा, या यों कहू कि पढ़ाई छोड़नी नही पडी। इस बीच पिताजी का ट्रांसफर भी बाहर किसी गाव मे हो गया। घर मे दायित्व सभालने वाली मा अकेली पड गई। मगनी अब बडी होने लगी थी, इसलिए मां मेरी पढ़ाई से अधिक उसकी शादी की चिन्ता से अधिक जुड़ गई। कुन्दन दूसरी कक्षा मे आ गया था। पिताजी बाहर से महीनो में ही आते थे। एक ही बात उनकी धारणा में थी—चाहे मुझे कुछ भी झेलना पडे, बच्चों को पढाऊंगा।

मा दिन-रात काम मे जुटी रहती। आयु से तो वह ... आने लगी थी, लेकिन कार्यक्षमता देखते हुए उसे बूढी ... मगनी भी कार्य मे हाथ बंटाती, लेकिन मा तो मां ही थी।

पर कभी-कभी आश्चर्य होता था। बहुत तड़के उठती, उठकर गायों को घास डालती, फिर दही ठारती, दूध निकालती, उसके बाद मगनी भी उठ जाती। मां रोटी बनाती, मगनी ऊपर का काम करती। हम लोग रोटी खा लेते, फिर मगनी और मां खेत जाती। खेत भी नजदीक थोड़े ही था, पूरा तीन मील था। वहां मां दिन-भर काम करती, खेत के काम तो कभी आराम करने नहीं देते। पहले 'नीनाण निकालो', फिर 'सिट्टिया' आ गईं, इतने में मोठ आ गए। गुंवार भी खड़ा क्यों रहे, फिर कड़बी भी तो काटनी यानी बारह महीने किसान काम में रहता है। मा अब मां नहीं रही थी, किसान हो गई थी। आने के बाद फिर उसे चैन नहीं थी, इतने पर भी मा के चेहरे पर कभी कोई शिकायत का भाव नहीं आया। मैं और कुन्दन तो बैठे पढ़ते ही रहते। इस पर भी अजीब बात यह थी कि रात को कुन्दन आवाज देता—'मा, पानी।' मा उठ जाती और पानी पिला देती। मगनी कहती—'मा, पेशाब।' मा उठकर साथ चल पड़ती और फिर आते ही वही नींद के लम्बे खर्राटे। मा राम जाने, किस ख्यात की बनी थी।

इतना करने पर भी मेरे भरती होने पर एक समस्या उठ खड़ी हुई—भरती तो हो गया, मा, लेकिन किताबें?

—किताबें, कित्ते रुपये लगेंगे?

—लगभग तीस रुपये, मैंने बताया।

—हूँऽऽ, मां को तीस रुपये बहुत भारी लगे। भारी तो लगने ही थे। अनाज आता भी कितना है। मा अकेली कितनी खेती कर सकती है, यही पांच-सात बीघे। हिस्से से अनाज आता है, उसे तो बनिये उठा ले जाते हैं, कर्ज में। मा की मेहनत नमक, मिर्च में चली जाती है। पिताजी कुछ वहीं खा जाते हैं, कुछ भेजते हैं। वे मा पहले से ही उधार रखती है। तीस रुपये सुनते ही मां भौंचक्की हो गई।

—पहले तो तू पुरानी ले लिया करता था न?

—नया स्कूल खुला है न! फिर बड़ी क्लास है, दोनों क्लासों की साथ नी है।

"तू एक क्लास की ही ले ले, मां को सुझाव याद आया। मुझे हँसी आ गई। मैंने बताया—ऐसा नहीं होता, मा।

मा कुछ गम्भीर हो गई थी, लेकिन उसने अपना काम नही छोड़ा। वह सोचने का काम भी घूमते फिरते कार्य-व्यस्तता मे ही करती थी।

—फीस मे कम्म नही चलेगा, थोड़ी देर के बाद मा ने आकर पूछा।

– नही मां ! किताबे हैं, कापिया हैं, कुछ और भी होंगे, पढाई तो इस बार ही होगी।

दरअसल, मा को मेरे से एक ही लाभ था कि मैं अपनी क्लास मे 'फर्स्ट' आया करता था। मेरे सभी साथी मेरी तारीफ करते थे, इसलिए हौसला बना हुआ था।

थोड़ी देर बाद ही उसने मुझे आश्वासन दिया—अच्छा बेटा, करूगी किसी तरह।

मां कभी धीरज नहीं खोती, पिताजी तो अब तक बौखला जाते—छोड़ दे पढ़ाई, करेगा बी० ए० पास, बनेगा तहसीलदार। सारा घर बर्बाद कर दिया।

किन्तु मा कहती—ऐसा क्यो कहते है। पढाई मे खर्च होता ही है। यह बेचारा 'कभी फेल तो नही होता। एक क्लास मे एक ही साल लगाता है। कभी पानी पीते-पीते अनाज का स्वाद भी आ जायेगा।' यह कहावत मा बार-बार दोहराती थी।

कुन्दन ने भी कहा—मा, मेरी किताबें।

मैंने उसे झिड़क दिया—'रहने दे, तेरी किताबे तो आ जायेंगी। पुरानी ही ले देंगे।

—नही, मै भी नई लूगा, सम्पत जो ले रहा है।

मुझे गुस्सा आ गया—रहने दे, लगाऊंगा झापट···

—अरे ऐसे क्यो करता है, झापट क्यो लगायेगा, मा ने उसे पुचकारा, तेरी भी नई ला देंगे।

—मा, यह मेरे साथ जिद्द करता ही रहता है।

—बच्चा है न, तू भी कल तक बच्चा था।

कुन्दन मा की गोद मे बैठा मेरी ओर देख रहा था। उसकी हिम्मत अब कई गुना बढ गई थी। लेकिन मां अब भी कुछ सोच रही थी।

मां उसी समय वहा से खिसक गई थी।

थोड़ी देर के बाद ही मां तीस रुपये लेकर आ गई। मैंने पूछा—कहा से ले आई तू?

—अरे, ओ है न, सुनारी, रूपे की बहू।

—उसके पास कहा से आ जाते है, मां, तेरे पास नही होते।

—तू समझता नही, ये औरतें बड़ी चालाक होती है। अपने मर्द से छिप-छिपकर अनाज बेचती हैं।

—धोखा देती हैं न!

—अपने को क्या? अपने को पैसे मिल गए।

—बड़ी अच्छी औरत है।

—औरत क्या अच्छी है, पगले। अपनी सोने की एक बूजली रख कर आई हू। दो रुपये काटा है, ब्याज अलग, एक पैसा रुपये पर महिने का समझे?

—अच्छा ऽऽ।

मैं हैरान-सा रह गया। मेरे दिल मे हल्की-सी पीड़ा हुई। मैंने मा के कान की ओर देखा। वास्तव में उनकी 'बूजली' गायब थी।

मैंने पैसे सभाल तो लिए लेकिन मन मे कड़वाहट आ गई थी।

कुछ दिनो बाद पिताजी आए, तब मा ने उनसे एक बात कही—आप अब इस नौकरी मे क्या निकालते हो?

—कुछ आदत ही पड़ गई।

—पैसे आराम से मिल जाते हैं।

—आप अपने आराम की बात तो सोच लेते हो, कुछ हमारी भी सोचिए।

—तुम्हें क्या तकलीफ है?

—तकलीफ को आप क्या जानो, दिन-रात घर मे पचती रहती और खेत मे अपनी जवान लड़की को लेकर अकेली खड़ी रहती हूं।

—बात तो ठीक है।

—फिर आपको मिलता भी क्या है? महंगाई बढ़ रही है। बीस रुपल्ली कोई चीज है क्या? आप अपनी काया का आराम भले ही देख लो, यहां हिस्से वाले जमीन बिगाड़ रहे हैं—बस।

—तुम कर भी कितना सकती हो।

—बच्चों को पढाने का लालच पडा है। जमीन से कुछ मिलता नही, तनखा मे आनीजानी नही।

—तो मैं अस्तीफा दे दूं? पिताजी के ध्यान मे बात जम गई।

पिताजी एक दिन अस्तीफा देकर घर आ गए।

अब यह घर पूरा एक किसान का घर हो गया। दिन-भर नई व्यवस्था के बारे में विचार-विमर्श होने लगे। एक ऊंट खरीदा जाये या दो बैल। सारी जमीन अपने कब्जे मे थी। उसे जोतना था। उन दिनो ऊ ट की कीमत पांच सौ-छ सौ रुपये थी और दो बैल करीब चार सौ रुपये मे आ जाते थ। इतनी राशि कोई मामूली नही थी। घर मे एक पैसा भी नही था, थोड़ा बहुत कर्ज ही था।

एक दिन पिताजी ऊट ले ही आये। ऊट किसी चौधरी से लाए थे और बदले मे उन्होने अपना अगूठा लगा दिया। इस समय मैं पिताजी के अगूठे का अर्थ समझने लगा था। एक दिन मगनी ने इस अगूठे से ही चीलगाडी चाही थी, लेकिन आज वह भी इसका मतलब समझने लगी। ऊट के आने से घर मे चहल-पहल चालू हो गई। अब पानी लाने के लिए न तो पिताजी का कधा ही काम आता था और न मगनी का सिर। अब तो ऊ ट पर पानी लादा जाता, कुन्दन ऊट पर चढकर तालाब की सैर कर आता। फसल की भावी योजना बनने लगी। कुछ जमीन सावनी के लिए रखी गई और शेष हाडी के लिए।

पिताजी पहले महीने की आखिरी तारीख का इन्तजार करते थे, वहा अब आकाश की ओर देखने लगे। नौकरी की आरामतलबी से उनका पेट आगे आ गया था, वह अब सूखने लगा। काम तो थोडा बहुत रहता ही था। नौकरी के आराम याद करने लगे थे। बादलों से पानी की प्रतीक्षा मे ही वे खेत मे जाकर हल चलाते, जमीन गदरी हो जाती है, घास-फूस जो जमीन की ताकत को चाटता रहता है, खत्म हो जाता है। सवारी हुई जमीन अच्छी फसल देती है। मा को अब कुछ राहत मिली थी, अब वह कम खेत तो नही जाती थी। घर में ही कपड़े-लत्ते के काम [illegible]टी। उसे मगनी की शादी का फिकर चाटने लगा था। आये गए-से

खरीद लेती, उस पर गोटी-किनारी करती रहती। काकी, मासी, मामी, भाभी की महफिलें जुड़ी रहती। मगनी भी अब उनकी हिस्सेदार हो गई थी। एक-दूसरे की चुगली करना, जुए निकालना वही रोजमर्रा का ढर्रा था।

नवी कक्षा की छमाही परीक्षा में मेरे नम्बर बहुत अच्छे थे। हैडमास्टर का चपरासी मेरी कक्षा में आया—'सम्पत को हैडमास्टर साहब बुला रहे हैं।' हिन्दी मास्टर जी ने मेरी ओर देखा—'सम्पत।'

—जाऊं साहब...

—हां, जाओ न।

घंटे बजने में थोड़ी-सी कसर थी। मास्टरजी ने पाठ पढ़ा दिया था। मुझे शेष समय के खराब होने की चिन्ता नहीं थी। हैडमास्टर ने क्यों बुलाया है, चिन्ता हो गई।

चिक उठाकर भीतर गया। हैडमास्टर साहब किसी कार्य में तल्लीन थे। मैं मेज के सामने जाकर खड़ा हो गया। उनकी अभी तक मेज पर पसरे कांच के ऊपर कागज पर नजर गड़ी हुई थी। उन्होंने मेरी तरफ देखा। मैंने प्रणाम किया।

—सम्पत्!

—हां जी।

—तुम्हें परीक्षा का कार्ड मिल गया?

—हां जी।

—लाओ तो।

मैं खुशी-खुशी अपनी कक्षा में गया और अपना कार्ड लाकर हैडमास्टर के सामने प्रस्तुत कर दिया।

—सवालों में कितने नम्बर हैं तुम्हारे?

—सौ में से पचानवें। हैडमास्टर कार्ड भी देख रहा था।

—वेरी गुड।

—अंग्रेज़ी में?

—सौ में से पचत्तर।

—वेरी गुड, हिन्दी में भी अच्छे नम्बर हैं।

— हां, जी ।

उसने फिर मेरे कार्ड को ध्यान से देखा और फिर उसने मेरे ऊपर नज़र पसारी और मुझे ऊपर से नीचे ध्यान से देख गए।

—कब पढते हो ?

— रात को भी, दिन मे भी ।

—कितने घटे ?

—यही पाच-चार घटे ।

अच्छा, शाम को क्या करते हो ?

—खेलता हू, साहब ।

—क्या ?

—फुटबाल, अपने ही फील्ड मे ।

—अच्छा, आज तुम मेरे घर आना ।

मैंने रिसेस में यह बात सुलतान को बतलाई । हम दोनों ही कारण को टटोलते रहे, कुछ समझ में नही आया कि हैडमास्टर ने क्यो बुलाया । हम दोनो साथ मे फील्ड मे जाया करते थे। मैंने उसे कहा—तू मेरी प्रतीक्षा करना, मैं जल्दी ही मिलकर आ जाऊंगा, तब साथ ही चलेंगे ।

शाम को छुट्टी होते ही मैंने अपना बस्ता घर पर रखा और हैडमास्टर के घर पहुचा ।

दरवाजे में ही मुझे चपरासी मिल गया। मैंने उससे कहा—हैडमास्टर साहब से कहो कि एक लडका आया है—सम्पत ।

और मैं बाहर खडा रहा ।

चपरासी ने थोडी देर बाद आवाज दी—बुला रहे हैं।

हैडमास्टर का घर एक अच्छी हवेली थी। एक सेठ की थी, मुफ्त मे ही दे रखी थी।

मैं सहमा-सहमा-सा भीतर गया। फिर खडा हो गया। इतने मे हैडमास्टर एक चोले और तहमद मे बाहर निकले और मेरे पास आकर बोले—आओ ।

वे मुझे एक कमरे में ले गए। वहा एक मेज और दो कुर्सियां लगी थीं।

—बैठो, मैं अभी आ रहा हूं ।

मैं खड़ा रहा था । मैं अब तक कुर्सी पर नहीं बैठा था, फिर हैडमास्टर के घर कुर्सी पर बैठूं, असम्भव।

हैडमास्टर तो नहीं आए, किन्तु एक औरत और एक लड़की मेरे सामने आकर खड़ी हो गई ।

· बैठो, उस औरत ने कहा ।

मैं फिर भी नहीं बैठा । वह औरत प्रौढ थी, शायद हैडमास्टरनी हो, ऐसा लगा था ।

साथ की लड़की एक कुर्सी पर बैठ गई ।

—देखो, यह लड़की आठवीं में पढ़ती है । सवालों में कमजोर है, कुछ अंग्रेजी में ।

—जी, मैंने खड़े-खड़े ही कहा ।

—तुम एक घंटा इसे पढ़ा दिया करो ।

—जी ।

यह कहकर वह औरत चली गई ।

मैं डरता-डरता-सा बैठ गया । मेरे आगे अँधेरा-सा छाने लगा । लड़की की वेशभूषा चकाचौंध करने वाली थी । उसके चेहरे पर नजर डालना तो असम्भव-सा लगा ।

उसने ही अपनी अंग्रेजी की पुस्तक मेरे सामने रख दी ।

—पहले पाठ से ही शुरू करना है न ? मैंने पूछा ।

—हां, जी ।

'जी' शब्द मुझे अटपटा लगा ।

—पढ़ो ।

मैंने अंग्रेजी का एक पाठ पढ़ा दिया ?

—सवाल भी शुरू से लेने हैं ?

—जी ।

कुछ सवाल करवा दिए । फिर जल्दी-से बाहर निकल कर भागा । समय काफी गुजर गया था, शायद एक घंटे से भी अधिक । मैं सीधा सुलतान के घर गया ।

—बहुत देर लगा दी, मैं तो इन्तजार करता ही रहा।

—यार, गए नहीं।

—तुम्हारे बिना जाता कैसे ?

—देर हो ही गई।

—क्यों बुलाया था ?

—यार, अजीब उलझन में फंस गया।

—कैसे ?

—यार, कोई लड़की है, पता नहीं कौन, उसे शाम को एक घंटे पढ़ाना है।

—तो ठीक है, चांदी है।

—कैसे ?

—हैडमास्टर के घर पढ़ा रहे हो।

—तो फिर हुआ क्या ? शाम का खेल··?

—मैं भी अकेला रह गया।

—फिर···

हम दोनों चिन्ताग्रस्त हो गए।

रोजाना का नियमित रूप से जाना अखरने लगा था। जाता जरूर था; लेकिन अनमने भाव से। जाते हुए पैर भारी पड़ते थे, आते हुए खुशी होती थी जैसे जेल से मुक्त हुआ हो। इस तरह एक महीना पूरा हो गया। महीना पूरा होते ही हैडमास्टर की बहू ने एक पांच रुपये का नोट दिया।

उस दिन मुझे बहुत खुशी हुई। मैंने वह नोट मां के हाथ में दिया—मां, यह ले तेरे बेटे की पहली कमाई।

—कहां से आये ?

—हैडमास्टर के घर से लाया हूं एक महीना पढ़ाया है।

—सच !

मां ने पांच के नोट को चुचकारा, भगवान् के आगे रखा। मैंने बीच ही में कहा—मां, मैं भी चुचकारूं, मैंने चुचकारा ही नहीं, फिर मैंने भी भगवान् के सामने रखा। मां ने उसे पेटी में रख दिया। मां ने इस पांच रुपये की बात पिताजी से भी कही। मुझे खुशी में कुछ देर तक नींद नहीं

आई थी।

दूसरे दिन मैं खुशी से हैडमास्टर के घर गया। कुछ दिल लगाकर समय दिया। मुझे फिर लगने लगा कि लक्ष्मी में बांधने की शक्ति है। अंग्रेजी का पाठ अधिक देर तक पढ़ाया। सवाल अधिक देर तक कराये। लड़की का नाम 'विमला' अधिक गौर से देखने लगा। सभी मैं मैं समय के बन्धन से भी मुक्त हो गया।

विमला प्राय धोती पहनती थी। पहले मैं ज्यों-त्यों विमला के हाथों को ही देखता था। वह पुस्तक देती, पुस्तक उठाती। हाथों से सवाल करती, काटती, फिर ठीक करती। हाथों का रंग उसका सांवला था। फिर मैंने उसके चेहरे को देखा। रंग सांवला था, लेकिन उसमें कुछ आकर्षण लगा। वह कभी-कभी मुस्कराने लगी थी, जब उसका सवाल ठीक हो जाता। उसके दांत सुन्दर थे। फिर मैंने उसकी आंखों को देखा। उन आंखों में कुछ उजाला-सा लगा। एक दिन अचानक उसकी धोती का पल्ला किसी कारण से अलग हो गया, और मुझे उसके वक्ष का उभार दिख गया, दो मनमोहक गोलाइयां।

दूसरे दिन से मैं विमला के घर तेज गति से जाता और धीमी गति से आने लगा। शीघ्र ही विमला की परीक्षा निकट आ गई और वह अपने प्रदेश चली गई—यू० पी०। शीघ्र ही वह ध्यान से ओझल हो गई और मैं और सुलतान अपने खेलों में रम गये।

कभी-कभी मैं अपनी मां की व्यवस्था पर गौर कर लेता। विमला का घर याद आने लगता। मैं मां से कहता—मां, हम दरअसल पिछड़े हुए लोग हैं, और अनाड़ी हैं।

—कैसे रे? मां कहती।

—हमें असल में रहने का सहूर नहीं।

—वह कैसे? लेकिन उसका काम नहीं छूटता।

—कैसे क्या, हमें रहने का तरीका ही नहीं। मैंने हैडमास्टर के घर देखा, सभी पलंग ढंग से जमे रहते हैं, उन पर चद्दर बिछी रहती हैं, एक हम हैं कि सभी कुछ अस्तव्यस्त। तेरे पास सारे 'गूदड़े' हैं घर के मैले, कुचैले गंदे कपड़ों को इकट्ठा करके 'गूदड़ा' बना लेती है। घर में

कोई ढग का गद्दा नही, रजाई नही। अपने घर मे चद्दर नही। विमला आएगी, मैं पढाऊंगा, पैसे आयेंगे, मैं चद्दरें लाऊगा। दो अच्छे पलग बनायेंगे।

मा हँस रही थी, बोल नहीं रही थी।

—इधर इस मगनी को देख, मैं फिर कहने लगा, दस दिन मे तो सिर धोती है। जुए किलबिल-किलबिल करती रहती हैं। कपडो मे बदबू आती रहती है। पैरो मे मैल जमा रहता है।

मगनी अब मेरे गले पडने वाली थी। उसने वैसी आंखो से देखना शुरू कर दिया था।

—इधर इस कुन्दन को देख। एक महीने मे नहाता है।

—तू अपनी ओर तो देख, मगनी ने मेरे पर व्यग्य किया, तू कितने दिन मे नहाता था, अब नहाने लगा है। फिर भी कल नहाया था क्या ?

—हां, कल तो नही नहाया। मैं थोडा दब गया।

मा हम सबके कथोपकथन सुन रही थी। मैंने फिर मां को ऊपर से लेकर नीचे तक देखा। उस बेचारी को नहाने की, धोने की फुर्सत ही कहा मिलती है। हैडमास्टर के घर तो दो-दो नौकर है। वे झाडू लगाते है, बर्तन साफ करते हैं। हैडमास्टर की बहू तो सुबह स्नान करके कपडे पहनकर पलग पर बैठ जाती है, कुछ पढती रहती है। इधर हम पुस्तक लेकर बैठ जाते है और मा और मगनी···। मैंने एक लम्बी सास ली। हैडमास्टर और मेरे घर का अन्तराल समझ मे आने लगा।

मैंने नवीं कक्षा उत्तीर्ण की। कक्षा मे प्रथम रहा। विमला के सम्बन्ध मे मैंने जानने का प्रयत्न नही किया। ग्रीष्मावकाश के लिए विद्यालय बन्द हो गया। हैडमास्टर अपने परिवार के साथ अपने प्रदेश चला गया। जाते समय उसने मुझे यही सलाह दी—छुट्टिया खराब मत करना, तुम्हे बोर्ड की परीक्षा मे फर्स्ट डिवीजन आना है, मुना। मैं चाहता था कि वे विमला के बारे मे कुछ कहे, लेकिन वे मौन रहे। मैं क्या कहकर मुंह खोलता।

सुलतान छुट्टियों में ननिहाल चला गया, इसलिए मैंने भी मा के सामने यही प्रस्ताव रखा। अकेले मे मन उचट रहा था। गर्मियां मे लम्बे दिन बीते भी तो कैसे ?

ननिहाल में केवल बीस-पच्चीस घर ही हैं। केवल दो घर हमारी जाति के यानी राजपूतों के। कुल दो-तीन जाटों के, तीन-चार ब्राह्मणों के, बाकी खाती, गूजर, चमार, नायक, नाई आदि परिवार थे। खास बात यह थी कि वहां पर कोई भी पढ़ा-लिखा नहीं था। पत्र शायद ही आता था, आता था तब दो मील से। फिर पत्र पढ़ाने के लिए भी दो मील जाना पड़ता था। मेरे पहुंचने पर सबने आश्चर्य प्रकट किया कि एक पढ़ा-लिखा लड़का उनके गांव में आ गया। मेरे नानाजी पढ़े-लिखे थे, लेकिन वे अब नहीं रहे। उनकी कुछ पुस्तकें उनकी स्मृति के रूप में मौजूद थीं। मैंने वह गठरी खोली उसमें थी एक नरसी का माहेरा, एक गीता का गुटका, एक राधेश्याम रामायण। औरतों और आदमियों ने इच्छा व्यक्त की कि उन्हें कुछ सुनाया जाये। दिन में बूढ़ी-जवान औरतें इकट्ठी हो जातीं। मैं नरसी का माहेरा सुनाता। रात में एक चिमनी जला लेते, मैं राधेश्याम रामायण का पाठ करता। सभी बड़ी रुचि से सुनते। नरसी के माहेरा में सभी स्थल बड़े रोचक हैं, कहीं हास्य है तो कहीं करुणा, उनका यही असर श्रोताओं पर होता। पुस्तक खत्म हो जाती, फिर शुरू हो जाती, फिर खत्म हो जाती, फिर शुरू। कभी उन्होंने अरुचि प्रकट नहीं की।

दिन के श्रोताओं में हमारी मामीजी एक थीं। अभी-अभी शादी हुई थी उनकी। उनका पीहर शहर का, बाना भी शहरी था, चेहरा भी शहरी था। कमी यही थी कि वे पढ़ी-लिखी नहीं थीं, काम सभी पढ़ी-लिखी की तरह करती थीं। सुबह देर से उठतीं, उठते ही बुश करतीं, कपड़ों पर थोड़ा-सा मैल आते ही उन्हें फेंक देतीं, फिर नए निकाल लेतीं। वह कपड़े साबुन से धोती थीं। गांव की लड़कियां खड़ी-खड़ी ब्रुश का झाग देखती थीं, साबुन की सुगन्ध पर आनन्द महसूस करती थीं। कहते हैं जब वह आई था, गांव की हर औरत उन्हें कई बार देखने आई थी। उनका शरीर गुलाबी मोम की तरह लगता था। कपड़े पहनने पर ऐसी लगती थी जैसे कि शहर की कोई 'मेम' गांव में आ गई हो।

रात को मामीजी पीछे सोती थी, मैं आंगन में। मामाजी अंधेरे में ही उठ कर काम पर चले जाते। शायद वे पशुओं के चरने के लिए कुछ काट-कूट कर लाया करते थे। मामीजी को पीछे अकेले में डर लगता था, इस-

लिए वे अंधेरे में ही उठकर मेरे साथ आकर सो जाती। वे नीद में लम्बी सासें फेंकती रहती और मेरी नीद टूट जाती। मैं इतना अलग हो जाता कि उनका शरीर मेरे से स्पर्श न कर जाये।[1]

दिन मे मैं उनसे प्रश्न करता—मामीजी, आपका दिल यहा लग जाता है?

शुरू-शुरू मे नहीं लगा था, अब धीरे-धीरे लगने लगा।

मैं उनके गोरे चौकोर मुखड़े को गौर से देखता रहता। उनका चेहरा सचमुच लुभावना था। कभी-कभी पसीने से उनके ओढ़ने का रंग छूट जाता और उनके गौर वर्ण पर सजावट का काम कर जाता। दिन मे लड़-कियां उनके पास बैठी ही रहती, कभी उन पर घूघट डालती, फिर उतार देती, उनकी चूड़िया देखती, उनका साबुन सूघती; उनका तेल लगाती। मामीजी इन दिनो इस गांव की नायिका थी।

मैंने एक दिन मामीजी से पूछ लिया—मामीजी, तुम जल्दी उठकर क्यो आ जाती हो?

—अरे, सम्पत बात यो है कि मुझे पीछे डर लगता है।

—डर किस बात का?

—भूत का और किस बात का।

—भूत. मैंने आश्चर्य प्रकट किया।

—हां, हां, भूत, सामने का दरख्त है न, उसमे एक भूत है। पीछे का दरख्त है न, खेजडी, उसमें भी भूतनी है।

—कौन कहता है?

—सभी कहते है, तुम्हारी बडी मामी, तुम्हारे मामाजी भी।

—देखा है किसी ने?

—सभी ने देखा है।

—मुझे तो विश्वास नही होता।

—तुम्हारे मामाजी कहते है कि उन्होंने इस खेजडी के नीचे रात को बारह बजे एक औरत खड़ी देखी थी।

—अच्छा!

तुम्हारी बडी मामीजी कहती है कि एक दिन रात को सामने के दरख्त

से एक रोशनी निकलती देखी और श्मशाम की तरफ जाती देखी। नजदीक श्मशान भी तो है।

—अच्छाऽऽ

—रात को मुझे बड़ा डर लगता है, सम्पत् और मैं तुम्हारे मामाजी से चिपट कर सोती हू, तब नीद आती है। बीच मे जाग जाती हूँ तो उठकर भीतर आ जाती हूँ। आगन में मुझे डर नही लगता, यहां तो सभी है, तुम्हारी बड़ी मामी, बच्चे और तुम।

उसने बीच मे ही कहा—तुम आ गए तो बड़ा अच्छा हो गया। तुम्हारे जैसा ही मेरा भाई है, वह भी पढ़ता है। तुम्हारी तरह बाल रखता है, सिर में तेल लगाता है। बिलकुल तुम्हारे जैसा। मुझे पुस्तकें सुनाता है। मैंने पढ़ना शुरू किया, फिर पढ़ नही सकी।

मैंने समझ लिया, मामी बड़ी ही भोली है।

मैं उसकी तरफ देख रहा था, वह कह रही थी—यहा के लोग बड़ी फूहड़ हैं, अनाड़ी हैं, कुछ नही आता है इसको, और सचमुच यहा भूत ही भूत हैं—इधर भूत, उधर भूत।

—और यहा के आदमी।

—वे भी भूत हैं, और वह हँसने लगी, ऐसा लगा जैसे चांदनी फूट पड़ी।

एक दिन रात को अचानक मुझे सपना आया कि किसी भूतनी ने मुझे पकड़ लिया। सपने मे ही पहले मुझे पायलों की झकार सुनाई दी, फिर चूड़िया बजीं, फिर उसने एकदम बाध लिया। मुझे पसीना आ गया और मेरी नींद खुल गई। मैंने देखा कि मामी ने मुझे कसकर पकड़ रखा है और उसकी सासें मेरे चेहरे पर गिर रही हैं। उसके शरीर की सौरभ मेरे भीतर पसर रही है। दरअसल, वह नीद मे ही थी! शायद उसी की पायल और चूड़िया बजी होंगी। मैंने धीरे से उसके हाथों से अपने आप को वंचित किया और उल्टा मुह करके सो गया।

सुबह उठने पर मैंने पूछा—मामीजी, रात को तुम जल्दी आ गई थीं।

—सम्पत् कल यहां कोई बूढ़ी मर गई थी। दिन में उसकी लाश जल रही थी, मैंने देख ली थी। मुझे बहुत देर तक नीद नहीं आई। तुम्हारे

मामाजी तो सो गए थे। फिर मुझे डर लगा और मैं आगन में आकर सो गई।

बडी मामी बहुत तडके उठती, आटा पीसती। गाव के आसपास भी चक्की नहीं थी। फिर गाय, भैंस दूहती। बडे मामा बाहर ही सोते थे। वहीं उठकर अपना 'पोस्त' तैयार करते, चाय बनाते। फिर हुक्का भर कर बैठ जाते। बड़े मामा पहले बड़े शिकारी थे। कहते हैं, वे भागते हिरन के गोली मार देते थे। उन्हें शराब पीने की आदत थी। अब शराब छोड दी, पोस्त पीने लगे।

छुट्टिया समाप्त होने को थी। सोच रहा था कि आजकल में चल पडू, लेकिन रामायण और माहेरा के श्रोताओ का आग्रह था कि मैं और ठहरूँ, इधर मामीजी भी नही चाहती थी कि मैं जाऊँ। एक दिन अचानक मामीजी का भाई आ गया और वह चल पडी। फिर मेरा यहां रुकना आसान नही था। दो दिन बाद मैं भी रवाना हो गया। मेरे श्रोताओ की आखें भर आई थी।

दस दिन पहले ही घर आ गया था, वहां मुझे हैडमास्टर साहब का पत्र मिला—विमला द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हो गई है—बधाई!

मैंने वह पढ़कर मा को बताया, पिताजी को कहा। फिर रात को उसे *सुलतान के पास ले गया। हैडमास्टर का पत्र मेरे नाम से आए, यह भी एक* असाधारण घटना थी। मैं फूला नही समा रहा था।

दस दिन बाद स्कूल खुलते ही हैडमास्टर साहब आ गए थे। मैं सीधा घर पहुचा। हैडमास्टर की बहू ने मिलते ही बधाई दी। मैं भीतर चला गया। मैं विमला को ही खोज रहा था, लेकिन वह नही दिखाई दी तो मुझे कुछ अटपटा-सा लगा। मुझे मालूम हुआ कि हैडमास्टर साहब घर पर नहीं हैं, तो मेरा कुछ जी जम गया। पता नही, मैं उनकी उपस्थिति से क्यों घबराता था। मैं अपने ही कमरे मे चला गया जहां पढाता था। मैं बैठ गया। मैं उठना ही चाहता था कि विमला आ गई। उसने मुझे देखते ही 'नमस्ते' कहा।

—ठीक हो, बधाई है।

वह कुछ मुस्कराई। पहले से वह कुछ अधिक स्वस्थ और उज्ज्वल दिखाई दे रही थी।

मैंने पूछा—पेपर ठीक हो गए थे न?

सभी तो अच्छे नम्बर आए हैं। अंग्रेजी में पूरे इकसठ नम्बर थे और गणित में बहत्तर।

—कमाल है।

—मेहनत तो थी आपकी।

—मेरी क्या, तुम्हारी थी।

इतने में विमला की मामी भी वहीं आ गई। दोनों मेरी ही प्रशंसा करने लगीं।

आखिर हैडमास्टर की बहू ने यह कहा—कल से इसे पढ़ाने आ जाया करें। यह नवीं की पुस्तकें ले आई है।

दूसरे दिन विमला की पढ़ाई चालू हो गई।

मां ने सोते समय एक कहानी चालू कर दी—सम्पत्, तुम्हें मालूम है, तुलसी के साथ क्या हुआ।

—कौन तुलसी?

—तुलसी स्वामी।

—अपना पड़ोसी।

—हां, हां।

- क्या हुआ?

— मैंने भी अपनी पुस्तक बन्द कर दी।

— गांव वाला बनिया है न राम कुमार।

—हां, हां।

— इसने तुलसी पर दावा किया।

—फिर

—दो हजार का, कहते हैं कि एक बार यह चार सौ रुपये का बीज लाया था। अकाल पड़ गया तो रुपया नहीं दे सका। दूसरे साल इसने ब्याज समेत पैसा लिख लिया। दूसरे साल इसने लड़की की शादी की, फिर रुपये

नही दे सका। फिर इसका बाप मर गया, औसर में पैसा खर्च हो गए। व्याज तो वेटा दिन-रात कमाता है। आदमी रात को सो जाता है, ब्याज बढ़ता रहता है। कर करा के रुपया हो गया दो हजार। बनिये ने पैसा मांगा। तुलसी के पास था ही क्या ? तुलसी ने कहा—सेठ, बोल मत। मेरी इज्जत जाएगी। लोग मुझे बेईमान बतायेंगे। मेरी साख मारी जायगी। मैं कही का नही रहूगा।

—फिर

—फिर क्या, तुलसी ने कहा—किसी तरह तू हिसाव-किताब साफ कर। बीच मे एक चौधरी पडा। एक तो इसने अपना मकान दिया और एक भैस।

—अच्छा ऽऽ

—इसका यह मकान सेठ ने ले लिया। कहते है सेठ यहा अपनी हवेली बनायेगा।

—तुलसी ?

—तुलसी जायेगा बाहर, एक कोठा बनायेगा, बन जायेगा, पाच चार सौ मे।

—बहुत बुरा हुआ।

मा ने एक लम्बी सास खीची। मैं भी चुप रहा। मैंने सोचा, मा ने भी वही बात कही—सम्पत्, अपने भी तो कर्जा चल रहा है। ऊँट वाला पैसा नही उतरा, अनाज लिया था, चलो, वह तो दे ही दिया।

—उधर भूरे का भी तो यही हाल हुआ, मैंने कहा।

— उसने जमीन ही बेच दी, मा बोली।

—अब क्या खायेगा ?

—जमीन तो मा है, भाई जबाब दे देता है, वेटा 'ना' कर देता है, लेकिन जमीन कभी 'ना' नही करती। जिसने जमीन दे दी, उसने अपनी 'मा' बेच दी।

—मा का अपना ही दर्शन था।

तो अब पड़ोस मे सेठ की हवेली बनेगी, मैंने कहा।

—रे, सुन। तेरे तायग हैं न, बिकेंगे ये हो। कर्जा सारा ही पड़ा है।

बेगे के पैसे दिए नहीं। पूरे ढाई हजार हैं। कल आया था वह, शोर मचा रहा था। कहता था—जमीन दे दे—या घर दे दे।

मैं छत की ओर देख रहा था। एक छिपकली बहुत देर से सामने की मक्खी की ताक में थी। झपटकर उसको मुह में ले गई और चबा गई।

मैंने कहा—मा, ये बड़े आदमी हैं न, बिलकुल छिपकली की तरह हैं। कितने सीधे, कितने मीठे। ये गरीब को खाकर अपना पेट भरते हैं। देखा, हम दिन-रात कमाते हैं, पेट नहीं भर सकते, लेकिन इनके मकान पक्के, दुकानें पक्की और औरतें बनठन कर बाहर निकलती हैं।

इतने में कुन्दन बोला—भैया, मैंने आज साप देखा खेत में, घूम रहा था।

—अरे, तू जाग रहा है।

—अब नींद खुल गई छिपकली की बात से।

हरदयाल ने लड़की की शादी में बीस तोला सोना डाला है, भगनी बोली।

तू भी सोई नहीं—मां बोली।

पूरे पचास हजार लगे हैं—पिताजी ने बाहर से ही कहा।

—अरे, सभी जाग रहे हो क्या? मा ने फिर कहा।

मा फिर खुश हो गई। वह एक ही बात में खुश रहती थी कि सब मेरे सामने रहें, कोई कहीं, कोई कहीं हो तो चिन्ता रहती है। मां ने वे दिन बड़ी परेशानी में गुजारे थे।

मैंने मां से एक राय मांगी—मा, एक बात पूछू?

—पूछ।

—मैं अगली साल कॉलेज में पढ़ूंगा।

—कॉलेज में पैसे नहीं लगते क्या, कॉलेज में पढ़ूंगा, कैसे पढ़ेगा कॉलेज में मा ने झिड़क दिया।

—पैसे की चिन्ता न कर।

—कहां से आयेंगे पैसे तेरे पास? मां ने उसी स्वर में कहा।

—पैसे तो मैं कर लूंगा।

—कैसे करेगा?

—ऐसे ही जैसे अब कर रहा हूं, हैडमास्टर ने मुझे इस बार छः रुपये दिए महीने के। शहर मे ज्यादा मिल जाते है। दो जगह पढ़ाऊगा, काम चल जायेगा।

—कर लेना, यह तो पास कर। देख, तेरे पिताजी कितनी परेशानी मे है। दिन रात कमाते हैं बेचारे। फिर भी पूरा नही पड रहा। तू पढ़ रहा है, कुन्दन पढ रहा है। अकेला जीव है। शरीर है या कोई मशीन। नौकरी करते थे, क्या शरीर था। अब देख, क्या हो गए है कितने दुबले हो गए है। मगनी का भी कुछ करना है कि नही।

पिताजी को शायद फिर नीद आ गई थी, वरना वे अवश्य बोलते।

—देख सम्पत्, मा फिर बोलने लगी, इतनी पढाई बहुत। कही नौकरी लग जा, नौकरी तो बहुत है, आजकल। लड़ाई खत्म हो ही गई। जगह-जगह स्कूल भी खुल रहे हैं। तेरा हैडमास्टर खास है ही। तेरे पिताजी को उनके पास भेजूगी। वे कही न कही तुझे लगा ही देगे, समझे।

किन्तु मैं अपनी कल्पना को मोड़ नही दे सका, मैं उसे सजोए बैठा था। कॉलेज में पढूगा, शहर देखूगा, बाग-बगीचे, सिनेमा और रग-बिरगी तितलियां विमला से भी सजीव, प्यारी। मेरी भावनायें किलकारी मारनें लगी थी। चक्की की तरह एक ही जगह चक्कर काटना ही तो जिन्दगी नही है।

विमला सवाल करते-करते मेरी ओर देख जाती है। मुझे महसूस हुआ कि आखें बोलती है। पहले तो आखें-आखें ही लगती थी अब वे कुछ और लगने लगी। उनमे कलकल करता जल नजर आया, जल जो किसी श्वेत पर्वतमाला से गिरता हो जिसका निनाद कभी बन्द न हो।

—सवाल देखना, ठीक है न।

—वह फिर कॉपी मेरे आगे कर देती।

—हा, ठीक ही होगा।

मैं पहले उसकी आखो मे देखता, फिर कॉपी की ओर।

फिर उसके ओठ मुस्करा देते जैसे उन्ही जलाशयों मे अनेक सफेद कमल नाच रहे हों एक साथ।

हाथ की दो अंगुलियां कभी उसकी अंगुलियों से अनायास ही [illegible] जाती,

एक झनझनाहट सारे शरीर के रक्त में एक साथ दौड़ जाती, फिर उसकी आँखें केवल मेज को ही देखने लगती जैसे कि चलता हुआ संगीत एकदम बन्द हो गया हो और उसके स्वर वायुमंडल में लीन।

विमला मेज के पास सटकर बैठती थी। काम करते-करते वह मेज के इतनी निकट आ जाती कि उसका उभार मेज से छूने लगता और फिर दो गोलाइयां चार गोलाइयों में बदल जाती। मेरी आखें चोरी-चोरी इस कार्य-क्रम को देखती। मैं सोचता कि उसके ब्लाउज के दोनों बटन एक झटके से टूट जायें और फिर मैं पूरे उभार को पूरे रूप में देख सकूं। विमला मुझे अन्य युवतियों से भिन्न नजर आने लगी। मैंने जीवन में पहली बार महसूस किया कि विमला एक जादू की लड़की है, उसके भीतर से एक महक पैदा होती है और वह महक आखों के रास्ते से मेरी रग-रग में प्रवेश कर रही है। मैं घर पर जाने लगा तो ऐसा लगा कि विमला मेरे साथ ही चल पड़ी। मैं घर में घुसा विमला साथ ही घुस गई। मैं पुस्तक पढ़ने लगा, वह मेरी पुस्तक पर आकर लेट गई। मैं सो गया, उसी बिस्तर पर वह भी लेट गई। क्या बन गई थी विमला ? मात्र लड़की तो थी, अन्य लड़कियों की तरह। फिर यह क्या होता जा रहा है। पिछले साल तो ऐसा नहीं था। वही तो विमला है, मैं भी वही हूं। फिर क्या हो गया है ?

मैंने अपना चेहरा काच में देखा। नाक के नीचे ओठों पर भूरे बाल कुछ उभरने लगे थे। कुछ भूरे बाल ठोडी पर नजर आ रहे थे। चेहरा कुछ भरा-भरा-सा लगने लगा था। मैं अपने को देखकर ही मुस्कराने लगा। मुझे लगा मैं विमला के सामने मुस्करा रहा हूं। काच में मेरे स्थान पर विमला नजर आई। बड़ी पगली है, पढ़ना नहीं है क्या ? मुझे तो बोर्ड की परीक्षा देनी है। समय टूटता जा रहा है। पुस्तकें भारी पड़ी हैं। अभी किया ही क्या है ? मेरे पिताजी ने पिछली साल ही कहा था—फस्ट डिवीजन लानी है।

मैंने काच को नीचे रख दिया। मन ही मन आगे आने वाली परीक्षा की सोचने लगा।

कुन्दन रूआंसा-सा आगे खड़ा था। मैंने पूछा—'क्या बात है ?'

—मास्टर जी पीटते हैं।

—क्यों ?

—सवाल नहीं आते ।

—मेरे पास आकर पढ़ा कर ।

—नहीं, तुम ठीक नहीं पढाते ।

—तो फिर ।

—मास्टर जी ठीक पढाते है, सभी उनके पास जाकर पढते हैं ।

—तो उनके यहा चला जाया कर ।

—पांच रुपये महीने मागते हैं ।

—अच्छा ऽऽ ।

मैं फिर चिन्ताग्रस्त हो गया । एक साल कीमती होता है, कुन्दन अब चौथी में है, अगली साल पाचवी में हो जायेगा । मास्टर लालची लगता है, चलो है ही ।

मैंने कहा — अच्छा कल से चला जाया कर ।

कुन्दन खुश होकर चला गया ।

तुलसी अपना मकान छोडकर चला गया । सेठ की पक्की ईंटें ट्रकों से आकर गिरने लगी । इसी मकान मे कभी किशन रहा करता था, मेरे बचपन का दोस्त । हम रात को इसी मकान में खेला करते थे—लुकमिचनी । चादनी दूर-दूर तक मकान मे बिछ जाती और हम अधेरा ढूढते । एक चोर होता, उसकी आखें बन्द कर दी जाती, सब छिप जाते । फिर वह हर अधेरे में अपना चोर ढूढता । ऐसी ही स्मृतियों का अवशेष था यह घर । अब यह सेठ सभी स्मृतियो को मिटा देगा । तुलसी के परिवार की स्मृतिया तो न मालूम इन कच्ची दीवारो से कितनी चिपकी होगी, सब धराशायी हो जाएगी । ऐसा ही हुआ । सारी कच्ची दीवारों का ढेर बन गया, जैसे सभी स्मृतिया पर हो गई हो यहा । फिर पक्की ईंटें एक-एक कर ऊपर चढ़ने लगी । एक दिन उन पर काला पलस्तर हुआ, फिर वह सफेद बन गया । फिर उस पर नीला आसमानी रंग चढ गया । उसके आगे हमारे अडौस-पडौस के घर फीके पड गए । उसी हवेली पर मैंने एक शाम को गुलाबी सूट मे एक छोकरी देखी । काले बालो मे गुलाबी रग के ही रिबन लटक रहे थे । दूज के उगने वाले चांद की प्रतीक्षा में थी । पश्चिम दिशा में

एक झनझनाहट सारे शरीर के रक्त में एक साथ दौड़ जाती, फिर उसकी आँखें केवल मेज को ही देखने लगतीं जैसे कि चलता हुआ संगीत एकदम बन्द हो गया हो और उसके स्वर वायुमंडल में लीन।

विमला मेज के पास सटकर बैठती थी। काम करते-करते वह मेज के इतनी निकट आ जाती कि उसका उभार मेज से छूने लगता और फिर दो गोलाइयाँ चार गोलाइयों में बदल जातीं। मेरी आँखें चोरी-चोरी इस कार्य-क्रम को देखतीं। मैं सोचता कि उसके ब्लाउज के दोनों बटन एक झटके से टूट जायें और फिर मैं पूरे उभार को पूरे रूप में देख सकूँ। विमला मुझे अन्य युवतियों से भिन्न नजर आने लगी। मैंने जीवन में पहली बार महसूस किया कि विमला एक जादू की लड़की है, उसके भीतर से एक महक पैदा होती है और वह महक आँखों के रास्ते से मेरी रग-रग में प्रवेश कर रही है। मैं घर पर जाने लगा तो ऐसा लगा कि विमला मेरे साथ ही चल पड़ी। मैं घर में घुसा विमला साथ ही घुस गई। मैं पुस्तक पढ़ने लगा, वह मेरी पुस्तक पर आकर लेट गई। मैं सो गया, उसी बिस्तर पर वह भी लेट गई। क्या बन गई थी विमला? मात्र लड़की ही थी, अन्य लड़कियों की तरह। फिर यह क्या होता जा रहा है। पिछले साल तो ऐसा नहीं था। वही तो विमला है, मैं भी वही हूँ। फिर क्या हो गया है?

मैंने अपना चेहरा काँच में देखा। नाक के नीचे ओठों पर भूरे बाल कुछ उभरने लगे थे। कुछ भूरे बाल ठोड़ी पर नजर आ रहे थे। चेहरा कुछ भरा-भरा-सा लगने लगा था। मैं अपने को देखकर ही मुस्कराने लगा। मुझे लगा मैं विमला के सामने मुस्करा रहा हूँ। काँच में मेरे स्थान पर विमला नजर आई। बड़ी पगली है, पढ़ना नहीं है क्या? मुझे तो बोर्ड की परीक्षा देनी है। समय टूटता जा रहा है। पुस्तकें सारी पड़ी हैं। अभी किया ही क्या है? तेरे पिताजी ने पिछली साल ही कहा था—फस्ट डिवीजन लानी है।

मैंने काँच को नीचे रख दिया। मन ही मन आगे आने वाली परीक्षा की सोचने लगा।

कुन्दन रूआँसा-सा आगे खड़ा था। मैंने पूछा—'क्या बात है?'

—मास्टर जी पीटते हैं।

—क्यो ?

—सवाल नही आते ।

—मेरे पास आकर पढ़ा कर ।

—नही, तुम ठीक नही पढ़ाते ।

—तो फिर ।

—मास्टर जी ठीक पढाते है, सभी उनके पास जाकर पढते हैं ।

—तो उनके यहां चला जाया कर ।

—पाच रुपये महीने मागते है ।

—अच्छा ऽऽ।

मै फिर चिन्ताग्रस्त हो गया । एक साल कीमती होता है, कुन्दन अब चौथी मे है, अगली साल पाचवी मे हो जायेगा । मास्टर लालची लगता है, चलो है ही ।

मैंने कहा — अच्छा कल से चला जाया कर ।

कुन्दन खुश होकर चला गया ।

तुलसी अपना मकान छोडकर चला गया । सेठ की पक्की ईंटें ट्रको से आकर गिरने लगी । इसी मकान मे कभी किशन रहा करता था, मेरे बचपन का दोस्त । हम रात को इसी मकान मे खेला करते थे—लुकमिचनी । चादनी दूर-दूर तक मकान मे बिछ जाती और हम अधेरा ढूढते । एक चोर होता, उसकी आखें बन्द कर दी जाती, सब छिप जाते । फिर वह हर अधेरे मे अपना चोर ढूढता । ऐसी ही स्मृतियों का अवशेष था यह घर । अब यह सेठ सभी स्मृतियों को मिटा देगा । तुलसी के परिवार की स्मृतिया तो न मालूम इन कच्ची दीवारों मे कितनी चिपकी होगी, सब धराशायी हो जाएगी । ऐसा ही हुआ । सारी कच्ची दीवारों का ढेर बन गया, जैसे सभी स्मृतियां परहो गई हो यहा । फिर पक्की ईंटें एक-एक कर ऊपर चढने लगी । एक दिन उन पर काला पलस्तर हुआ, फिर वह सफेद बन गया । फिर उस पर नीला आसमानी रग चढ गया । उसके आगे हमारे अड़ोस-पड़ोस के घर फीके पड़ गए । उसी हवेली पर मैंने एक शाम को गुलाबी सूट मे एक छोकरी देखी । बालो मे गुलाबी रंग के ही रिबन लटक रहे थे । दूज के उगने वाले चाद की प्रतीक्षा मे थी । पश्चिम दिशा में

हुआ कि शायद विमला ने कोई शिकायत कर दी हो या घर वालों ने मेरी चोरी पकड़ ली हो। विमला ने फिर मेरी ओर देखा, उसकी आंखों में विवशता थी। वे यही कह रही थी, हमारे खुले खिलवाड़ों में व्यवधान खड़ा हो गया। उस दिन कार्यक्रम समय से पूर्व ही समाप्त हो गया।

शायद दूसरे दिन ऐसा न हो, ऐसा सोचा था न मैंने लेकिन उसके पास काम ही क्या था, वह तो अपनी बुनती लेकर फिर बाहर बैठ गई। मुझे अब यह विश्वास होने लगा था कि उनके दिल में कोई संशय पैदा हो गया, अन्यथा पूरा एक वर्ष गुजर गया था, अब तक तो कोई बात नहीं थी।

अब मैं 'विमला' को लेकर अन्तर्मुखी होने लगा। भीतर ही भीतर कुछ घुटने लगा। वह घुटन एक गुब्बारा बन गई। वह गुब्बारा भी कब तक बना रहता, वह फूट पड़ा और फिर भावनायें अभिव्यक्ति बन कर बाहर आने लगी। विमला अब विमला नहीं रही, कविता बन गई। मैं कविता विमला को सौंप देता। शायद हर कविता विमला की गहरी खाई में डूब जाती थी। मैं असमंजस में था कि उसने कोई धड़कन, कम्पन कहीं कुछ भी पैदा नहीं की, विमला कितना गहरा कूप है, उसमें कितना अथाह जल है कि हर पत्थर चुपचाप डूब जाता है, कहीं कोई आवाज ही नहीं पैदा करता। क्या विमला कभी 'चुन्नी' नहीं बन सकती, जो रोज रात को एक दो खेल खेल लेती थी, तीजा भी नहीं बन सकती, जो बिना किसी संकोच के मेरा हाथ पकड़े मुझे ऊपर, नीचे लिए फिरती थी, फिर मामीजी जो नींद में ही सही, मेरे गलबांही डालकर अपनी सांसों की महक मेरे नाक के माध्यम से भीतर तक भेज देती थी। विमला अब आकाश का तारा बनती जा रही थी और वह तारा एक दिन टूट ही गया, जिस दिन विमला की भाभी ने मुझे बाहर से ही रोक दिया। उसने कहा, 'कल से हम तो शादी में जा रहे हैं। फिर तुम्हें भी तो अपनी पढाई करनी है।' फिर उसने मेरी जेब में से मेरी कविता का कागज निकाल लिया—क्या है यह ?

—ऐसे ही कोई कविता है, मैं भीतर ही भीतर कांपने लगा।

—खैर ! यह लो तुम्हारे छः रुपये।

मैं पैसे लेकर वापिस मुड़ गया।

कुचाला खाये कुत्ते की तरह मैं कुछ दिन घूमता रहा। मां, बाप, भाई,

निरन्तर आखें गड़ाये थी।

मैंने उसको सुनाने के लिए जोर से कहा—मा, तू भी चांद देख ले, आज दूज है।

मा तो नही आई थी लेकिन मगनी और कुन्दन छत पर आ गए थे; वे भी देखने लगे। अभी बादल की एक परत ऊपर आई हुई थी। मगनी चाद को नही उस लड़की को देखने लगी—सम्पत्, यह लड़की उस सेठ की है, इस मकान मे आ गए हैं ये। बड़े नखरे हैं इसके।

—स्साले, बदमाश है, इसके शरीर मे गरीबों का खून है, तभी यह लाल रग की है।

—इसने किसी का खून पिया था क्या भैया? कुन्दन बोला।

—इसके घर वाले पीते हैं कुन्दन।

—खारा नही लगता क्या?

—मगनी उसकी बात पर हँसने लगी।

तभी बादल इधर-उधर सरक गया और चांद दिखाई दे गया। मैंने जोर से आवाज दी—चाद, चाद मा, चाद।

हवेली का चाद भी ऊपर आ गया था।

मेरा स्वर और तेज हो गया—मा, चाद, चांद।

—इधर किधर है चाद, पगले।

दरअसल मेरा मुह हवेली की ओर था जो पूरब दिशा मे थी।

लड़की झेंपकर नीचे उतर गई।

विमला के शरीर पर लाल रग की साड़ी जितनी फबती थी, उतनी दूसरी नहीं। उस समय दोनो चोटियो मे भी वह रिबन बाधती थी। मैंने कहा—तुम रोजाना यही साडी पहना करो।

—अच्छी लगती है क्या?

—क्या खूब?

विमला मुस्करायी। सारे कमरे मे फूल से बिखर गए। वह बैठ गई। उसने अपनी अग्रेजी की पुस्तक सामने रखी। पढाई चालू हुई। थोड़ी देर बाद ही विमला की भाभी बाहर आकर बैठ गई और हम दोनो अनुशासन-बद्ध हो गए। बोलने में भी हर तरह से सयम बरतना पड़ा। मुझे आश्चर्य

हुआ कि शायद विमला ने कोई शिकायत कर दी हो या घर वालो ने मेरी चोरी पकड़ ली हो। विमला ने फिर मेरी ओर देखा, उसकी आखो मे विवशता थी। वे यही कह रही थी, हमारे खुले खिलवाडो मे व्यवधान खड़ा हो गया। उस दिन कार्यक्रम समय से पूर्व ही समाप्त हो गया।

शायद दूसरे दिन ऐसा न हो, ऐसा सोचा था न मैने लेकिन उसके पास काम ही क्या था, वह तो अपनी बुनती लेकर फिर बाहर बैठ गई। मुझे अब यह विश्वास होने लगा था कि उनके दिल मे कोई सशय पैदा हो गया, अन्यथा पूरा एक वर्ष गुजर गया था, अब तक तो कोई बात नही थी।

अब मैं 'विमला' को लेकर अन्तर्मुखी होने लगा। भीतर ही भीतर कुछ घुटने लगा। वह घुटन एक गुब्बारा बन गई। वह गुब्बारा भी कब तक बना रहता, वह फूट पडा और फिर भावनाये अभिव्यक्ति बन कर बाहर आने लगी। विमला अब विमला नही रही, कविता बन गई। मै कविता विमला को सौंप देता। शायद हर कविता विमला की गहरी खाई मे डूब जाती थी। मैं असमंजस मे था कि उसने कोई धडकन, कम्पन कही कुछ भी पैदा नही की, विमला कितना गहरा कूप है, उसमे कितना अथाह जल है कि हर पत्थर चुपचाप डूब जाता है, कही कोई आवाज ही नही पैदा करता। क्या विमला कभी 'चुन्नी' नही बन सकती, जो रोज रात को एक दो खेल खेल लेती थी, तीजा भी नही बन सकती, जो बिना किसी सकोच के मेरा हाथ पकडे मुझे ऊपर, नीचे लिए फिरती थी, फिर मामीजी जो नीद मे ही रहो, मेरे गलबांही डालकर अपनी सांसो की महक मेरे नाक के माध्यम से भीतर तक भेज देती थी। विमला अब आकाश का तारा बनती जा रही थी और वह तारा एक दिन टूट ही गया, जिस दिन विमला की भाभी ने मुझे बाहर से ही रोक दिया। उसने कहा, 'कल से हम तो शादी मे जा रहे है। फिर तुम्हे भी तो अपनी पढाई करनी है।' फिर उसने मेरी जेब मे से मेरी कविता का कागज निकाल लिया—क्या है यह ?

—ऐसे ही कोई कविता है, मैं भीतर ही भीतर कापने लगा।

—खैर ! यह लो तुम्हारे छ: रुपये।

मै पैसे लेकर वापिस मुड़ गया।

कुचोला खाये कुत्ते की तरह मैं कुछ दिन घूमता रहा : मा, बाप, भाई,

बहन, साथी, सगी सभी परायी दुनिया के से आदमी लगने लगे। दिन मुश्किल से स्कूल में कटता, शाम को गांव से बाहर कुछ दूर एक बालू के टीले पर जाकर बैठ जाता। विमला के प्रदेश की ओर आंख पसार कर देखता रहा। हवायें उधर से आती तो सोचता, उसके शरीर से स्पर्श करके आ रही होंगी, हवा उधर जाती तो सोचता, मेरा सदेशा उसे ले जाकर दे रही होंगी। फोग, कैर, आक बालू के टीलों पर 'मौ, मौ' की आवाज करते, मैं उन्हें देखता रहता, मेरी आंखें इस एकान्त में पानी से लथपथ हो जातीं, गालों पर धारायें बनतीं और अपने आप सूख जातीं।

एक दिन मुलतान के पास चला गया। पहले कुछ दबे-दबे स्वर में कहने लगा, कुछ खुलने लगा, अन्त में पूरा खुल गया। बस यही इसका उपचार था। कभी-कभी घर की छत पर चढ़ता, पुस्तक लेकर बैठ जाता, हवेली का चांद भी ऊपर आ जाता, मैं उसे देखता रहा, वह भी मुझे देखने लगी। परीक्षायें निकट आने लगीं, उससे पुस्तकों में मन रमने लगा।

मां ने एक दिन सुनाया—सम्पत्, तेरे पिताजी तेरे लिए एक लड़की देख आए।

—मुझे लड़की-वड़की नहीं चाहिए, मां।

—देख क्या आए, तय भी कर आए।

—यह क्या कर रहे हो तुम?

—भगनी के लिए लड़का भी देख आए।

—यह तो अच्छा किया।

—तेरे लिए क्या बुरा किया?

मैं शायद यह कहता, क्या लड़की विमला जैसी है? मुझे केवल विमला पसन्द है, मां, दूर देश की विमला, गोल-सी आंखें, पतले-से ओठ, मुलायम और नरम-सी चमड़ी, यानी विमला ही केवल वैसी लड़की हो सकती है। विमला तो भीतर से विमला है, बाहर से तो वह और लड़कियों जैसी ही तो है।

—लेकिन मैं चुप रहा था।

—मैंने भी उसे देखी है, सम्पत्।

—अच्छा बता, कैसी है?

—उसकी आखे है वडी-वडी।
—काली है काली, कुन्दन हँसने लगा।
—अवे, तुझे कैसे मालूम, मैंने उसे डाटते हुए कहा।
—मां ही तो कह रही थी; वह कुछ रुआसा हो गया।
—हा, कुछ सावली ही तो है, भई।
—नही, मुझे नही चाहिए, मैंने जोर देकर कहा।
—अच्छा वता, कैसी चाहिए ?
—मैं बताऊ, कुन्दन वोला।
—अच्छा तू वता, मैंने कहा।
—हवेली वाली लडकी है न वैसी, कुन्दन बोला।
—विल्कुल ठीक कह रहा है यह।
—मैंने ठीक वताया न, भैया, कुन्दन ने कहा, अच्छा मा, भैया के साथ इसकी शादी क्यो नही हो सकती।
—अवे, यह वनिया है न।
—तो अपने राजपूत है, राजपूत तो राज करते हैं।
—दूसरी जात है न, वेटा।
—क्या भेद है मा ? कुन्दन वोला।
—बुजुर्गों ने वनाया है, मा ने बताया।
—बुजुर्ग उल्लू थे, मैंने आवेश मे कहा।
—मा क्या करे, मा वोली।
—मगनी के लिए कैसा लडका देख आए, यह वता ?

मा ने बताया—लडका पुलिस मे नौकरी करता है। जमीन बहुत है। लड़का भी अच्छा है।

मगनी अब तक तो सव कुछ सुन रही थी, अव बाहर चली गई, लेकिन उसके कान जरूर इधर ही लगे हुए थे।

मैंने पढाई की गति और तेज कर दी। कभी-कभी शाम को थोड़ा ऊपर चढ जाता। हवेली के चाद को भी देख लेता। वह बनठन कर ऊपर आती थी। मैं कुछ देर तक उसे निहार कर नीचे चला आता। विमला की स्मृतियां कुछ धूमिल पड़ने लगी थी। जव कभी वह याद आ जाती, उसी

समय सुलतान की बात भी याद आ जाती—तू इस औरत-वौरत के पचड़े में कभी मत पड़ना। औरत बड़ी बेहया कौम होती है। पागल, उसके लिए रो रहा है। कभी यह भी तेरे लिए रोयी है। ऐसी कमीन होती है कि पूछ मत। साली, यह बड़े से बड़ा धोखा दे सकती है। अपने प्रेमी के लिए अपने खसम को जहर दे सकती है और दुनिया को बताने के लिए अपने प्रेमी का गला काट सकती है। उसने मुझे एक कहानी सुनायी—एक शहर की बात है कि एक औरत किसी से प्रेम करती थी। उसके पति को पता लग गया। पता यों लगा कि प्रेमी का कागज पकड़ा गया। अब भई, दे जूते, दे थप्पड़।

उसके पति ने पूछा—तू उस यार को प्रेम करती है क्या?—बिलकुल नहीं।

मार के आगे तो भूत भागें। साली करती थी, तभी तो उसने पत्र लिखे थे। लेकिन 'ना' कर गई।—तो तू उसे यह जहर का प्याला पिला दे।

—बस, उसने उसे जहर का प्याला दे दिया। प्रेमी मर गया।

पुलिस उन दोनों को पकड़ कर ले गई। औरत ने कह दिया—मैं क्या करूं, मेरे पति ने कहा।

—औरत तो छूट गई और पति को फांसी हो गई। उसने प्रेमी और पति दोनों को मरवा दिया।

—बोला, अब क्या कहता है। सुलतान ने पूछा, तेरी उस विमला, चमला ने तेरी कवितायें अपनी भाभी को दे दी होंगी और तेरा किस्सा कटवा दिया। समझे, चला है, इश्क करने। सुलतान मुझे इस तरह चिढ़ाने लग गया था, मेरी गर्दन शर्म से झुक गई।

—यार, और किसी को मत कह देना, मैंने कहा, लोग मजाक उड़ायेंगे।

शाम को सुलतान और मैं साथ-साथ घूमने लगे। प्रायः पढ़ाई की ही चर्चा करते, कभी विमला की बात भी छिड़ जाती। मैं कभी हवेली की चंदा की चर्चा नहीं छेड़ता, इसी डर से कि सुलतान मजाक ही उड़ायेगा।

एक दिन उसने अपने पड़ोस की बात छेड़ दी, अपनी चाची की बात। उसका चाचा तो मर ही चुका था। उसकी चाची ने अपने मामा

को भी निकाल दिया, उसका सब कुछ वह खा पी चुकी थी। चाची का लड़का बड़ा हो गया और शराब पीने लगा। शराब भी इस तरह पीने लगा कि बस पूछो मत। दस-दस शराब पीने वाले साथ बैठते और शराब पीते। उसका खेत बिकने वाला है, घर भी।

—कौन खरीद रहा है?

—एक चौधरी है। उसने ब्याज से खूब कमाया है। जमीनें ले रहा है। उसका तरीका यह है कि जरूरत वाले को पहले पैसा देता है, जमीन लिखवा लेता है। ब्याज बढ़ता रहता है और जमीन उसके नजदीक सरकने लगती है।

—गांव का गरीब तबका पिसता जा रहा है।

—इस तबके में भी अक्ल नहीं है। अनाप-शनाप खर्चा करता है, किसकी गलती है।

—कुछ भी हो, यह तो सही है कि मोटे अधिक मोटे हो रहे हैं और गरीब घर और जमीन दोनों छोड़ जा रहे हैं।

—गरीब को भी सीमा में रहना चाहिए न।

सीमा क्या है, सीमायें तो पहले से ही समाज ने निर्धारित कर दी हैं। विवाह में एक सीमा बन गई है, कौन तोड़े इसे? समर्थ को आदर्श उपस्थित करना चाहिए, वे पहले की बनी सीमायें लांघ रहे हैं। गरीब करे क्या, वे तो सीमा भी नहीं निभा सकते। मोटे तो ताक में रहते हैं, मौका आते ही झपट लेते हैं।

सुलतान इस विवाद में अधिक नहीं उलझा।

रात को दस बजे तक और फिर अंधेरी ही रात में चार बजे उठ जाता। एक नियमित पढ़ाई चलती रहती थी। अंग्रेजी पर विशेष जोर था। इतिहास और भूगोल ऐसे विषय थे जिसमें रोज की 'रीडिंग' जरूरी थी। आगे वाला पूरा करने पर पीछे वाला साफ और पीछे वाला करने पर आगे वाले साफ। दिन में स्लेट-बत्ती से गणित, बीज गणित और रेखागणित की पुनरावृत्ति करता रहता। हिन्दी में रस आता था, अतः उसे कभी लेकर बैठ जाता।

एक दिन स्कूल से सबको विदाई दे दी गई। उस दिन मन भीग गया

था, दस वर्ष की इस संस्था को सदा के लिए छोड़ने को थे। गुरुओं ने आशीर्वाद दिया और अपनी-अपनी शुभकामनायें प्रकट कीं।

घर पर जाकर दिन भर की योजना बनाई और सभी विषयों पर समान रूप से समय का वितरण किया। हैडमास्टर ने विशेष रूप से अनुरोध किया—'विशेष कठिनाई हो तो पूछ जाना, फस्ट डिवीजन लानी है।' और मेरा प्रयास फस्ट डिवीजन के लिए ही था।

दिन में रोटी कम ही खाता था, मां कहती—बहुत दुबला होता जा रहा है, कुछ दूध पी लिया कर।

मैंने दूध की मात्रा बढ़ा दी।

परीक्षा प्रारम्भ होने से दो दिन पूर्व ही हम अपने परीक्षा केन्द्र पर पहुंच गए। परीक्षा केन्द्र एक शहर है, चकाचौंध करने वाला शहर—सड़कें, बाग, बगीचे, बिजली और तितलियां-सी लड़कियां—रंग-बिरंगी।

मैंने सुना कि यहां कालेज में भी लड़कियां पढ़ती हैं, लड़कों के साथ, तब तो मैं जरूर कालेज में पढ़ूंगा, चाहे कुछ भी हो।

परीक्षा प्रारम्भ हो गई। एक-एक कर पेपर निकलने लगे—सब ठीक होते जा रहे थे, चिन्ता एक-एक कर घटती जा रही थी। बीच में रविवार आया, उस दिन पिक्चर में गया। एक रमणीक बाग में पिक्चर-हाउस था। कुछ देर मखमली दूब पर बैठा, उस पर हाथ फेरता रहा, बहते हुए फव्वारों के पास आया। कुछ देर वहां खड़ा रहा, मेरे ऊपर बूंद गिर रही थी, जैसे बरसात के फव्वारें आ रही हों। भीतर ही भीतर अपार आनन्द की अनुभूति हुई। विभिन्न रंगों के फूल कतारों में खिल रहे थे। सोचने लगा—यहां का जीवन क्या स्वर्ग से कम है? दरअसल, हम लोग गांवों में जिन्दगी को घसीट रहे हैं, जिन्दगी इन लोगों की है जो यहां का जीवन जी रहे हैं। फिर पिक्चर-हाउस में प्रवेश कर गया, फिर पक्का निर्णय ले लिया कि यहां आकर कालेज में अवश्य पढ़ना है, चाहे कुछ भी करना पड़े।

तीन दिन के बाद परीक्षा समाप्त हो गई, सभी पेपर्स सन्तोषजनक हो गए, थोड़ा हिन्दी का खराब हुआ था। एक निबन्ध को जानबूझकर गलत लिख गया ताकि उसमें कल्पना के पंख लगा सकूं, फिर भी 'फस्ट डिवीजन' में सन्देह नहीं था। गणित सौ में केवल दो का गलत रहा, संस्कृत

मे शायद ही कही गलती थी। अंग्रेजी का आशा से अधिक अच्छा हो गया। शेष सभी ठीक थे।

घर जाने पर मा और पिता ने भारी उत्सुकता से यही बात पूछी—अच्छे नम्बरों मे पास हो जाओगे न। दरअसल, प्रारम्भ से ही मैं फेल तो हुआ ही नही। कक्षा मे अब तक फस्ट रहा, अतः घर वालों के मस्तक में 'फेल' शब्द तो कभी आया ही नही। उन्हे केवल फस्ट न आने की चिन्ता होनी थी, वे डिवीजन नही समझते थे, क्लास मे फस्ट आने तक की उनकी समझ थी।

मैंने फिर मा से कहा—मा, मैं फस्ट तो आ ही जाऊगा, मैं कॉलेज मे पढ़ूगा आगे।

—बेटा सम्पत्, अपना घर तो देख और फिर अपना खर्चा देख, फिर तेरी पढाई का खर्चा देख। सारा घर, जमीन भी बिक जाए, तो भी हम तेरी आगे की पढाई नही करा सकते। तू बच्चा तो नही है, तू खुद समझता नही क्या ?

—यह बात नही मा, तू बहुत आगे निकल गई।

—तो क्या है ?

खर्चा जानू और मैं जानू, सिर्फ तेरी और पिताजी की इजाजत चाहिए ?

—बस, फिर हमें क्या है। तू कर सकता है तो कर, लेकिन ऐसा हो जाए तो सभी कर लेवें।

—मैं कर लूगा।

—तू कर लेवे तो कर, वैसे दसवी बहुत हो गई, देख, गाव मे चार-चार पास थानेदार, पटवारी बन गए। तू तो दसवी पास हो गया।

—मा, वह जमाना और था। इस जमाने की बात और है।

—तुझे नौकरी तो मिल जायेगी।

—नौकरी का क्या मा, जिन्दगी सिर्फ पेट तक ही है क्या ? आदमी को कुछ बनना चाहिए, वह अच्छी पढाई के बिना होती नहीं, तुझे समझाऊ क्या, तू समझती भी तो नहीं, तूने देखा भी क्या है ? तूने शहर देखा है।

—हा देखा है, एक दिन गई थी तुम्हारे मामाजी के साथ, छोटी-सी

थी तब, दीवाली का दिन था, दुकानें, पक्के मकान, और क्या ?

—अरी मां, तूने कुछ नही देखा। बाग देखा है ?

—बाग नही देखा।

—बागो मे फवारे ?

—ना,

—और सिनेमा ?

—बाइस-कोप

—ना,

फिर क्या देखा, मां। सच, मैं वहां रहने लगूंगा, तब तुझें दिखा दूगा। अरी मा, बस, शहर-शहर ही है। यहा क्या है, कुछ भी नही।

—मुझे, कुन्दन ने कहा।

—तुझे भी

—मुझे, मगनी ने पूछा।

—तुझे भी।

फिर मैं शहर की मीठी कल्पना की महक मे डूब गया।

चादनी गाव पर उतरने लगी थी। मिट्टी और गोबर से लिपे घर हँस कर चाद का स्वागत कर रहे थे। गाव के सारे घरों की छतें ऐसी जुड़ी हुई थी जैसे कि गाव वालो के दिल जुड़े हुए हो। इक्के-दुक्के पक्के घर अपना अस्तित्व अलग बनाए हुए थे, मानो उनके दिल भी अलग हों। हम सभी छत पर सोने की योजना बना चुके थे, अड़ोस-पड़ोस के लोग भी छत पर आ गए थे। बहुत गर्मी थी, ऊपर कुछ हवा तो लग रही थी। पिताजी घर से बाहर ही सोया करते थे और बाहर ही सो रहे थे। उनकी महफिल अलग जमती थी। हमारे जाति के हिसाब से मामाजी लगते थे सांवतजी, उन्हें सभी भक्त कहते थे। वे एक इकतारा रखते थे और उस पर भगवान के गीत गाते थे। रात को कामकाज से निवट कर सभी युवक, वृद्ध उनके चारों ओर जुट जाते और उनसे भजन सुनते। वे धीमे-धीमे स्वर मे शुरू करते और फिर जोर चढ जाते। कुछ दिन उनके गीत होते, फिर बाबाजी कोई पुरानी कहानी कहते। उनके पास कहानियो का खासा भण्डार था, बीच-बीच मे कवितायें भी होती। एक-दो हुक्के वाले आ जाते। कुछ देर हुक्का

चलता, फिर चिलम चल पड़ती। इसके बीच खेती की चर्चायें भी होती। अपनी-अपनी समस्यायें रखते। किसी पशु की बीमारी का भी जिक्र आ जाता, औषधियों का सुझाव होता। धीरे-धीरे वहीं अपनी-अपनी खाटों पर लुढक जाते, आवाजें धीमी पड़ जाती, फिर सभी नींद की गोद में लुढक जाते। उस पर ऐसा लगता, सारा गाव सो गया है। फिर केवल कुत्ते भौंकते, शायद वे इस समय गाव की रखवाली का सारा दायित्व अपने ऊपर ही समझते थे।

सारा गाव सोने पर भी मैं नहीं सोया था, नींद नहीं आई थी। हवा तो चल रही थी, लेकिन उसकी तासीर अभी गर्म ही थी। सर्वत्र डरावनी शान्ति थी मैं मन ही मन शहर की कल्पना कर रहा था, कालेज की कल्पना—एक नया जीवन, नया रस, उसी में डूबा, इतरता, बायें, दायें अपने शरीर को पलट रहा था। तभी दूर कुछ फुसफुसाहट का स्वर कानों में पड़ा। मैंने अपनी गर्दन ऊंची उठाई।

यह स्वर किसी छत पर से आ रहा था। कभी लगता, कोई आदमी बोल रहा है, कभी लगता कोई औरत। कभी उनका मिला-जुला स्वर। चोर-उचक्के का तो भय दूर हो गया, क्योंकि औरत का स्वर भी तो बीच में था। फिर चूड़ियों की खनखनाहट, फिर पायलों की झनझनाहट। माजरा क्या है? उसके बाद खाट की चरड़-चू। ओहो, बात अब समझ में आई। अभी-अभी नया जोड़ा बना है और उन्होंने सब शान्त हो गए तब अपनी अशांति दूर करने की सोची है। किन्तु नींद उचटी तो ऐसी उचटी कि हवा पूर्णतः ठंडी हो गई, खाट वाले शांत हो गए, फिर भी नींद नहीं आई। मैं एक ही सपने के इर्दगिर्द घूमता रहा। आखिर यह सपना साकार होगा कैसे? क्या नहीं लगता है शहर में। खाना, पीना, कपड़े, पुस्तकें, फीसें, कहां से आएगा यह सब कुछ। ट्यूशनों से काम चल सकता है, लेकिन ट्यूशनें कहां से आएगी इतनी। कौन जानता है तुझे? बिना परिचय के कौन पूछता है वहां? आखिर एक विचार दिमाग में आ ही गया कि कल सभी अध्यापकों से एक-एक कर मिला जाये। काफी शहरों के आदमी हैं, कोई न कोई मार्गदर्शक बनेगा ही।

हैडमास्टर के घर पहुंचा तो विमला याद आ गई। विमला की भाभी

बाहर ही मिल गई।

—बहुत दिनों से आये, उसने उपालम्भ-सा दिया, क्यों रास्ता भूल गए क्या ?

—ऐसे ही नहीं आया, साहब हैं क्या ?

—हां, हां, भीतर ही हैं, आओ।

उसने रास्ते में पेपरों के बारे में भी पूछ लिया।

—अरे, आओ भाई सम्पत्, हैडमास्टर साहब ने अपना चश्मा उतारते हुए पूछा, शायद वे कुछ पढ़ रहे थे।

—अरे, तुम आए ही नहीं, वैसी ही बात उन्होंने भी पूछ ली, अब मैं समझा कि मैं तो आने से व्यर्थ में ही झिझक रहा था।

—पहले बताओ, पेपर कैसे हुये ?

—बहुत अच्छे हो गए।

—अरे, फर्स्ट डिवीजन आ जायेगा न।

—आना तो चाहिए।

—गणित में कितने का ठीक हो गया, हैडमास्टर गणित पढ़ाया करते थे।

—दो नम्बर का गलत हो गया।

—और तो सब ठीक।

—बिल्कुल ठीक।

—तब तो डिवीजन बन आना चाहिए।

—प्राय डिवीजन गणित पर ही निर्भर करती है।

—अब क्या विचार है, हैडमास्टर ने मतलब की बात पूछी।

—पढ़ना चाहता हू, लेकिन—

लेकिन के आगे प्रश्न-चिह्न था।

फिर विमला की भाभी भी वहीं आ गई थी। हैडमास्टर साहब भी कुछ देर सोचते रहे।

—मैं तुम्हें एक बात बता दू, वे कुछ विचार-ग्रस्त होकर बोले, तुम ट्यूशन तो कर ही लोगे, उनकी आखें मेरे पूरे शरीर पर टिकी थी।

—इसके घर से तो पार नहीं पड़ेगी, विमला की भाभी बोली।

—मैं जानता हू, हैडमास्टर ने कहा, सम्पत का घर मेरे से छिपा तो नही है। इसका बाप तो सिपाही था और वह भी छोड़ बैठा, खेती मेरे से छिपीनही लेकिन लड़का होनहार है। फस्ट डिवीजन तो इसके बाएं हाथ का खेल है।

गर्व से मेरा छोटा-सा सीना फूल गया।

—तुम ऐसा करना, वे मेरी ओर देखकर बोले, मेरे कुछ मित्र हैं वहा, मैं उनको लिख दूगा।

—डाक्टर साहब हैं न वहा, बिमला की भाभी बोली।

—अरे कई है, भई।

—मुझे कुछ तसल्ली हो गई।

—अच्छा, छुट्टियो में तो कही जाना नही है, उन्होंने फिर पूछा।

—कही नही जाना।

—बस तो, कुछ यहाँ भी करवा दूगा। समझे—

—बस, बस मैंने विश्वासपूर्वक कहा।

मैं प्रसन्नमुद्रा मे घर पहुचा।

दो दिन बाद ही हैडमास्टर का चपरासी मुझे बुलाकर ले गया।

—हैडमास्टर ने जाते ही कहा—आ गए न तुम।

—हा गुरुजी, मैंने दोनों हाथ जोडकर कहा।

—अपने थानेदार साहब हैं न, उनकी लडकी है, अग्रेजी पढना चाहती है, पन्द्रह रुपया महीना के देंगे, आज से ही लग जाओ।

—अच्छा जी।

—दूसरी ट्यूशन और।

—अपने वैद्यजी के बच्चे हैं, इनको तुम एक घटा दे दो, ठीक है न। पद्रह रुपये ये दे देंगे।

—तुम्हे तीस रुपए महीने के मिल गए। कालेज खुलने के दिन रह गए पूरे तीन महीने, नब्बे रुपये बन जायेंगे। शुरुआत तुम्हारी हो ही जायेगी, तब तक तुम्हे वहा कुछ बन जायेगा, बिल्कुल ठीक—बस—

मेरा हृदय हर्षातिरेक से गद्गद् हो गया। मेरी टांगें जैसे उछलने लगी। ऐसा लगा, जैसे कि मैं हवा में चल रहा हू। मुझे अपने पर ही गर्व

होने लगा। मन ही मन कहने लगा कि आदमी चाहे तो क्या नहीं कर सकता।

वैद्यजी के दो बच्चे थे—कमला और सरला। कमला चौथी में थी, सरला थी दूसरी में। दोनों बच्चे गोरे रंग के बड़े प्यारे लगते थे। सुबह स्नान कर लेते, फिर नाश्ता—दूध के साथ दो-दो बिस्कुट। फिर पुस्तकें लेकर पढ़ने बैठ जाते, मैं उस समय पहुंच जाता। इन बच्चों को पढ़ाकर मैं घर के लिए रवाना होकर वापिस आता और गलियों में गांव के बच्चों को देखता। मुझे लगता कि गांव अभी खुरदरा है और ऊबड़-खाबड़ है। वैद्यजी के लड़के बिल्कुल पालिश की हुई लकड़ी है तो गांव का बच्चा छाल से लिपटी हुई। गांव का बच्चा तो अभी आदिम रूप में ही है, जैसा पैदा हुआ था ठीक वैसा ही। आंखों में 'गीड़' है तो है, सिर में धूल पड़ी है, पड़ी है। कपड़ा नहीं है तो नहीं, है तो है। नंग धड़ंग धूल में लेट रहा है, पड़ा है, खड़ा है, रो भी रहा है, हंस भी रहा है। बस ऐसे ही चलते-फिरते बड़ा हो जाता है। एक दिन महसूस होता है कि पूरे कपड़े पहनने चाहिए, फिर पहन लिये तो उतरते ही नहीं। जूएं खाती हैं तो खाती रहें। लेकिन समय मिल गया, तो शरीर पर पड़े कपड़े को ही उलट-पुलट जूएं मार लीं तो मार लीं, पड़ी हैं तो पड़ी है। कभी वे खाती है तो खुजला कर उस पीड़ा को उस क्षण तो मिटा देता है, फिर उसे ढोता रहता है। इससे अधिक उन्हें जीवन जीना नहीं आता।

दोपहर को थानेदार साहब के घर आया। थानेदार साहब घर पर नहीं थे। उनकी बहू अपनी लड़की को लेकर मेरे पास आई। उनकी बैठक में कुल एक खाट थी। उसी खाट पर मुझे बैठने को कहा और उसी खाट पर उस लड़की को बैठने को कहा। थानेदार की बहू ने मुझसे कहा—देखो, इसने हिन्दी तो पढ़ ली है, अब इसको अंग्रेजी पढ़नी है। इसकी हमने सगाई कर दी है, लेकिन इसके ससुराल वालों ने एक शर्त रख दी है कि इसको अंग्रेजी जरूर पढ़ाओ। इसके पिताजी ने हैडमास्टर साहब से कहा था। अब देखो, यह अंग्रेजी पढ़ जाये, बस।

—फिर वह कुछ क्षणों तक ठहरकर बोली—कितने दिन में पढ़ जायेगी ?

—पढाई का तो कोई अन्त ही नही, माताजी ।

—हमे तो काम चलाऊ चाहिए, खत, पत्तर पढ ले, बस ।

—खत, पत्र तो माताजी, पूछो मत, बहुत टायम लगता है ।

—खैर तुम पढाओ तो सही, हमे कौनसी नौकरी करानी है ।

लडकी मेरी ओर टुकर-टुकर देख रही थी । मां इतना कहकर चली गई ।

—मैंने पूछा—क्या नाम है तुम्हारा ?

—सरस्वती, वह बोली ।

—कोई पुस्तक है ?

—ना

—अच्छा तो, स्लेट, बस्ता तो होगा ही ।

—देखती हू ।

—वह उठकर स्लेट-वस्ता ढूढने चली गई ।

सरस्वती को देखकर विमला याद आ गई । इसकी अवस्था विमला मे थोडी ही कम होगी । रग-रूप मे उससे सुहावनी थी, लेकिन शरीर इसका कुछ दुबला था । कुछ देर मे वह बस्ता और स्लेट ले आई ।

—कॉपी, कलम भी होगे, मैंने पूछा ।

—हाँ, हैं ।

थोड़ी ही देर मे वह एक पैन और कॉपी भी ले आई ।

उसी खाट मे बीच मे पढाई का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ । ए. बी. सी. डी.—पहले । सरस्वती लिखने लगी । मैंने कमरे का निरीक्षण किया । सारा कमरा ही खाली-खाली-सा था । सारी दीवारे नगी थी, फर्श पर सिवाय खाट के कुछ भी नही था । जगह तो इतनी थी कि पाच-चार खाटें आराम से आ सकती थी । कमरे के दो दरवाजे थे—एक वाहर से और एक भीतर से । इस समय दोनो ही खुले थे । एक द्वार तो बिल्कुल गली मे था, आते जाते हम दोनो को नजर मार जाते थे । थोड़ी देर मे सरस्वती ने वाहर का दरवाजा वन्द कर दिया । बाहर झाकने वाली खिडकिया अभी खुली थी । सरस्वती ने पूरी 'ए. बी. सी. डी' लिखकर दिखा दी । मैंने कहा —फिर लिखो ।

उसने फिर लिखना शुरू किया—मैंने कह दिया—इसे पूरा याद करना, ताकि तुम हरेक अक्षर को पहचान सको। उसने फिर लिखना शुरू किया। उसकी अंगुलियां पतली और लम्बी थी। वह लिखती जा रही थी। उसने दोनों टांगें इकट्ठी करके जमीन पर पैर रख छोड़े थे। कॉपी पैरों के ऊपर रख ली थी। उसे कुछ असुविधा हो रही थी। मैंने कहा—कॉपी के नीचे स्लेट रख लो। उसने स्लेट नीचे रख ली।

मैंने फिर कहा—अच्छा है, तुम स्लेट, बरते से अभ्यास करो। उसने वैसा ही शुरू कर दिया।

मैंने भीतर के दरवाजे से बाहर नजर पसारी। कोई भी नहीं था। मां शायद भीतर के कमरे में होगी।

मैंने बीच में ही पूछ लिया— कितने भाई-बहन हो ?

उसने मेरी ओर बिना देखे ही कह दिया—अकेली बहन हूं।

—भाई नहीं है।

—नहीं तो।

वह एकटक ए बी.सी.डी. के अभ्यास में लगी थी।

थोड़ी ही देर में बाहर से आदमी आया, नौकर-सा लगा। उसने मेरी ओर घूर कर देखा। सरस्वती ने रौब से आवाज दी —धनिया।

धनिया कमरे के भीतर आ गया। जवान-सा छोकरा था। सरस्वती ने फिर कहा—पानी पिला।

धनिया एक लोटे में पानी लाया।

—कांच का गिलास पड़ा है न, सरस्वती ने फिर रौब डाला।

वह कांच का गिलास ले आया। मैंने पानी पिया, फिर सरस्वती ने।

धनिया पानी पिलाकर बाहर चला गया। सूनापन फिर छा गया। गर्मी प्रारम्भ हो चुकी थी, लूंयें अपना साम्राज्य स्थापित कर चुकी थी। खिड़कियों से कभी लू का झोंका आ जाता, कमरे में पूरी सनसनी पैदा कर चला जाता।

सरस्वती ने तीन बार 'ए. बी. सी. डी.' लिखकर दिखा दी। उसने पाजामा पहन रखा था, बिल्कुल साफ, सफेद, नया धुला हुआ, सिर पर गुंथे हुए बाल थे। शायद बाल ही इतने लम्बे और भारी थे कि चोटी खाट

को छू रही थी। बदन भरा हुआ नही था, इसलिए उसकी लाल कमीज ढीली-ढीली लगती थी। जब कभी वह मेरी तरफ देखती, उसकी बडी आंखें हिरनी की सी लगती थी। उसका पतला मुंह बिल्कुल साफ था जैसे अभी धोया हो। नुकेले नाक मे बिल्कुल छोटा-सा लोंग सुन्दर लगता था।

मैंने अनुमान से समय को टटोला, पूरा हो ही गया होगा, और यह कह कर—'कल इसी समय आऊगा', घर चल पड़ा।

घर पहुचा, पिताजी आगन मे खाना खा रहे थे। उनकी झबरी मूछों के नीचे से दूध मे मिली हुई बाजरी की रोटी बेरोक-टोक जा रही थी। खाना समाप्त होने पर उन्होने एक हाथ से थाली उठा ली और दूसरे हाथ की अंगुली से उसे चाटने लगे। उस समय उन्हें बात करने की फुरसत मिल गई—इस समय कहाँ गया था धूप मे?

—थानेदार के घर गया था पिताजी, मैंने गर्व के साथ कहा।

शायद उन्हें पता ही नही था, मा ने बताया नही होगा, इसलिए उन्होने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा—थानेदार के घर, क्यों?

—उनकी लडकी को पढाने, मैंने बताया।

—लड़की को पढाने, किसने कहा?

—मैंने सारी बात आद्योपरात बता दी।

पिताजी ने सन्तोष व्यक्त करते हुए कहा—ठीक है, अब तुम्हारा काम चल जायेगा, थानेदार बेचारा बडा भला आदमी है, बड़ा ईमानदार। बेचारे के कोई लडका नही है, बस एक लड़की है। वसे घर से बडा है, ठिकानेदार है, लेकिन है सीधा और भला।

—सुना है, लड़की की सगाई कर दी, मा ने कहा।

—हा कर दी, आगे वाला घराना बड़ा ऊंचा है। लड़के का बाप मिलिट्री मे मेजर है।

—बडे घरो की क्या बात है, माँ ने अपनी गरीबी का एहसास किया।

—लेकिन देखो, भगवान को कुदरत, घर मे लडका नही है।

—गरीबो का यह हाल है कि लाइन टूटती ही नही, एक घर मे लड़को की भीड लगी है, एक घर मे दस-दस हैं।

दाड़ है वहा चने नही, चने हैं वहाँ दाढ नही, एक पुरानी कहावत

पिताजी ने कही।

मैंने अपना धोया हुआ पाजामा खूटी पर टांग दिया और कच्चे में घूमने लगा। कपड़ो की इस नई व्यवस्था को मैंने अभी-अभी अपनाया था। साफ-सुथरे घरो में अधकचरे कपड़ों में जाना अब भद्दा लगने लगा था। फिर सभी जगहों में अब बड़प्पन को ओढ़कर जाना पड़ता था।

केवल लड़की रूप में सरस्वती सरस्वती थी। घर में उसे मदन कहते थे। वह सरस्वती नाम से चिढ़ती थी, मदन के नाम से खुश होती थी। 'मदन' से ही मैंने पूछा, 'ऐसा क्यों है ?'

मदन की झेंप मिटने लगी थी और अब वह खुलने लगी थी।

—मैं मेरे पिता का लाडला बेटा हू, वह बोली।

—तुम तो बेटी हो, मैंने कहा।

—बेटी नही बेटा हू, देखते नही, यह कमीज है और पाजामा। लड़के ऐसे ही तो पहनते हैं।

उसने फिर अपनी बड़ी आँखों से मुझे देखा। ये आँखे बिमला की आँखो से भिन्न थी।

मैंने उसके गालो पर चपत लगा दी, 'पगली' कही की।

आपने फिर मुझे 'पगली' कह दिया।

मैं सचमुच असमजस में पड़ गया।

—अच्छा, मदन ही कहू तुम्हे, है न।

—हा, हा, मदन।

मदन मेरे सामने इस तरह आ गई जैसे कमल की सारी पखुड़िया एक-एक कर अलग हो गई हो। वह अपनी पतली टांगें खाट पर रख लेती, मेरे सामने बैठ जाती, बीच में पुस्तक होती। पढने में उसका दिल लगभग नही लगता था। वह कभी अपने पिता की तलवार लटका कर सामने आती, कभी सिर पर साफा यानी पगडी बांध लेती। एक दिन वह बूट, पेंट, कोट और ऊपर पगडी बाध कर आई।

मैंने कहा तलवार।

फिर वह भीतर गई और तलवार लटका कर लाई।

—कैसे लगती हूं ?

—बिल्कुल राजपूत लड़का लगती हो।

—मैंने कहा था पिताजी से, मैं तुम्हारा लड़का हूं पिताजी ! मुझे पढ़ाओ, मैं नौकरी करूंगी, तुम्हारे लिए पैसे लाऊँगी, लेकिन पिताजी नहीं मानते।

—पढ़ना नहीं क्या ?

—अच्छा पढ़ती हूं, कहकर वह उसी भेष में पुस्तक निकाल कर बैठ गई।

एक दिन उसने यों कहा,—'मेरे भाई नहीं है, तुम मेरे भाई बन जाओ। सच, बन जाओगे।'

मुझे अपने भीतर किसी अभाव का एहसास हुआ। शायद वह स्वयं ही अपने भाई बनने की असफल चेष्टा कर रही थी।

उस दिन से मैं मदन का भाई बन गया। वह मुझे अपने पतले होंठों से 'भैया' कहने लगी थी।

थानेदार साहब कभी-कभी मिलते थे, तब इतना ही पूछते हैं—मदन, ठीक पढ़ रही है या नहीं।

—पढ़ रही है जी !

इतना पूछने पर वे घर में आकर व्यस्त हो जाते। उनकी बांकी मूछों वाला चेहरा रोबदार लगता था, फिर भी वे हाव-भाव से सौम्य और सरल ही थे।

परीक्षा-परिणाम मेरे पक्ष में रहा। फर्स्ट डिवीजन तो मिला ही, संस्कृत और गणित में विशिष्ट उपलब्धि मिली।

उसके बाद तो कॉलेज में प्रवेश लेने की इच्छा थी। पांच दिन पूर्व पूरा एक सौ रुपया का नोट बन गया। थानेदार साहब ने बीस रुपये और दे दिए।

शहर का चाव मुझे चार दिन पहले ही शहर ले आया ! फर्स्ट डिवीजन के ठप्पे से मुझे कॉलेज और बोर्डिंग कहीं भी प्रवेश पाने में अड़चन नहीं आई। सूर्य की पहली किरण के साथ ही अकेला शहर में निकल जाता, पसरी हुई काली सड़कों पर से गुजरता हुआ बाग में पहुंच जाता। हर

आदमी और औरत को ध्यान से देखता । ऐसा लगता कि हर आदमी और औरत या तो अभी-अभी दर्जी से सिलकर आया है या धोबी से धुलकर। कभी-कभी ऐसा लगता जैसे दो सीधी लड़कियां सड़क पर कपड़े पहने चल रही है । किसी भी कपड़े पर कही भी मैल का एक कतरा भी नहीं। फिर महसूस करने लगा कि कपड़ों के मैल के लिए कहीं जगह भी नहीं थी। खाली धूल का तो करीब-करीब अस्तित्व भी मिटा दिया था। पहले तो मुझे ऐसा लगा कि शहर के बाबू की कहीं बूट पालिस खराब न हो जाय, इसीलिए सारी धूल पर काली सड़क बिछा दी गई। शायद सड़क पर की धूल से बचने के लिए ही भी कुछ लोगों ने उपाय कर रखे थे, साईकिलों पर पूरे आधा फुट उनके पैर ऊंचे रहते थे। इससे भी ऊंचे रईस तो चारों ओर से ढकी कारों में निकलते थे, कहीं धूल का एक कतरा भी उन्हें छू न जाये। मैं बैठे-बैठे यह सारा नजारा कॉलेज के सामने काफ़ी देर तक देखता रहता था। ऐसा लगता था कि सारा शहर ही सुबह से सड़क पर उतर जाता, चलता रहता, भागता रहता, बहुत देर रात तक उसकी एक ही गति रहती।

शाम को मैं बाग में अवश्य जाता, फूलों की कतारें, फव्वारों की कला-बाजियां, फिर हरी दूब, बड़ा मनमोहक था वह दृश्य। मैं घंटों उसे देखता रहता। प्रायः सड़क पर मेरी नजर होती। सड़क पर आमतौर पर जोड़े चलते थे, आदमी-औरत के जोड़े। मैं उन्हें दोनों आंखों से भरपूर नजर से देखता, ऊपर से लेकर नीचे तक—खास तौर पर औरत को। औरत में सभी कुछ देखने का होता था—उसके बालों का तरीका, उसके भड़कीले कपड़े, उसका उठा उभार, उसका कसा हुआ जिस्म, उसके पुते हुए कपोल, कपोलों पर हलका-सा गुलाबीपन, ओठों पर पसरी हुई लालिमा। शुरू-शुरू में तो सचमुच ऐसा लगा था कि शहरी औरत का चेहरा जन्म से ही इसी प्रकार लाल, गुलाबी और गोरा होता है, किन्तु धीरे-धीरे ऐसा पता लग गया था कि इस पर भी सजावट की जाती है।

कॉलेज होस्टल में मुझे सोने को पलंग मिला था, सामान रखने के लिए अलमारी और काम करने के लिए मेज और कुर्सी। सामान रखने के लिए मेरे पास था भी क्या, दो सफेद पाजामे और दो कमीज। जहां गांव

मे अपनी पोशाक मे मैं अपने आप को असाधारण पाता था, वहा शहर मे मैं स्वय को अटपटा समझने लगा। मुझे अपनी पोशाक से ही वितृष्णा होने लगी। मुझ ऐसा लगा कि मैं अपना देहातिया अब भी ओढे हुए हू। मैं चाहने लगा था कि मैं अपने शरीर पर से गाव उतार लू और शहर को पहन लूं। मैंने फिर अपनी पैसो की गाठ खोली, 'अरे इन दिनों मे ही तीस उड गए।' और अभी तक होस्टल का अग्रिम जमा भी नही करवाया। दरअसल, इन दिनों कुछ गलतियां की थी। शहर का स्वाद चखने के लिए एक होटल में घुसने लगा था। इस स्वाद पर जीभ इतनी चलने लगी कि अपने आप को रोक नही सका। एकदम चिन्ता जागी कि आगे की व्यवस्था की जाए, अब तक का समय तो व्यर्थ में ही बर्बाद हुआ।

मैं हैडमास्टर साहब का पत्र लेकर उनके परिचित डाक्टर साहब के पास पहुंचा। उन्होने पत्र पढते ही मुझसे कहा—'तुम मुझसे शाम को मिलना, ठीक पाच बजे, उस समय मैं तुम्हे घर पर मिलूगा।'

मैं ठीक पाच बजे उनसे मिला। वे उठकर मेरे साथ चल पड़े। पास मे ही वे एक कोठीनुमा मकान मे मुझे ले गए। दूर से आवाज लगाई, एक नौजवान व्यक्ति उन्हे अपने बैठक मे ले गया। वहा कुछ कुर्सिया और मेज थी। मुझे भी बैठने को कहा, मैं भी उनके पास ही एक कुर्सी पर बैठ गया।

डाक्टर ने मेरा परिचय 'फस्ट डिवीजन' से दिया, हमारे हैडमास्टर के पत्र का प्रसग दिया और फिर मुझसे पूछा—'हिन्दी पढा लोगे न ?'

—झिझक क्यो रहे हो, डाक्टर ने फिर कहा, शुरू से ही हिन्दी पढानी है, कोई बी. ए., एम. ए. को नही।

—हा जी, मैंने स्वीकार कर लिया।

—बस तो, आपका काम बन गया, मैनेजर साहब, डाक्टर ने नौजवान से कहा।

दूसरे दिन से मुझे कार्य प्रारम्भ करना था।

नवयुवक मैनेजर का मकान क्या, कोठी थी। सामने के मैदान मे घास का प्लाट था और उसके बीच मे फूलो की क्यारिया थी। मैं उसी कमरे मे जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया। तभी एक देहाती औरत मुझ से आकर बोली—मास्टर जी, आपको दूसरे कमरे मे पढाना है।

मैं वहां से उठकर उसके बताए कमरे में गया। घर में प्रवेश किया तो एक लड़की ने उठकर 'नमस्ते' किया। अब मुझे मालूम हुआ कि हिन्दी पढ़ने वाली एक लड़की है। मैंने बैठते ही उससे पूछा—आप हिन्दी पढ़ेंगी? क्या आपको हिन्दी बिल्कुल नहीं आती?

—मैं अभी सिन्ध से आई हू, टूटी-फूटी बोल तो सकती हू।

—आप तो ठीक बोल रही हैं।

—मैंने 'आप' का प्रयोग इसलिए किया कि लड़की नवयुवती थी।

—वैसे आप कौन-सी कक्षा में पढ़ती हैं, मैंने फिर पूछा।

दसवीं में पढ़ती थी, किन्तु यहा नवीं में दाखिला मिला है, वह भी इस शर्त पर कि हिन्दी सीख लो।

—अच्छा, कुछ तो सीखा होगा।

—वैसे ही कुछ अक्षर सीखे हैं।

—अच्छा, तो आप लिखकर दिखायें।

उसने हिन्दी की वर्णमाला लिखकर दिखा दी।

—बारहखड़ी भी आती है क्या?

—कुछ-कुछ आती है।

—लिखकर दिखावेंगे।

उसे बारहखड़ी भी आती थी। फिर मैंने उसे एक दो प्राथमिक कक्षा की पुस्तक प्रारम्भ कर दी।

इस लड़की का नाम था श्यामी श्री, 'सिन्धी लड़की थी, मैनेजर की बहन।

कुछ और परिचय हुआ, तब मालूम हुआ कि श्यामी के बड़े भाई साहब यहा काच के कारखाने में मैनेजर हैं, कारखाने में हिस्सा भी है। ये सभी लोग सिन्ध से आये हैं। इनके तीन परिवार इसी शहर में आए हैं। तीनों ही परिवार सिन्ध से आये हैं और सभी को हिन्दी नहीं आती। हिन्दी सीखने की सभी को जरूरत है। दो दिन के अन्तराल में मुझे दूसरे परिवार में भेज दिया गया। वहा सावित्री को हिन्दी पढ़ानी है, वह अभी सातवीं में पढ़ती है। तीसरे परिवार के भी बच्चे आने वाले थे। श्यामी की मां थी ही नहीं। पिताजी अभी आनेवाले नहीं थे। मैनेजर साहब अभी

अकेले ही थे। इस कोठी मे कुल दो ही मेम्बर थे, मैनेजर हरीश, बहन श्यामी।

मैंने पिताजी को पत्र लिख दिया कि मेरा काम जम गया, पढ़ाई ठीक चल रही है, मुझे दो ट्यूशनें मिल गई हैं, खर्चा चलाने में कठिनाई नहीं होगी।

एक दिन मैं राजपूत होस्टल मे चला गया। मेरा एक मित्र बन गया था, शिशुपाल। शिशुपाल भी देहाती था और वह इसी वर्ष कालेज में आया था। वही मुझे अपने होस्टल में ले गया। उसके कमरे में बैठे-बैठे खर्चे की भी बातचीत आ गई। उसी ने बताया—यहा केवल आठ रुपये महीने के लेते हैं, रोटी चुपड़ी हुई देते हैं, सुबह सब्जी होती है और शाम को दाल। हर रविवार को स्पेशल देते हैं, तुम देख लो।

मैंने कहा—यार, यह ठीक है।

—तो तुम भी आ जाओ, मेरे कमरे मे जगह है, आज ही आ जाओ।

मैंने दूसरे दिन कॉलिज होस्टल का हिसाब कर दिया और राजपूत होस्टल मे आ गया।

एक महिने के बाद ही सावित्री और श्यामी दोनो घरो से मुझे पैसे मिले। होस्टल का तो विशेष खर्चा ही नही रहा था। मैं और शिशुपाल दोनों बाजार गए। उसने मेरे लिए एक पेंट और कमीज का कपड़ा फड़वाया और दर्जी को दे दिया। जल्दी ही मैं भी शहरी बनने की ख्वाहिश पूरी करने की सोचने लगा। मैंने वह पेंट पहले अपने कमरे में ही पहन कर घूमा, फिर बरामदे में आया। दूसरे दिन होस्टल मे घूम आया। तीसरे दिन सड़क पर आ गया था। झिझकते-झिझकते कॉलिज मे गया था। श्यामी के घर गया, तब बड़ी शर्म आई थी। फिर तो इतना आदी हो गया कि दूसरे महीने में दूसरी पेंट की जरूरत महसूस हुई और सावित्री और श्यामी के घर के पैसे से फिर सिल गई। फिर तो मेरा विश्वास हो गया था कि मैं अब कतई ग्रामीण नही रहा। ऐसा लगने लगा कि शहर की इस भारी भीड़ मे मैं अलग से नजर नही आ रहा था। उस काली सड़क पर मेरे पालिस किए हुए काले बूट उनकी क़दमों के अनुसार ही 'खट् खट्' बजते चलते, अपनी पेंट की 'क्रीज' में भी कही सलवट न आ जायें, ध्यान

रखता था। मुडी हुई मूँछो के साथ होटल मे अपने साथियो के साथ अन्तर्राष्ट्रीय गप्पो मे गहरा मशगूल रहने लगा।

शाम को कुन्दन का पत्र पढने को मिला। लिखा था—घर पर सब राजी खुशी है। सावणी ठीक खडी है, मोठ बाजरी की फसल अच्छी है। मेरी पढ़ाई ठीक चल रही है। गणित वाला मास्टर बहुत मारता है। मैंने कुश्ती शुरू कर दी है। मुहल्ले के सभी बराबर वालों को उठा उठाकर पटकता हूं। माताजी कहते हैं—ठीक पढना। फागुन मे मगनी का विवाह करेंगे, तब तुम जरूर आना। तुम्हारी छुट्टिया कब हो रही हैं ?

पत्र को पढते ही गाव याद आ गया। गाव के चारों ओर के पीपल के पेड, तालाब, घर, मा, मगनी, फिर वह हवेली का चांद। विमला तो आई भी नही होगी, थानेदार साहब का लड़कीनुमा लड़का—मदन। सभी वही होंगे शायद। सुलतान तो बीच ही में अपने चाचाजी के यहां चला गया था। क्यो नही उसको भी पत्र भेजूं और अपनी पॅट की बात लिखूं।

कुन्दन को पत्र लिख दिया—माताजी, पिताजी को प्रणाम। पढाई ठीक चल रही है। तुम भी ठीक पढो, आज के युग मे पढ़ाई का ही मूल्य है। हमें ऊंचा उठना है, तरक्की करनी है, समाज मे तभी हम कुछ बन सकेंगे। तुम गणित मे कमजोर हो, तभी मार पड़ती है। तुम उस मास्टर की ट्यूशन कर लो। ठीक हो जाओगे। कुश्ती-वुश्ती का शौक अच्छा नहीं है, कही हाथ पैर तुड़वा लोगे। मैं छुट्टियो मे आऊगा। फिर सोचा—पॅट की बात भी लिख दूं, श्यामी, सावित्री की बात लिख दूं। जानबूझ कर नही लिखी, पॅट की भी कोई बात है, श्यामी, सावित्री की क्या लिखू, क्या वे जानते हैं ?

पत्र बन्द कर डाक में डाल दिया।

श्यामी एक गंभीर लडकी है, कम बोलती है। सामने बैठी-बैठी लिखती रहती है, पढ़ती रहती है। सफेद पाजामे का सिलवार के ऊपर रंगीन फिराक पहनती है। ऊपर बिल्कुल बारीक 'चुन्नी' डाले रखती है। हल्का-सा उठता उभार स्पष्ट झाकता है। विशेष प्रसग पर कभी-कभी मुस्कराती है। हिन्दी का कोई क्लिष्ट शब्द आता है तब मुझे उसको अंग्रेजी के माध्यम से बताना पड़ता है, इतनी अंग्रेजी भी वह जानती है। तीन महिने

के बाद ही वह अपनी पाठ्य पुस्तक की हिन्दी समझने में समर्थ हो गई, उसका बौद्धिक स्तर असाधारण ही था।

सावित्री कुछ चुलबुली-सी थी। रंग थोड़ा-सा सांवला था, किन्तु श्यामी से वह अधिक स्वस्थ थी। शाम के लगभग चार बजे मैं श्यामी के यहां जा पहुंचा और पांच बजे के आस पास सावित्री के यहां कभी-कभी ऐसा भी हो जाता कि श्यामी के यहां अधिक समय लग जाता यानी सवा घंटा, डेढ़ घंटा भी। श्यामी को साहित्य में रुचि होने लगी थी। उसने सिन्धी-साहित्य का अध्ययन भी कर रखा था। वह हिन्दी उपन्यासों की जानकारी चाहती थी। उसे विश्वास था कि हिन्दी उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी में अधिक अभ्यास कर सकेगी। मैंने उसे प्रेमचंद से शुरू किया था। साहित्य की चर्चा में कुछ समय अधिक खप जाता। मैंने सावित्री को पांच बजे का समय दे रखा था। मैं पहुंचता सवा पांच या साढ़े पांच। तब उसका मुंह कुछ चढ़ा हुआ-सा मिलता। उस दिन भी ऐसा ही था।

मैंने पूछा—आज क्या बात है, माताजी ने कुछ कह दिया क्या?

—नहीं तो, वह कुछ और चढ़कर बोली।

—फिर पिताजी लड़े होंगे।

—मुझसे कभी पिताजी लड़ते ही नहीं, सभी आप जैसे थोड़े ही हैं।

सावित्री कुछ अधिक मुंह लग गई थी।

—तो क्या बात है, आज तो बड़ी नाराज लगती हो।

—आप जानते नहीं क्या? वह और कुप्पा-सी हो गई।

—मैं नहीं जानता, मैंने साधारण-सा उत्तर दे दिया।

—आप टाइम देते हैं पांच का और आते हो साढ़े पांच, उसने खुला उपालम्भ दिया।

अरे बाबा, मैं वहां लेट आया था, करीब साढ़े चार बजे, मैंने बहाना बनाया।

—अच्छा, आप झूठ भी अच्छा बोल सकते हैं।

—अरे, कैसे? मैंने हँसकर कहा।

—मैं देख रही थी, आप पूरे चार बजे गली से निकले थे।

दरअसल, श्यामी और सावित्री के मकान पास-पास से ही थे। मैं

श्यामी के मकान जाता तब सावित्री मुझे आराम से देख सकती थी।

अच्छा बाबा, तुझे भी ज्यादा टाइम दे दूंगा, मैंने क्षमा-याचना-सी की पूरे सात बजे तक।

—हमें कौन टाइम देता है ? उसने व्यंग-सा कसा।

—अरे, भई आज से ही लो, और मैंने उसके गालों पर हल्का-सा चपत लगा दिया।

—देखती हू, और उसने अपनी पढ़ाई चालू की।

सावित्री सम्भवतः आयु में श्यामी से छोटी नही थी या स्वस्थ होने से अच्छी खासी भरी पूरी दिखती थी। उसका सांगोपांग उभार बरबस खींचने वाला था। उसे चटक-मटक घूमने में आनन्द मिलता था। वह चोटी से अधिक खेलती थी, कभी उसे हाथ में ले लेती, कभी मेज पर डाल देती, कभी अपने वक्ष पर। कभी झटके से उसे पीठ पर फेंक देती। वह चलती-फिरती अभिनेत्री-सी लगती थी। कपड़ों का उसे शौक अधिक था। वह शायद रोज कपड़े बदलती थी—भड़कीले कपड़े।

रात को लेटते समय दोनों के बारे में सोचने लगा। श्यामी मुझे उस प्रवाहिनी के समान लगी जो शान्त, गम्भीर और अथाह है जिसमें उसकी गति का भी आभास नही होता और सावित्री—वह कलकल निनादिनी है जिसमें लहरों की हलचल है, गति में वेग है, एक प्रवाह है जो बहती है और बहाकर भी ले जा सकती है। श्यामी के तट पर तो जाने तक का भी साहस नहीं होता, क्योंकि उसके पास ऐसी फिसलन है जो डुबा सकती है, तैरने का अवसर नही देती। सावित्री के तट पर तो मखमली घास है जिस पर बैठकर भी लहरों का आनन्द लिया जा सकता है। मैं कुछ ऐसा ही सोच रहा था कि शिशुपाल आ गया। उसने आते ही मुझे आवाज दी—अभी से सो गए क्या ?

—नहीं तो, बस लेटा हुआ हू।

दरअसल, अभी गर्मी बिल्कुल गई नही थी, इसलिए भीतर तो सोया नहीं जा सकता था। मैंने अपनी खाट निकाल ली थी। शिशुपाल भी भीतर से अपनी खाट ले आया।

—कहा गए थे, मैंने पूछा।

—पिक्चर गया था, तुम तो यार, ऐसे हो गए कि पूछो ही मत।

—शिशुपाल ने मेटते हुए कहा।

—क्या करूं, भई, कुछ न कुछ न करूं तो पढ़ाई कैसे चले ?

—रहने दो यार, शिशुपाल बोला, दो घंटे के बजाए चार-चार घंटे लगाते हो, मेरे से छिपा है क्या ? खूब रंगरेलिया कर रहे हो, मित्र। यार, हमने क्या बिगाड़ा है, हमें भी एक छोकरी दिलवा दो।

तुम्हें वहम है, यार। क्या है वहां ? सच कहता हूं, एक बात मानो। औरत दूर से बहुत सुन्दर लगती है। आदमी सोचता है, मिल जाये तो कितना अच्छा रहे। नजदीक आने पर उसकी महक और सौन्दर्य फीका-फीका-सा लगता है। यदि उसे चख लो, तो सच कहता हूं, वितृष्णा हो जाती है। औरत अजीब किस्म का फूल है।

—वाह यार, तुम तो घिसे हुए पत्थर निकले, यह सब कुछ तुमने कैसे जान लिया। इसका मतलब तुमने फूल चखे तो है, दोस्त। हमें तुम इन्हें दिखा तो दो।

—छोड़ो यार, इन बातो को मैंने कहा, तुम रहते कहा हो आजकल।

—पिक्चर गया था, और कहा गया था।

—बहुत पिक्चर देखते हो।

—शहर का लुत्फ लेते हैं, और क्या।

—यानी पढने नही, लुत्फ लेने आए हो।

—शहर लुत्फ ही तो है, सम्पत्, उसने धीरे से कहा, अपने पास की गली है न उसमें बड़ी मजेदार लडकी है, तुमने देखी है ?

—मुझे कहां फुरसत है ? दोस्त तुम जानते नही, मेरे बाप के पास कुछ नही है। या तो पढता हू, या पढ़ाता हू। तुम हो पैसे वाले, मौज करो, मौज करने आए हो।

—तुम तो बात का ही मठ मार गए, मैं एक बात पूछूं तुमसे, ये शहर वाले अपनी लडकियों को इतनी बड़ी क्यों कर लेते है? सचमुच, इनकी छातियो पर इतनी चर्बी छाई रहती है कि हर आदमी का मन मचल जाता है। अपने साथ वह लडकी है न सुलोचना कितनी उमर होगी उसकी ?

—होगी बीस साल की तो।

—पच्चीस से कम नही, देखा नही उसका चेहरा, रसाली पर बुढ़ापा आ गया है। इनकी जवानी तो बीत जाती है घरो में ही। ससुराल में कौन-सी रौनक आती है इन पर।

—छोड़ यार, इन बातो को अब सो जायें। सुबह उठकर कुछ कॉलेज का काम भी करना है।

हम दोनो को वैसे तो बड़ी सुविधा थी। छत का अकेला कमरा हम दोनों को दे रखा था। नीचे स्कूलो के छात्र थे जो आयु में भी हमसे छोटे थे। हम दोनो कॉलेज के छात्र ऊपर के इस कमरे में थे, इसलिए बोलने, पढने, सोने के लिए यह सर्वोत्तम स्थान था, यहा किसी प्रकार की बाधा नही थी। अभी तक स्कूल वाले भी नही सोये थे। इसलिए शिशुपाल ने कहा—अभी तो नीचे वाले भी नही सोये, तुझे सोने की लग रही है।

फिर शिशुपाल इस विषय को बदलकर घरेलू बातों पर चर्चा करने लगा। शुभ्र आकाश ऊपर से झाक रहा था, दूर किसी ईंजन की सीटी बज रही थी। अभी तागो की खट्-खट् सड़को पर हो रही थी। शहर सोया नही था, हमे नीद आने लगी थी।

शिशुपाल जागता है, उससे पूर्व मैं दैनिक कार्यक्रम से निवृत्त हो जाता हू और पुस्तक लेकर बैठ जाया करता हू। शिशुपाल देर से उठता है, कई बार अगड़ाई लेता है, फिर एक सिगरेट सुलगाता है, फिर लैट्रिन जाता है, फिर स्नान आदि से निवृत्त होता है। तब तक मैं एक दो विषयो के बीच में से निकल जाता हू। किन्तु आज मुझे श्यामी की एक बात याद आई कि उसे एक उपन्यास लाकर देना था। मैंने पहले अपना कार्ड टटोला। फिर मुझे सावित्री की भी बात याद आ गई, वह भी जिद् करती है कि उसे भी एक उपन्यास लाकर देवे, क्योकि श्यामी को लाकर देते है। मैंने कहा भी था—श्यामी बड़ी है, समझती है, तुम उपन्यास का क्या करोगी। लेकिन वह एक बार जरूर श्यामी के घर हो आती है और सब कुछ उसके बारे मे जान लेती है। मुझे उससे भी आश्वासन देना पड़ा—तुझे भी उपन्यास लाकर दूगा। लेकिन कॉलेज लाइब्रेरी से तो एक ही पुस्तक मिल सकती थी, इसलिए सोचा कि स्टेट लाइब्रेरी का सदस्य और बना जाये और मैं स्टेट लाइब्रेरी की ओर चल पड़ा।

मैंने कार्ड बनाया, एक उपन्यास की पुस्तक ली, ऐसी पुस्तक जिसे सावित्री पढ सके और समझ सके और घर की ओर चल पडा। पब्लिक पार्क के भीतर से सडक पर मे चलता हुआ होस्टल की ओर आ रहा था, तभी एक आदमी मेरे पास आकर खडा हो गया—आपको कवर साहब बुला रहे है ?

मुझे ? मैंने कहा, शायद तुम गलती पर हो, कवर साहब नही जानते, मैं तो गाव का हू, अभी चार महीने से आया हू ।

—आपका नाम सम्पत् है न ?

—हा, हा !

—फिर आप ही को बुला रहे हैं ।

मैं उस आदमी के साथ चल पडा ।

एक सजे हुए कमरे मे कवर साहब बैठे थे, एक लम्बे-चौडे पलंग पर, बड़ी-बडी मूछें, लाल आखें, लम्बा-चोडा शरीर ।

—जै माता जी की, साहब, [मैंने रीति अनुसार उनका अभिवादन किया ।

—जै माता जी की, आओ बैठो ।

मैं उनके सामने की कुर्सी पर वैठ गया ।

—सम्पत् जी, आप तो ग्यारहवी मे हो न । मैं आपको जानता हूं, एक दिन राजपूत होस्टल में गया था, तब किसी ने मुझे बताया था । मैंने आपको जाते हुए देखा, फिर आपके आने का ध्यान रखा, और नौकर को भेजा ।

जी,

बात यह है, सम्पत जी, मेरा लड़का है, नवी मे पढता है । मैंने होस्टल सुपरिंटेंडेंट से आपके बारे मे पूछा था । उसने आपकी तारीफ की । आपका स्वभाव, आदत सभी अच्छे हैं । फर्स्ट डिवीजन आया है, सुबह जल्दी उठना, स्नान करना, फिर पुस्तकें लेकर बैठना, सभी अच्छे है । मैं चाहता हूं कि आप मेरे यहा रहने लगो । आपको कुछ भी नही करना है, मेरे यहाँ रहना है । आपकी सगति मे मेरा लडका ठीक हो जाये, बस ।

—अच्छा, जी, सोच लूगा ।

—सोचना क्या है, खाना जैसा हम खाते है, आपको भी मिलेगा

मे जाकर फसोगे।

—मुझे तो लाभ है, शिशुपाल।

—तुम्हे तो लाभ है लेकिन तुम मेरा साथ तो छ...........

—मिलता रहूगा, मित्र। तुम क्यो मन खराब कर रहे हो?

—खैर, तुम तो करो, हमारा तो भगवान् है।

शिशुपाल निराश हो गया था।

मैं शाम को ठाकुर साहब के घर जाकर अपना निर्णय दे आया कि मैं अगले रविवार को अपना सामान ले आऊगा, अभी दो दिन शेष थे।

शाम को देर से श्यामी के घर पहुचा, शायद काफी देर से वह प्रतीक्षा मे थी।

उसने जाते ही कहा—मैं समझा, आज आप नही आयेंगे।

—देर तो इसलिए हो गई कि मैंने अपना नया निर्णय लिया है, मैं एक घर मे जा रहा हू।

—क्या आपको वहा सुविधा है? उसने पूछा।

—सुविधा तो है, खाना-वाना सब फ्री। मकान भी फ्री, केवल एक लडका है, उसे देखना है। वडा घर है, क्या कमी है वहा?

श्यामी मेरी बात से सतुष्ट थी। मैंने उपन्यास की पुस्तक मेज पर पहले ही रख छोडी थी। श्यामी उसे देखने लगी।

—मैं तो पहला उपन्यास भी खत्म नही कर सकी, आप और ले आए। श्यामी ने कहा।

—यह तुम्हारे लिए नही। सावित्री के लिए है, वह भी तो पूरी जिद्द करती है।

—वह मेरे से ईर्या करती है।

—यह तुम भी समझती हो?

—मैं तो सब समझती हू, श्यामी ने कुछ गहरी बात कह डाली, उसके बाद वह नही बोली।

—तुम्हारे घर आती रहती है, पुस्तक देख जाती है, फिर कहती है—मुझे भी लाकर दो, आज लाया हू उसके लिए।

—चलो, ठीक है, उसकी भी जिद्द पूरी हो गई। मुझे तो मेरी पस्तक

अलग कमरा आओ मैं दिखा दू ।

कवर साहब खड़े हो गए। अपने बड़े कमरे के पास ही एक छोटे से कमरे में मुझे ले गए। उसमें पहले से ही एक पलग पड़ा था, दो अलमारियां थी, एक मेज, एक कुर्सी।

—देखिये, यह कमरा है आपके लिये। इसे साफ करवा दूगा। नौकर रोज इसे साफ कर देगा। सामने का कमरा मेरे लड़के का कमरा है। अभी वह बाहर गया है। वह तो कोई खास बात नहीं। बच्चा-सा ही है। बस, मैं तो यही चाहता हू कि उसकी अच्छी आदतें बनें, वह पढ़े। आपको पढ़ाना नही है, पढ़ाने के लिए हम ट्यूटर रखते हैं।

—अच्छा जी, मैंने आश्चर्य व्यक्त किया।

हम फिर कवर साहब के अपने कमरे में आ गए। थोड़ी ही देर में नौकर एक गिलास दूध लेकर आ गया।

—पीजिए, कवर साहब ने कहा।

—आप, मैंने कहा।

—नहीं, नहीं, आपके लिए मगवाया है, अपने यहां दूध की कोई कमी नही, अपनी गायें-भैंसें हैं। आप किसी बात की चिन्ता न करना, मैं आगे क्या कहू ?

मैंने दूध पीकर कहा—शाम को मिलूगा।

—बस, आ ही जाइये, शाम को इन्तजार करूं।

मैं अपने होस्टल के रास्ते पर फिर चल पड़ा। रास्ते में मुझे एहसास हुआ कि मैं आज तक जिस छोटेपन को पाले हुए था, वह बेमानी है। जो, कुछ मैंने किया, कर रहा हू उसका मूल्यांकन हुआ तो है। अब मुझे खाने खर्चे से भी छुट्टी मिलेगी और श्यामी, सावित्री के पैसे से शहरी जीवन में 'फिट' हो सकूगा, लेकिन ये लोग जो बड़े हैं, बदलते समाज में अपने बड़प्पन को कायम रखना चाहते हैं, शायद शिक्षा इनके सामने एक बाधा है। हो सकता है, यही बड़प्पन का बोझ इनका कचूमर निकाल दे। मुझे क्या, मैं तो अपनी परिस्थिति के अनुकूल ही काम करूगा।

मैंने जाते ही यह बात शिशुपाल को सुनाई। वह अपने स्वभाव के प्रतिकूल गम्भीर हो गया। उसने अपनी राय व्यक्त की— यार, कहां बड़ो

में जाकर फसोगे।

—मुझे तो लाभ है, शिशुपाल।

—तुम्हे तो लाभ है लेकिन तुम मेरा स

—मिलता रहूंगा, मित्र। तुम क्यो मन खराब कर रहे हो ?

—खैर, तुम तो करो, हमारा तो भगवान् है।

शिशुपाल निराश हो गया था।

मैं शाम को ठाकुर साहब के घर जाकर अपना निर्णय दे आया कि मैं अगले रविवार को अपना सामान ले आऊगा, अभी दो दिन शेष थे।

शाम को देर से श्यामी के घर पहुचा, शायद काफी देर से वह प्रतीक्षा मे थी।

उसने जाते ही कहा—मैं समझा, आज आप नही आयेंगे।

—देर तो इसलिए हो गई कि मैंने अपना नया निर्णय लिया है, मैं एक घर मे जा रहा हू।

—क्या आपको वहा सुविधा है ? उसने पूछा।

—सुविधा तो है, खाना-वाना सब फ्री। मकान भी फ्री, केवल एक लडका है, उसे देखना है। बडा घर है, क्या कमी है वहां ?

श्यामी मेरी बात से सतुष्ट थी। मैंने उपन्यास की पुस्तक मेज पर पहले ही रख छोडी थी। श्यामी उसे देखने लगी।

—मैं तो पहला उपन्यास भी खत्म नही कर सकी, आप और ले आए। श्यामी ने कहा।

—यह तुम्हारे लिए नही। सावित्री के लिए है, वह भी तो पूरी जिद्द करती है।

—वह मेरे से ईर्षा करती है।

—यह तुम भी समझती हो ?

—मैं तो सब समझती हूं, श्यामी ने कुछ गहरी बात कह डाली, उसके बाद वह नही बोली।

—तुम्हारे घर आती रहती है, पुस्तक देख जाती है, फिर कहती है—मुझे भी लाकर दो, आज लाया हूं उसके लिए।

—चलो, ठीक है, उसकी भी जिद्द पूरी हो गई। मुझे तो मेरी पस्तक

समाप्त करने में कुछ समय लगेगा।

श्यामी की पहुंच सचमुच चरित्र, परिवेश, कथ्य, शिल्प तक हो चुकी थी, इसलिए किसी भी उपन्यास के सभी पहलुओं पर वह आसानी से चर्चा कर सकती थी। मैं भी अब तक वही पुस्तक उसे लाकर देता जो मेरे भी पढ़े हुए थे, अतः उन पर चर्चा भी आसानी से हो सकती थी।

मैंने श्यामी को हिन्दी के दो पाठ पढ़ाये और कवियों और लेखकों की विशद चर्चा की, इस प्रसंग में उसने सिन्धी के भी एक दो नाम गिनाए, जिन्हें मैं अक्सर उसी समय भूल आया करता था।

सावित्री के घर जाने में अप्रत्याशित विलम्ब हो गया। शहर को अंधेरे ने ढकना शुरू किया ही था कि सड़कों पर बल्बों ने रोशनी फेंक दी।

मैंने सावित्री का दरवाजा खटखटाया। उसकी मां ने दरवाजा खोला। मैं कमरे के भीतर प्रवेश कर गया था, तब उसकी मां बोली—वह क्या पढ़ेगी, आज तो आप देर से आए।

—कुछ देर हो ही गयी, फिर भी सोचा कि चलो, कुछ पढ़ा आऊं।

—आवाज सुनकर वह फौरन नीचे आ गई, शायद वह ऊपर सो रही थी।

—पढ़ोगी, उसकी मां ने पूछा।

—वाह, पढ़ूंगी क्यों नहीं, श्यामी भी तो पढ़ी है।

सावित्री मुंह फुलाकर बैठ गई। कमरे में ट्यूब की रोशनी फैली हुई थी। इस रोशनी से सावित्री का यौवन खिल उठा था। हो सकता है, उसने कुछ पाउडर भी लपेट लिया है। कुछ गर्मी थी, इसलिए उसने पंखा खोल दिया। वह अपनी पुस्तक लेकर बैठ गई थी।

मैंने उपन्यास की पुस्तक सावित्री के सामने रख [illegible] क देखकर बोली—तो आपको मैं याद [illegible] गई। वह पूरी [illegible] है।

बताना।

वह उठी, एक बार फिर उसने नखरे से अपनी चोटी पीछे फ़ेंक कर मारी और उपन्यास की पुस्तक अपनी अलमारी में रखकर आ गई। छत पर से बच्चो का शोर आ रहा था। उसने भीतर का दरवाजा बन्द कर दिया—बडा शोर करते है ये, पढने तक नही देते। श्यामी के यहा यह तो शान्ति है। आपको वहा कोई कहने, सुनने वाला तो नही, यह कहकर वह फिर कुर्सी पर बैठ गई।

अब वह कमरा चारो ओर से बन्द था।

चारो ओर का निर्विघ्न वातावरण देखकर मैंने एक अपराध-भावना से उसके गोल कपोलो पर एक चपत लगा कर कहा—जल्दी नाराज हो जाती हो।

—नाराज तो आप है, मैं नाराज होने वाली कौन हू। उसने उसी भगिमा से उत्तर दिया। अभी तक उसकी आखे पुस्तक पर ही थी। मैं चाहता था कि वह मेरी ओर देखे। उसकी इस प्रकार की गम्भीरता उसके चेहरे पर भद्दी लग रही थी। मैंने मन ही मन सोचा—क्या चाहती है, सावित्री ? हरदम क्यो नाराज सी रहती है, राम जाने।

मैंने उसे पढाना शुरू किया।

सावित्री उसी मुद्रा मे पढती रही। ऊपर का पखा हवा फेंक रहा था। सावित्री के दो चार बाल हवा से हिल रहे थे। रोशनी मे गालो पर अधिक चमक महसूस हो रही थी। वह पढ़ती जा रही थी, मैं कठिनाई दूर करता जा रहा था। पाठ समाप्त हो गया। मैंने घडी की ओर देखा, अभी आधा घन्टा ही हुआ था। सावित्री अपनी टेबल-वॉच सामने रखती थी।

मैंने फिर उसके कपोलो को छूकर कहा—'लाओ' अग्रेजी ले आओ, पढा दू।

वह अग्रेजी की भी पुस्तक ले आई। अब तक मैं उसके कपोलो को छूने का आदी हो गया था। मैं इतना तो जानने लग गया था कि यहा तक उसे कोई एतराज नही था।

मैं अग्रेजी पढ़ाने लगा।

उसने अपनी गोलाइयो को नुकीला बना रखा था। वह सामने न बैठ-

कर मेरी दाहिनी साइड मे बैठती थी। मैंने उसकी पीठ को थपथपा कर कहा – 'ठीक पढ लेती हो।'

तब वह थोडी मुस्कराई।

मैंने फिर उसे उत्साहित किया —तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगी। मैं चाहता हू कि तुम जल्दी होशियार बन जाओ। तुम्हारा दिमाग ठीक काम करता है। बहुत अच्छा।

गर्व से उसने अपनी छाती और आगे निकाल ली। मुझे भीतर ही भीतर कुछ गिलगिली-सी हुई। मैंने फिर उसकी पीठ सहलाई।

तभी उसकी मा ने बाहर से आवाज दी — अरी, बन्द क्यो कर रखा है इसे ? गर्मी नही लगती क्या ?

सावित्री ने दरवाजा खोल दिया।

दरवाजा खुलने से भीतर की घुटन दूर होनी चाहिए थी, किन्तु घुटन और बढ गई। सावित्री और मेरे बीच मे जो खुलेपन का प्रवाह शुरू हुआ था, वह एकदम बन्द हो गया। मैं अभी-अभी मोम की तरह पिघलने लगा था, धीमी- धीमी सुहाती-सी आच जो अब तक थाम मे जल रही थी, वह एकदम बुझ गई और फिर मैं ठिठुरने लगा।

अब मैं खडा होने को था, सावित्री ने एक बार फिर अपने शरीर की जकडन को अगडाई से खोलने का प्रयास किया, मुझे लगा जैसे उसकी फिराक और सिकुड गई थी—एक तरलता मेरे गले मे पैदा हुई, एकदम भीतर से नीचे तक चली गई, मैंने अपनी दोनो आखें उसके जिस्म पर गडा दी, उसकी नुकीली गोलाइयों पर और फिर उसकी आखो पर।

—अब कल, है, उसने कहा, इसी समय।

शायद उसने इस समय को उपयुक्त समझा।

मैं होस्टल गया तो मुझे अपना खाना कमरे मे रखा . रोटी, दाल दोनों ही ठडी हो गई थी। शि पहले से ही ने जाते

—हा, तो फिर कब जा रहे हो।

—रविवार को, मैंने ठडी-रोटी चबाते हुए कहा।

उस समय दोनो लडके और आकर बैठ गए। वे भी किसी गाव के ठाकुर के लडके थे, दसवी मे पढते थे और थे परिपक्व अवस्था के। वे एक दो बार पहले भी आए थे। मुझे शुरू से ही ऐसा लगा था कि ये दोनो कुछ टेढी नजरो से मुझे देखा करते थे।

दो बैठते है तब— बाते ही तो होती हैं और बाते चली। बातों मे सभी सिलसिले एक दूसरे से जुडते, टकराते चलते रहते है, उन्ही में हास्य, करुणा, कटुता, भाने वाली, चुभने वाली, सभी मिश्रण होते हैं।

शिशुपाल ने ही कुछ ठाकुरों के उतार-चढाव के सदर्भ में सिन्धी परिवार को लेकर कोई तुलनात्मक बात कह दी। उन लडकों ने महसूस किया। शिशुपाल विचारों से सदा ही प्रगतिशील था। उन लडकों ने सीधी बात कह डाली—'आप लोग दो अक्षर पढ़कर अकडे फिरते हो, बडे हैं सो बड़े ही रहेंगे।'

मैंने अभी-अभी खाना खत्म ही किया था। उस समय शिशुपाल तैश मे आ गया और वह बोला—'यह तुम्हारी ठकुराई दो दिनों मे बिल्ले लगने वाली है, तुम्हारे बडप्पन को लोग······में डाल देंगे', यह बात कुछ भद्दी थी।

उनमे से बडा लडका गर्म हो गया और वह खड़ा होकर बकने लगा —'साले गोल, यहा आ गए हैं और होस्टल को खराब कर रहे हैं, साले, कमीन ···· और अनाप-शनाप ····।'

मुझे गरमी आ गई। मैंने भी कुछ उन्हे फटकारा। तब उसी बडे लडके ने मुझे सीधा 'गोला' बतलाया और अपनी ठकुराई जताई। मेरे आग-सी लग गई। शिशुपाल ने मुझे पकड लिया, मैं आगे बढ रहा था। लेकिन वह शब्द मुझे ऐसा चुभा कि मेरे सीने में शूल चुभने लगे हैं।

दोनों लड़के कुछ बकते-बकते नीचे चले गए थे। शिशुपाल अब शान्त था। वह मुझे ढाढस बंधाने लगा—तुम इन कमीनो के साथ व्यर्थ ही मे उलझ गए। इन्हे तो अपनी ठकुराई का गरूर है। साले, खोखला बडप्पन ओढ़े फिरते हैं। नाम के ठाकुर है, घर मे तो चूहे कूदते हैं।

कर मेरी दाहिनी साइड में बैठती थी। मैंने उसकी पीठ को थपथपा कर कहा — 'ठीक पढ़ लेती हो।'

तब वह थोड़ी मुस्कराई।

मैंने फिर उसे उत्साहित किया — तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगी। मैं चाहता हूं कि तुम जल्दी होशियार बन जाओ। तुम्हारा दिमाग ठीक काम करता है। बहुत अच्छा।

गर्व से उसने अपनी छाती और आगे निकाल ली। मुझे भीतर ही भीतर कुछ गिलगिली-सी हुई। मैंने फिर उसकी पीठ सहलाई।

तभी उसकी मां ने बाहर से आवाज दी — अरी, बन्द क्यों कर रखा है इसे ? *गर्मी नहीं लगती क्या ?*

सावित्री ने दरवाजा खोल दिया।

दरवाजा खुलने से भीतर की घुटन दूर होनी चाहिए थी, किन्तु घुटन और बढ़ गई। सावित्री और मेरे बीच में जो खुलेपन का प्रवाह शुरू हुआ था, वह एकदम बन्द हो गया। मैं अभी-अभी मोम की तरह पिघलने लगा था, धीमी-धीमी सुहाती-सी आंच जो अब तक पास में जल रही थी, वह एकदम बुझ गई और फिर मैं ठिठुरने लगा।

अब मैं खड़ा होने को था, सावित्री ने एक बार फिर अपने शरीर की जकड़न को अंगड़ाई से खोलने का प्रयास किया, मुझे लगा जैसे उसकी फिराक और सिकुड़ गई थी — एक तरलता मेरे गले में पैदा हुई, एकदम भीतर से नीचे तक चली गई, मैंने अपनी दोनों आखें उसके जिस्म पर गड़ा दी, उसकी नुकीली गोलाइयों पर और फिर उसकी आखों पर।

— अब कल, हैं, उसने कहा, इसी समय।

शायद उसने इस समय को उपयुक्त समझा।

मैं होस्टल गया तो मुझे अपना खाना कमरे में रखा मिला। रोटी, दाल दोनों ही ठंडी हो गई थी। शिशुपाल पहले से ही उपस्थित था। उसने जाते ही उपालम्भ पेश किया — यार, आज तो बहुत देर लगा दी। नई दुनिया बसा रहे हो।

— हां, ऐसा ही था। पहले ठाकुर साहब के यहां चला गया, फिर पढ़ाने।

—हां, तो फिर कब जा रहे हो।

—रविवार को, मैंने ठंडी-रोटी चबाते हुए कहा।

उस समय दोनो लडके और आकर बैठ गए। वे भी किसी गाव के ठाकुर के लडके थे, दसवी मे पढते थे और थे परिपक्व अवस्था के। वे एक दो बार पहले भी आए थे। मुझे शुरू से ही ऐसा लगा था कि ये दोनो कुछ टेढी नजरो से मुझे देखा करते थे।

दो बैठते हैं तब— बातें ही तो होती हैं और बातें चली। बातो मे सभी सिलसिले एक दूसरे से जुडते, टकराते चलते रहते हैं, उन्ही मे हास्य, करुणा, कटुता, भाने वाली, चुभने वाली, सभी मिश्रण होते है।

शिशुपाल ने ही कुछ ठाकुरो के उतार-चढाव के सदर्भ मे सिन्धी परिवार को लेकर कोई तुलनात्मक बात कह दी। उन लडको ने महसूस किया। शिशुपाल विचारों से सदा ही प्रगतिशील था। उन लडको ने सीधी बात कह डाली—'आप लोग दो अक्षर पढकर अकडे फिरते हो, बड़े हैं सो बडे ही रहेंगे।'

मैंने अभी-अभी खाना खत्म ही किया था। उस समय शिशुपाल तैश मे आ गया और वह बोला—'यह तुम्हारी ठकुराई दो दिनो मे बिल्ले लगने वाली है, तुम्हारे बडप्पन को लोग ····मे डाल देंगे', यह बात कुछ भद्दी थी।

उनमे से बडा लडका गर्म हो गया और वह खडा होकर बकने लगा—'साले गोल, यहां आ गए हैं और होस्टल को खराब कर रहे हैं, साले, कमीन ··और अनाप-शनाप ··।'

मुझे गरमी आ गई। मैंने भी कुछ उन्हे फटकारा। तब उसी बड़े लडके ने मुझे सीधा 'गोला' बतलाया और अपनी ठकुराई जताई। मेरे आग-सी लग गई। शिशुपाल ने मुझे पकड लिया, मैं आगे बढ रहा था। लेकिन वह शब्द मुझे ऐसा चुभा कि मेरे सीने मे शूल चुभने लगे हैं।

दोनो लडके कुछ बकते-बकते नीचे चले गए थे। शिशुपाल अब शान्त था। वह मुझे ढाढस बधाने लगा—तुम इन कमीनो के साथ व्यर्थ ही मे उलझ गए। इन्हें तो अपनी ठकुराई का गरूर है। साले, खोखला बड़प्पन ओढ़े फिरते हैं। नाम के ठाकुर है, घर मे तो चूहे कूदते हैं।

—लेकिन मेरे ऊपर किस बात का रौब डालते है ?

—रौब नही डालते, वे जानने लग गए हैं कि यह निचला तबका जो कल तक हमारे पैरो के नीचे दबा रहता था, आज ऊपर उठ रहा है और हम जल्दी ही नीचे जाने वाले है ।

—यह तो होगा ही, मैंने गर्व मे कहा, माली को आता-जाता कुछ है नही, क्लासो मे तीन-तीन बार फेल होते हैं, हम लोग ऊपर आयेंगे, इनका बडप्पन एक झटके से औंधे मुह गिरेगा, इस खोखलेपन को जिन्दा कौन रहने देगा ।

—यही बात तो है, अपने डूबते बडप्पन को थाम कर डूबने से बचाना चाह रहे हैं ।

बदलता जमाना तो बक्सेगा नही, मित्र ।

यही बात कमर साहब ने मुझसे कही—सम्पत् जी, वह जमाना अति निकट है, जब हमारे बनावटी दुर्ग और किले ढह जायेगे. हमारे इन महलो के सिर नीचे होगे । अब गरीब तबका जाग रहा है, हमे कौन सदा ही इस बालू की नॉक पर खडा रहने देगा, यह बात मैं बार-बार अपने पुत्र इन्द्र को समझाता हू, लेकिन उसे अभी तक यह मालूम नही है कि यह शानशौकत दो दिन की है । आप उसे समझाये कि वह पढकर स्वय कुछ बने । जो कुछ उसके माथे मे होगा, वही अपने पास रहेगा, ओर सब कुछ लोग छीन लेंगे ।

मैं कमर साहब की कोठी के कमरे मे पूरी तरह जम गया था, सामान अपनी अलमारी मे रख दिया, उसी मे मेरी पुस्तकें । पलंग पर अपना छोटा-सा बिस्तर डाल दिया था । मैं इस कमरे से सुपरिचित हो गया था, मुझे यह एकान्त सुहावना लगा था ।

इन्द्रसिह लम्बे कद का छरछरा जवान है । काफ़ी सीधा और भोला लगता है । सुबह उठकर अपने कमरे मे पढने के लिए बैठ जाता है, मैं भी वहीं बैठ जाता हू । उसके बैठने के लिए रुई का गद्दा है उसी पर मैं बैठ जाता हू । मैं अपनी पुस्तकें पढ़ता रहता हू और वह अपनी । कोई कठिनाई उसके सामने आती है, वह मुझे पूछ लेता है । इनके घर मे एक नौकर है—'भागू' । जात का दरोगा है, इन्ही के घर में पैदा हुआ था, इसकी मां, कहते हैं, भाग गई थी । बाप इसका इसी घर मे मर गया । वह

मेरे लिए पानी रख देता है, खाना ला देता है। सभी कार्यो का समय निश्चित है।

मुझे भीतर 'जनाने' मे जाने की इजाजत नही, ऐसा ही इस जाति का पुरातन रिवाज है। औरतें भीतर रहती हैं। कभी बाहर निकलती भी है तो पर्दे मे, औरत का नख तक दिखाई नही देता। ऐसा ही एक रिवाज युगों से चला आ रहा है जिसे ये सभी निभाते है, या निभाना पड़ता है, परम्पराओ की मजबूरिया जिन्हे ये ढोये फिरते है, अनुभव अवश्य करते है कि यह गलत है, लेकिन इन्हें सही करे कौन, सभी समाज से डरते है, किन्तु सभी आलोचना करते हैं, समझने मे यह नही आ रहा था कि फिर डराने वाला है कौन।

दरअसल, कंवर साहब के बड़े भाई और है। इनके पिता अभी जीवित हैं, वे एक और कमरे मे रहते हैं और दिन भर माला फेरते है, बहुत बूढे हैं। ठाकुर साहब का इस छोटे कवर से अधिक प्यार है और सारा काम-धाम यही सम्भालते है, इनके पट्टे मे छोटे-मोटे सात गाव है। एक बड़े गाव मे एक गढ और है। वहा इसके नौकर चाकर, कामदार रहते हैं। सारी आय इन्ही कवर साहब के हाथ में आती है। बड़े भाई तो दरबार के यहा नौकरी करके अपने परिवार का पालन-पोषण करते है।

कंवर साहब की दिनचर्या भी साधारण-सी थी। सुबह शौचादि से निवृत्त होकर स्नान करके, फिर पूजा मे बैठ जाते, फिर खाना खाकर शहर या कचहरी मे एक आध जगह घूम आते, फिर कोठी मे आये लोगो से गप्प-गप्प करते। शाम होने पर पीते अवश्य थे। कभी-कभी अधिक भी पी जाते, फिर इनकी भारी देह को सम्भालना कठिन हो जाता। मैं उस समय इनके खाने का दृश्य देखता—मीठे को सब्जी मे मिला लेते, सब्जी को रायते मे, उन्हे कुछ भी होश नही रहता। पता नही, इनका विवेक, समझबूझ सभी कहां लुप्त हो जाती थी। वह स्थिति हमारे नियन्त्रण से बाहर होती। फिर 'भागू' मुझे कहता—'आप बाहर जाओ, कवराणी-सा आ रही है।' मैं उस कमरे से अपने कमरे में आ जाता, कंवरणी-सा आती और कवर साहब को बहुत कुछ कहती। मेरे और उनके कमरे में एक बन्द दरवाजा होता था। मैं उसके छोटे से झरोखे से वह दृश्य देखता रहता। बिजली की

ट्यूब की रोशनी में कवराणी-सा इस अवस्था में भी खूबसूरत लगती थी। वह कवर साहब को शराब पीने पर बुरी तरह लताडती थी। कँवर साहब मुह नीचा कर लेते, कभी-कभी कवराणी-सा की मुह की ओर देख लेते। वह उन्हें उनके पलग पर डाल देती। कवर साहब अपनी पत्नी की ओर हाथ सा मारते रहते। वे कुछ बड़बड़ाते भी, शायद बैठने को कहते, लेकिन वह उन्हें व्यवस्थित कर उन्हीं पैरों वापिस चली जाती। उनका बड़ी आखो वाला गोरा चेहरा छाया की तरह उस कमरे में मडराता रहता। उनके इकहरे शरीर पर राजस्थानी पोशाक बहुत लुभावनी लगती थी।

रविवार का दिन था, मैं कुन्दन का पत्र लिए बैठा था। कुन्दन का पत्र बहुत दिनों से आया था, वह भी इतना चिन्तित करने वाला। कुन्दन ने लिखा था, मैंने स्कूल छोड दिया, छोड क्या दिया, छुडवा दिया गया। मास्टर के घर पर ट्यूशन पढ़ता था। उसको पैसे नही दिए। उसने पहले तो मुझे ट्यूशन से निकाला। फिर पैसों के लिए स्कूल में रोज पीटता, आखिर स्कूल ही छोड़ना पडा। अब रोज खेत जाता हू। खेत का हाल भी अच्छा नही है। पानी बरसा नही है, फसल सूख रही है। पिताजी रोज नाराज हो जाते है, वे भी कभी-कभी पीट देते है मा को पाच दिन से बुखार है, तुम्हें याद करती रहती है। सारा काम मगनी ही करती है।

जिस शहर को मैंने एक-एक बूंद करके अपने भीतर बटोरा था, वह एक ही झटके से बाहर आ पड़ा और एकदम गाव ने प्रवेश पा लिया। कुन्दन ने पढना छोड दिया, पिताजी कुण्ठाओ से घिरने लगे और मां अस्वस्थ हो गई, खाट पकड़ गई। मां तो इस्पात थी, टूट कैसे गई। बीमारी जो है, इससे तो बड़े-बड़े बिखर जाते हैं। गाव जाना होगा क्या ? मैं तो इस परिवेश का गुलाम हो चुका था, बिल्कुल गुलाम। श्यामी, सावित्री को छोड़कर दूर जाना होगा, बहुत दूर, मा के पास। मा की तस्वीर ने मस्तक में घोसला बना लिया, दिल उचटने लगा। घर जाना होगा।

घर पहुचा तो सबसे पहले मां ही दिखाई दी। वह झाड़ू निकाल रही थी। मुझे देखते ही वह हर्ष से गद्‌गद हो गई।

—आ गए तुम, वह बोली, उसने झाड़ू छोड़ दिया।

मैंने उसके पैर छूए और पूछा, अब तो ठीक है न।

—क्या हो गया था मेरे ?

—तू बीमार थी न, कहते-कहते मैं आंगन में पड़ी खाट पर बैठ गया।

—तुझे किसने कहा ? वह फिर झाड़ू लगाने लगी।

—कुन्दन का पत्र आया था, मैंने अपनी पेंट उतारते हुए कहा।

—वाह रे वाह, कब लिखा उसने ?

—परसों मिला मुझे पत्र और मैं कल चलकर आज आ गया।

—बेवकूफ है वह, मां बोली, और झाड़ू निकालकर मेरे पास आ गई।

—क्या तू नहीं थी ?

—अरे, दो दिन बुखार चढ़ा था, कल उतर गया। ऐसे बुखार चढ़ जाया करता है, तू बीच में पढ़ाई छोड़कर आ गया।

—कोई बात नहीं, मां, कुन्दन कहां है, पिताजी ?

—वे दोनों खेत में हैं, अरे यह पतलून कब सिलाई ? उसने पतलून देख कर पूछा।

—अभी, मैंने मां को फिर पेंट पहनकर दिखाई।

—बड़ी अच्छी लगती है, मां बेहद खुश हो रही थी। कमीज भी अच्छी लगती है। उसने कमीज को हाथ लगाकर देखा।

—वह शहर है मां, देहात थोड़ा ही है।

—शरीर से ठीक हो रहा है, वह मेरे बालों पर हाथ फेर रही थी, और मूंछें क्यों कटवा ली, भद्दी लगती है।

—रिवाज है मां।

—यह क्या रिवाज है ? अपने यहां तो मां, बाप मरने पर कटवाते हैं।

—क्या मां, पुरानी बातें पकड़ी फिरती हो, तुम्हें तो, सच, कुछ मालूम ही नहीं है।

—चल, कोई नहीं, मां ने कहा, दूध पीयेगा ?

—मां, चाय बना।

—चाय, सर्दी लग गई क्या ?

—नहीं मां, कुछ थक गया।

—अरे, आदत तो नहीं पड़ गई, बुरी बात है, बेटा।

—मां, तू सचमुच पुरानी मां है, शहर में यह भी रिवाज है।

—अच्छा, मा शायद मान गई। उसने चाय बनाना शुरू किया।

मैंने अपनी पेंट उतारकर खूंटी पर टाग दी और कमीज और कच्छे मे घूमने लगा।

—मुझे फिर कुन्दन याद आ गया।

—मैंने फिर पूछा मा, कुन्दन ने पढाई क्यों छोड दी ?

अरे, बेटा क्या बताऊं ? सच्ची बात तो यह है कि तेरे पिताजी अकेले हैं बेचारे। उनको कोई सहारा नही है, सम्पत्। तू तो पढाई करता ही है। वे कब तक अकेले काम करते रहेंगे। फिर मैंने भी जोर देकर कहा कि इसकी पढाई छुडवा ही लो। पढाई भी ठीक नही कर रहा था, रोज मार पडती थी।

उसने तो यह लिखा कि मास्टर ने मुझे पीटकर स्कूल से निकाल दिया, मैं पूछता हू, उस मास्टर के बच्चे से।

मास्टर तो पीटते ही हैं, उसको कोई अलग थोडा ही पीटा वह बोली, वह पढता भी कहा है। मास्टर पैसा मागता है, लेकिन दो महीने में एक ही महीने गया। हमने एक महीने के पैसे दे ही दिए थे। खैर ! वह तो हम फिर कर लेते, लेकिन पढाने की इच्छा ही नही है। कुश्ती-वुश्ती का चक्कर चढा रहता है।

—चलो, ठीक ही है, पिताजी को तो सहारा हो गया।

मा चाय ले आई थी। मैंने एक कप मे चाय डाल ली।

—मा, तू भी चाय पी, मैंने एक अलग कटोरी मे उसके लिए चाय डाल दी।

— ना, ना, बेटा, मां ने कहा—मैं नही पीती चाय, आदत पड जाये तो। वह देख तेरी ताई ने चाय शुरू की, क्या हालत हुआ ? दुनिया भर का कर्जा हो गया। अब जमीन गिरवी रख दी है, तुझे मालूम है क्या ?

—नही मां।

मा ने फिर ताई की कहानी शुरू करदी। शायद मां के लिए ताई की कहानी चाय का ही काम करती है। इस पर ही वह जिन्दा है।

बीच ही मे मगनी आ गई। मैंने उठकर उसके सिर पर हाथ फेरा। तू कहा थी अब तक, बडी हो गई है।

उसने शर्माते हुए कहा—गोबर थापने गयी थी।

मा ने वही कहानी फिर शुरू कर दी।

मगनी ने टोकते हुए कहा—मा के पास तो बस एक ही कहानी है।

मैं मा की बात का समर्थन करता रहा, यह सोचकर कि मां को कही ठेस न लगे, मा की खुराक जो है।

—कुन्दन भी बहुत चिडाता है, मगनी ने हँसते हुए कहा।

—वह तो नालायक है, मा ने बीच ही में बात काट दी, सम्पत्, वह नालायक बीच ही में भाग आता है।

—खेत से ? मैंने आश्चर्य प्रकट किया, फिर वह काम क्या करता है ?

आगे की बात और सुना, मगनी ने मा को ताकते हुए कहा। मां चुप हो गई थी।

मगनी ने बताया—भैया वह आकर दूध की सारी मलाई ऊपर से चाट जाता है।

—अच्छा, मैंने कहा।

बहुत टोकती है उसे, मा फिर भी उदास नहीं हुई।

—कहता क्या है, मालूम है, मगनी ने बताया, शरीर बनता है, पहलवानी जो करता हू।

सारा वातावरण अपनत्व के रस मे डूबा हुआ था, सारी बातें उसी मे लिपटी चल रही थी।

दिन मे मैं अपनी पेंट पहन कर गाव के बीच मे से एक चक्कर लगा आया, मैं सबसे अपने को अलग समझ रहा था। लोग मेरी ओर देखते थे, मुझे पूछते थे। कुछ लोग खुश होते थे, कुछ मन ही मन चिढते थे, लेकिन मुझे इन दोनो ही तरह के आदमियो से उत्साह बढा था, प्रेरणा मिली थी।

रात को मैंने अपनी मा और पिताजी से श्यामी और सावित्री से लेकर कवर साहब तक की कहानी बता दी। मा और पिताजी बहुत सन्तुष्ट हुए। मैंने साथ-साथ मे श्यामी और सावित्री के घरों का चित्रण किया, फिर उनकी वेशभूषा का। शहर की बहुत-सी बातें बताई। कंवर

कवराणी-सा की शराब वाली कहानी बहुत रोचक रही।

सुबह मैंने पिताजी का समूचा चेहरा देखा, वह काफी

लगा। उनकी बिखरी हुई मूछो के आसपास झुरिया के कई नक्शे बन गए थे। उनकी मेरे मे अभिरुचि लगभग समाप्त-सी लगी। वे कुन्दन को जगा रहे थे, बुरी तरह झिडक रहे थे, कुन्दन अपने मस्ताने शरीर को इधर-उधर लुढका रहा था, उसकी नीद अभी तक नही टूटी थी। वह उठा, तब मैंने देखा कि वह पहले से अधिक गठीला हो गया था।

मैंने अपने घर के बिछे हुए बिस्तर देखे, इतने दिनों के अन्तराल से ही मैं महसूस करने लगा था कि सारे घर मे गरीबी बिछी हुई थी। टेढी-मेढी खाटो पर फटे, पुराने कपडो के इकट्ठे किए हुए बिस्तर थे, किसी पर तकिया नही था, ओढ़ने को जो कुछ था, उसे देखकर मुझे मन ही मन शर्म आती थी। श्यामी, सावित्री कभी इस घर मे आ जायें तो ?

दिन में मैंने पुनः प्रस्थान करने का निर्णय ले लिया। मा ने मुझे स्वीकृत दे दी—'तेरा टैम खराब हो रहा है, यहा की चिन्ता मत करना।' शायद कुछ और भी ठहर जाता, लेकिन मुझे लगा कि श्यामी और सावित्री की दो डोरिया मेरे दोनों हाथों से बधी है और मुझे खीच रही है।

तीन दिन के बाद जब मैं श्यामी के यहा पहुचा तो उसने मुस्कराकर मेरा अभिवादन किया। श्यामी के चेहरे पर मैंने पहली बार इतनी मधुर मुस्कान देखी थी। उसकी हरी फिराक उसके गोरे रग पर फब रही थी। कुर्सी पर मैं बैठ गया, तब वह उठकर पुस्तक लेने गई। आते ही उसने कहा—मैंने तो सोचा था, आप शायद ही आज आयें।

—कहकर गया था न।

—माताजी ठीक है ?

—तभी तो आया, कुन्दन ने व्यर्थ मे लिख दिया था, थोड़ा बुखार था। कुन्दन ने लिख दिया, फिर तो आना ही पडा।

—चलो, अच्छा हुआ, चिन्ता मिटी, वह बोली।

—हा, हा, चिन्ता तो हो ही गई थी।

उसने सबके पहले उपन्यास की पुस्तक मेज पर रखी।

—पुस्तक पढ डाली, मैंने पूछा।

—और दो दिन क्या करती ? समय तो बहुत मिल गया था।

—कैसी लगी पुस्तक ?

—अच्छी है, वह बोली, फिर उसने पुस्तक के कथ्य और चरित्रों पर संक्षिप्त टिप्पणी की।

मैंने श्यामी की सूझ-बूझ और समझ की थोड़ी प्रशंसा की, तब उनके भीतर गर्व की कुछ हलचल हुई जिसका हल्का-सा आभास उसके चेहरे पर आया, गालों पर थोड़ी लालिमा आई जो मुझे बहुत प्यारी लगी। मैं उसके चेहरे को देखता रहा, लेकिन उसकी आखें झुकी हुई थी।

श्यामी की वाटिका मे लाल और पीले रंग के फूल खिल रहे थे, उन खिले हुए फूलो के चारो ओर हरी पत्तियो का झुरमुट था। मैं एक बार उन्हें देख लेता और फिर श्यामी की ओर सोचने लगा कि प्रकृति कितनी रमणीय है। श्यामी क्या है, एक फूल ही तो है, बिल्कुल सफेद रंग का फूल जो पूरा खिल गया है जिसे मन भरकर देखा जा सकता है। फिर एक हवा का झोंका आया और उन डालियो के साथ वे फूल भी हिलने लगे, मेरे भीतर एक सिहरन-सी दौड़ गई।

मैं जब श्यामी के घर से उठा, बाहर साझ का अधेरा आ गया था। मैंने चलते-चलते कहा—'आजकल सूरज की धूप जल्दी ही छिप जाती है, दिन छोटे होने लग गए है।'—'हा जी' कहा था, शायद श्यामी ने, वह अपनी पुस्तकों को समेटने मे व्यस्त थी।

एक बीज जो कुछ दिन पूर्व मेरे भीतर उगा था, ऐसा लगा कि वह अंकुरित हो गया, उसके पत्तिया आ गईं—हरी-हरी, कोमल-कोमल। क्या श्यामी के भीतर कुछ हो रहा है या नही। लेकिन उसे खोलकर देखना आसान तो नही है। श्यामी एक रहस्य बनकर मेरे आगे-पीछे मडराने लगी।

सावित्री तो एक फुलझड़ी है जो खुली रोशनी फेंकती है। वहा कुछ भी दुराव-छिपाव नही है।

—दिन छोटे होने लगे सावित्री, मैंने कहा।

आज वह खुश थी, इसलिए वह हँस रही थी। सावित्री दो ही बातें जानती है, या तो वह मुह एकदम बन्द कर सकती है या फिर एकदम मुह खोल सकती है। आज वह खुली हँस रही थी। वह बोली—अच्छा ही है, अब तो बाकी का टाइम मेरा ही है।

उसको इस बात मे मेरे प्रश्न की कोई बात नही थी, उसकी अपनी ही बात थी।

मैंने कहा—मैंने तो यह सोचा था कि सावित्री को पहले पढा दू ताकि इसके टाइम का झगडा ही नही रहे ।

—नहीं, नही, पहले वही ताकि बाकी के टाइम मे कोई झगडा न रहे।

—तुम खुश हो न, और मैंने धीरे से उसकी चोटी खींच दी ।

—मुझे क्या है, आपको तकलीफ न हो । उसने कुछ समझदारी भाषा मे कहा ।

उसने हिन्दी का पाठ पूरा कर लिया । मां अपने बच्चों को लेकर दूसरे कमरे में चली गई थी ।

मैंने पूछा—तुम्हारे पिताजी कब आते हैं ?

—बहुत देर से आते हैं वे तो, वह बोली, कारखाने के एकाउटेंट है ।

—और श्यामी के भाई हरीश जी ?

—वे तो मालिक हैं, बाबा, यह बोली, ये बहुत पैसे वाले है । मेरे पिता जी वहां रेलवे में थे । उनसे नौकरी छुड़वाकर यहां ले आए ।

—तुम्हारा और श्यामी का क्या रिश्ता है ?

—श्यामी मेरी बूआ की बेटी, बहन है ।

—अच्छा,

—हा, श्यामी के पिताजी का भी सिन्ध मे काम है, यहा किसी सेठ के साथ साझा है । उस सेठ का भी वहा काम है। सिन्ध मे मुसलमान बहुत है, इसलिए हम लोग यहा आ गए ।

सावित्री खुश होती है, तब बड़ी बातें करती है ।

—अच्छा अब अंग्रेजी की पुस्तक निकाल लो ।

सावित्री अब गम्भीर मुद्रा में थी ।

ट्यूब रोशनी फेंक रही थी और घड़ी 'कट्, कट्, कट्, कट्' करती जा रही थी । सावित्री एक-एक पंक्ति पढ रही थी और मैं उसका हिन्दी मे अर्थ करता जा रहा था ।

—आज इन्तजार कर रही थी क्या ?

—हा, उसने एक लहजे से कहा, आप कहकर गए थे ।

मैं चलने को हुआ, तब उसने कहा—आप वह पुस्तक तो ले जाइये।

—कल ले जाऊंगा, कल उस पर कुछ बात भी करूंगा। है, और मैंने सावित्री के गालों पर एक हल्की-सी चपत लगा दी। सावित्री एक सरल कविता-सी लगती जा रही थी।

कवरसाहब की कोठी ठाकुर का 'डेरा' के नाम से जानी जाती थी। डेरे के चारों ओर की कच्ची दीवारें पूरी तरह गिर चुकी थी और उनके स्थान पर कटीले बबूल के पेड़ थे। ठाकुर साहब स्वयं तो भगवान के समीप जा रहे थे, शायद उन्हें निकट आने वाली मृत्यु का चेहरा दिखाई देने लगा था। कवर साहब तो अच्छी तरह जानते है कि इस डेरे मे वे कुछ दिनो के ही मेहमान है जब तक उनके पिता जिन्दा है, इसलिए वे पिता को जिन्दा रखने मे रुचि लेते थे, उनकी अच्छी सेवा-सुश्रुषा करते थे, थोडी-सी छीक आने पर भी डाक्टर को बुला लेते। ठाकुर साहब यही समझते थे कि यह छोटा कंवर विजय ही मेरा आज्ञाकारी पुत्र है, बड़ा तो पूरा नालायक ही है। कवर विजयसिंह इस संक्रमण काल का पूरा लाभ उठा रहे थे। वे आई हुई आय का कुछ हिस्सा तो घर के काम मे लेते थे और कुछ अपनी जेब मे रखते थे, क्योंकि उन्हें आने वाला समय काफी संकटकालीन नजर आता था। इस स्थिति को कवराणी-सा ज्यादा अच्छी तरह समझती थी, वह कवर साहब के अधिक शराब पीने पर यही बात दोहराती थी—ये दाते सदा नहीं रहने की, आप समझते क्यों नहीं हो।'

यही बात कवरसाहब मुझे कहते थे—'सम्पत् जी, आप इन्द्र को यही समझाओ कि तुम पढ जाओगे, सभी सुख पाओगे।' शायद केवल यही बात समझाने को मुझे यहा रखा गया था।

मैं इन्द्र को यह बात बताने का अवसर ढूढने लगा था, लेकिन यह अवसर आता कैसे। वह अपने दिमाग को पुस्तको मे ही लगाए रहता। मुझे धीरे-धीरे यह मालूम होने लगा था कि इन्द्र का दिमाग बालू जमीन की धरती के समान था जिसमे बीज उगना बडा कठिन था, थोडा-सा झोका हुआ और उड गया। खास बात यह भी थी कि वह वैसा ही सीधा और सपाट था। मैं अब तक उस गीतायन को ढूढ रहा था जिसमे कवरसाहब

का सोया हुआ बीज रोप सकूं कि भई इन्द्र, तू समझ, ये दिन सदा नहीं रहने के। इन्द्र पढ़ रहा था और मैं उसकी कठिनाई दूर कर रहा था।

धीरे-धीरे सर्दी शहर के सड़कों पर उतर कर आ गई। शहर का आदमी और औरत बदलने लगा। आदमी एक ही रंग के सूट पहन कर चलने लगे। औरत ने लम्बे कोट धारण कर लिए। मेरे सूती कपड़े फिर अटपटे लगने लगे। मैं फिर अपने आप को 'मुसाफिर' आंकने लगा। कभी-कभी मैं हरीश को देखता। गोरे रंग पर उसका सुहावना चश्मा तो वही था, लेकिन काले रंग का उसका सूट उस पर बड़ा फबता था। मेरे दिल में ऐसा 'सूट' घर कर गया और मैं मन ही मन उस पोशाक की कल्पना करने लगा। कॉलिज में तो यह वेशभूषा आम हो गई थी, उस समय मैं फिर सबसे अलग-थलग नजर आने लगा। शायद श्यामी और सावित्री के मस्तक में मेरी गरीबी नंगी होकर न आ जाये, यह पीड़ा मुझे हर समय कचोटने लगी।

कपड़ों की दुकानों की कतारें थीं और उनमें हरदम पांच-सात ग्राहक खड़े ही रहते थे, बड़ी झेंप थी कि कैसे उन्हें पूछें कि एक 'सूट' में कितना रुपया लगेगा, फिर रुपये जितने लगेंगे, वे मेरे पास हो सकेंगे या नहीं। बड़ी अजीब उलझन थी और हल करे भी कौन? एक दिन बड़ी हिम्मत करके एक दुकान में प्रवेश कर गया जिसमें नाममात्र को भी ग्राहक नहीं था और चुपके-चुपके कपड़े देखे, भाव पूछे, सारा हिसाब लगाया, फिर अकेले ही दर्जी के पास गया। दो दिन की लगातार दिमागी कसरत से एक नतीजे पर पहुंचा कि केवल कोट ही करवा लिया जाये।

श्यामी को पढ़ाने का मेहनताना श्यामी खुद देती थी और सावित्री का सावित्री की माताजी। दोनों का पैसा करीब-करीब समय पर आता था। एक बात और दिमाग में आई कि एक महीने बाद तो मैं इस स्थिति में हो सकूंगा कि सूट सिलवा सकूं। श्यामी और सावित्री के पैसे अग्रिम ले लिए जायें तो काम बन जाये, किन्तु यह बात कहना भी कठिन था। सोचा कि श्यामी से यह बात कह दूं, किन्तु फिर हिचकिचाहट हो गई, क्या समझेगी श्यामी? मेरा गुरु एक गरीब है और गरीबी एक कमजोरी है जिसे इनके सामने छिपानी बड़ी जरूरी है।

वह फिर पढ़ने लगी।

मैंने मन ही मन सोचा—यहां काम बन जाये तो बस···। फिर तो काम ही बन जाये।

फिर पढ़ाई समाप्त हो गई। मैं उठने लगा। वह भी उठी, लेकिन उठते उठते उसने कहा—ठहरना, मैं अभी आ रही हूं।

शायद काम बनेगा, कल्पना मेरे मन में गुदगुदी पैदा करने लगी।

मैं भीतर के दरवाजे पर एकटक नज़र गड़ाये हुए था।

वह जल्दी ही आ गई और प्लेट में कुछ पकौड़े ले आई—'आज बनाये थे हमारे यहां।' कहकर वह फिर चली गई। मैं पकौड़े खाने लगा, लेकिन मन का स्वाद फीका पड़ गया।

वह फिर आई और उसने भी दो महीने के पैसे मेज पर रख दिए। पकौड़े मैं खा चुका था, किन्तु उनके स्वाद का अब पता चला।

मैं बाहर निकला तो आकाश में तारे मुस्करा रहे थे, बिजली मस्ती से सड़क पर मचल रही थी और वह गतिमान होकर मेरे टांगों में प्रवेश कर गई थी, मैं हवा में चलने लगा। मैं अभी से शहर का पक्का बाबू हो गया था। आगे सूनी सड़क पर मैं सिनेमा का गाना गुनगुनाने लगा। पार्क के फूलों ने मेरा स्वागत किया। एक दुकान पर गाने की एक धुन में मैं झूमने लगा।

उस दिन फिर समस्या आई जिस दिन कपड़े बन कर तैयार हुए। कमरा बन्द करके मैंने अपना सूट पहना और इधर-उधर घूमा, अंधेरे कमरे में ही। फिर सूट उतार कर। भीतर रख दिया। दूसरे दिन सूट पहनकर बरामदे में आया। इन्द्र ने तारीफ लूटी और भाग की। फिर भीतर रख दिया, उसी तरह समेट कर 'शाम को कंवर साहब भी देख गए, उन्होंने उसकी सिलाई, कपड़े का भाव सभी कुछ पूछकर थोड़ी गलतियां-सी निकाल कर प्रशंसा ही की। फिर उन्होंने यह भी कहा—'इन्द्र को भी सिलवाकर देंगे। अच्छा लगता है।'

कुल मिलाकर तीन दिन के बाद मैं कॉलिज में सूट पहनकर चला गया, लेकिन श्यामी के यहां केवल कोट पहनकर गया। क्या झेंप थी राम जाने। फिर दूसरे दिन पूरा सूट पहना। मुझे वह दिन याद आया जिस दिन मैं नगा

भागकर घर में घुसा था जब बनिया कपड़े उठाकर ले गया, मुझे बड़ी शर्म आई थी, या आज शर्म आ रही है जब मैं नये कपड़ों से ठीक हूं, क्या साम्य है? मैं श्यामी के चेहरे पर ही देखता रहा कि वह मेरे पर हँस तो नहीं रही है। मैं उसे शायद व्यंग्य की संज्ञा दे जाता और उसका एक ही अर्थ निकालता, कमजोरी का अर्थ जो जन्म से मेरे साथ चिपटा था।

मैं फिर वैसे ही इन सड़कों पर चलने लगा जैसे कभी अपने कच्छे और कमीज में गाव की गलियों में घूमता था।

कई दिनों बाद पत्र मिला पिताजी का। फसल निकाल ली थी, खेत में काम नहीं रहा। फसल अच्छी नहीं थी, थोड़ी-सी बाजरी खाने लायक हुई। मोठ और गुंवार भी अच्छे नहीं हुए। चने खेत में डाल तो दिए है, अब भगवान मालिक है। कुन्दन आवारा हो गया है। वह गाव के गदे लडकों के साथ घूमता है। उन्हीं लडकों में से किसी एक के घर से अट्ठारह सेर का घी का पीपा उड़ाया और उसे अब तक खाते रहे। उन्हीं के साथ वह दिल्ली भी गया। वहा एक अजीब पोशाक बना कर लाया है-- मुसलमानी पोशाक, सलवार और कुरता। रोजना दण्ड पेलता है, कुश्ती करता है। वह तुम्हारी मां की तो परवाह ही नहीं करता। मैंने भी उसे कहना छोड़ दिया। फिर उन्होंने पूछा—तुम्हारी छुट्टियां कब हो रही हैं? आ रहे हो या नहीं। तुम्हारी मा ने तुम्हारे लिए दो सेर घी दिया है। तुम आओ, तब ले जाना।

मुझे कुन्दन की चिन्ता सताने लगी। मा ने पढ़ाई छुड़वाकर गलती ही की। दरअसल कुन्दन का सोचने का तरीका भी गलत है। उसका ध्यान कभी भी पढ़ाई की तरफ नहीं था, शायद होता भी नहीं। वह हरदम अपने शरीर की तरफ देखता है। दिन भर उसकी यही बातें होती थी। मैंने उसे उठाकर पटका, उसका मुरचा मरोड दिया, उसको हराया, उसको जीता। कभी वह अपनी टाग नापता, कभी हाथ। अजीब किस्म का प्राणी है।

बड़े दिनों की, दस दिनों की, छुट्टियों में मैं गाव आ पहुंचा। श्यामी और सावित्री यहा ठहरती तो शायद मुझे कुछ सोचना ही पड़ता, किन्तु वे दोनों ही अपने रिश्ते में दिल्ली चली गई थी। इसलिए मुझे निश्चिन्त होकर गाव में दस दिन काटने थे। पहला दिन तो मैं आराम से गाव में

घूमा, अपना नया सूट पहन कर। मां मुझे देखकर बहुत खुश थी। मां ने एक बात नोट की जो मुझे मालूम नहीं थी—तुम कमजोर हो गए।

मगनी ने भी यही बात कही—हो तो कमजोर, भैया।

कुन्दन ने जो बात कही, वह इनसे अलग थी—मुझे देख, कैसा हो गया हूं। फिर उसने अपने हाथ के पट्ठे उभार कर दिखाए।

—क्या खाता है ? मां ने पूछ लिया।

रोटी तो मां, ऐसी ही मिलती है। मैंने बताया, सुबह और शाम रोटी सब्जी।

—दूध पी लिया कर, तेरे पास पैसे तो आते ही हैं। दो सेर घी रक्खा है, वह तो तू यहीं खाले, वहां महंगा लगेगा।

मां रोज रोटी में खूब घी डालकर देती। मां के हाथ की रोटी वैसे ही स्वादिष्ट होती है, फिर चुपड़ी हुई। पांच-चार दिन में मुझे शरीर में फर्क नजर आने लगा।

मुझे हवेली का चांद शाम को उसी छत पर दिखाई दे जाता। मुझे वह फीका-फीका नजर आता था। ऐसा लगता कि मैं अब पूनम का चांद देखता हूं, यह तो कोई छठी का चांद-सा लगता था। मुझे कुछ बदला हुआ देखकर उसकी आंखें मेरे घर की ओर अधिक झांकने लगतीं। मेरे मन बह-लाने का भी यह अच्छा रास्ता था।

अन्य औरतों में मैं हवेली की सेठानी को भी बैठे देखता। सांवले रंग की मोटी औरत थी। बहुत देर तक वह बैठी ही रहती, तब वह लड़की भी वहां आ जाती। उसका नाम भी सचमुच चांद ही था। वह बैठी रहती, लेकिन मुझे देखते ही अपनी मां को उठाने की कोशिश करती—'उठ मां, चल तो, घर चल।'

—अरी, ठहर जा, उसकी मां बेचारी पड़ी-पड़ी कहती रहती।

मां भी उसे टोकती—'अरी, अभी आई है, क्या करेगी चल कर।' तब वह अकेली ही चली जाती। वह शायद मेरे से ही झेंपती थी।

एक दिन वह अकेली गली में मिल गई थी, 'क्या बात है, मैं अच्छा नहीं लगता क्या ? मुझे देखते ही भागती हो।' मैंने धीरे से कहा। लेकिन उसने मुंह नीचा करके भागने की ही सोची।

चाद ने फिर घर से भागने की जिद् छोड दी थी और टुकर-टुकर मेरी तरफ देखा करती और मैं भी उसे देखता रहता। एक दिन अधेरे मे मुझे गली मे मिल गई और मैंने उसे पकडकर उसका चुम्बन ले लिया। उसके शरीर का गुदगुदा हिस्सा मुझे छू गया था। मैंने पहली बार औरत के जिस्म को इस प्रकार छूआ था। शरीर मे ऐसी सनसनी फैली कि मैं बहुत देर तक नारमल नही हो सका। जुबान उखड गई थी, पैरों में कम्पन शुरू हो गया था। मेरे हृदय मे उस जिस्म को फिर प्राप्त करने का मोह जाग गया था जिसको निकालना दुष्कर हो गया।

कुन्दन दिन भर बाहर रहता, सुबह खाने का समय और शाम का समय तो निश्चित था ही, बाकी समय मे उसका कही पता ही नही चलता था। मुझे तो जाना ही कहां था, दिन भर घर मे बैठा पढता रहता या मा और मगनी के साथ बाते करता रहता। मां की बातों का क्या अन्त था, वह एक ही बात को बार-बार दोहराती भी रहती। पिताजी घर या खेत मे व्यस्त ही रहते। दिन में काकी, मामी, भाभी, ताई सभी आ जाते और वही महफिल जम जाती। अब सेठानी आने लगी थी और चाद भी आ जाती। चाद इस घटना के बाद दूसरे दिन थोडी देर के लिए ही आई और मेरी तरफ देखकर शरमाई और चली गई। वह थोडी-सी मुस्कराई थी जिससे मेरे भीतर का भय दूर हो गया और एक नई चाह फिर शुरू हो गई। मै शाम को छत पर चला गया, मेरी इच्छा हुई कि मै अपना सदेशा उस तक पहुचाऊ। हवेली कुछ दूर थी। केवल मेरी आंखे उसे देखती रही और उसकी आखें मुझे। चाद तो पक्की ईंटो से घिरी थी, बात पहुचना तो दूर, कही हवा को भी रास्ता नही था।

पिताजी का स्वभाव बहुत चिडचिडा हो गया था। वे कुन्दन की हरकतो से बहुत असतुष्ट थे। वे कभी-कभी अपने जीवन के प्रति निराशा प्रकट करते हुए कहते—'बडा बेटा तो हाथ से निकल ही गया और छोटा भी निकलता जा रहा है, मुझे किसी का सुख है नहीं।' रात को अपना थका हुआ शरीर खाट पर डाल कर वे सो जाते और लम्बी खर्राटे लेने लगते। मुझे भारी निराशा होती, किन्तु विवशता मेरे आगे मुह बाये . . . जाती। मा से कहता—'मां, पिताजी दुखी बहुत हैं।'

—दुखी तो हैं ही बेटा, तू ही देख ले। तू तो अपनी पढाई के चक्कर मे है और छोटे का हाल तेरे सामने है। अब बोल, इन्हे तो किसी का सुख रहा नही, न आगे भी दिखता है।

मैं इसी स्थिति पर अपने बाहर के कमरे में अकेला पडा चिन्ता मे डूबा रहता।

मैं एक लालटेन लेकर कुछ देर तो पढता, कुछ देर घर की उधेड़बुन मे जागता रहता और फिर सो जाता।

कुछ देर ही हुई थी, लालटेन मैंने बुझाई ही थी। बाहर गली मे गहरा अधेरा भरा हुआ था। कोई आता जाता तो केवल उसके पैरो की ध्वनि ही सुनाई देती। मैं सोने को था, नीद शायद आने को ही थी। सोच ही रहा था कि दरवाजा बन्द कर दूँ। भीतर की हलचल भी शान्त हो गई थी। शायद भीतर वाले भी सो रहे थे। कुछ दूर पर कोई कथा-वाचक कथा पढ रहा था, उसकी डूबी हुई आवाज सुनाई दे रही थी। मैं उसी के बारे मे सोच रहा था, इतने ही मे दरवाजे पर कोई काली परछाई दिखाई दी।

मैंने कहा—कौन ?

—चुप, और छाया मेरे शरीर से चिपट गई।

—चाद, तुम यहा और इस समय ?

—उसका गुदगुदा शरीर मेरे अंगो के बंधनो मे उलझा हुआ था।

—जल्दी करो न, कथा के बीच में उठकर आई हूं, नीद के बहाने।

ऐसा लगा कि मादकता का समूचा तूफान शरीर मे प्रवेश कर गया और दोनों जाघो के बीच साकार बन कर खडा हो गया। चाद ने उसे ऐसी गति दी और कुछ ही क्षणो मे ऐसा हुआ कि सारा तूफान शान्त हो गया। मुझे सारा शरीर भीगा हुआ-सा लगा। चांद का शरीर जो अब तक जलता हुआ लावा-सा लगता था, अब वह बिल्कुल वर्फ की तरह शीतल लगा। उसकी सास अभी उठ-गी रही रही थी। चाद तुरन्त नीचे सो खिसकी और झोंके की तरह बाहर निकल गई। मैं उस अधेरे मे कुछ देर ज्यो का त्यो पडा रहा। मुझे कुछ चिपचिपा-सा महसूस हुआ। कैसे यह सपना-सा आया और वह टूट गया। चांद की छाया अब भी चारो ओर घूम रही थी और उसकी जिस्म की महक मेरे कपडों से दूर नही हुई थी। मैंने अपने कपडे

सम्माले और इस मधुर घटना की गुदगुदाती स्मृति को आखों भर ओढ़ सोने की चेष्टा करने लगा।

उसके बाद तो मैं चाद की तलाश करता ही रह गया। वह न तो छत पर आई और न घर में। अन्तिम समय में उसके दर्शन तक नहीं कर सका। राम जाने वह भीतर जाकर क्यों छिप गई थी और मैं छुट्टी ले वापिस प्रस्थान कर गया।

कवर साहब पहले से अधिक चिंतित रहने लगे। मैंने कहा—'कवर साहब, अब हमे चिंता नहीं करनी चाहिए। देश आजाद हो गया है। अंग्रेजों के चगुल से हम मुक्त हो गए है।'

हिन्दुस्तान आजाद हो गया, हमे कोई फिक्र नही कंवर साहब बोले, लेकिन आप देख रहे हैं कि इससे हम लोगों की जिन्दगी पर क्या असर पड़ेगा। जो कल तक जेलों में थे, वे राजा बन गए, जो कल तक राजा थे वे राजा नही रहेंगे और उनके साथ चिपके रहने वालों का क्या हाल होगा?

शायद कवर साहब की चिन्ता सही भी थी। आम आदमी की खुशहाली मे ही तो उन्हे नुकसान है।

कवर साहब सुनाने लगे—सम्पत् जी जब मेरी शादी हुई थी, उस समय मेरी सवारी हाथी पर निकली थी। बारात कोटा गई थी। देखने वाली धूम-धाम थी। धन-दौलत की बात अलग है, कितनी शराब खर्च हुई थी, कोई याद नहीं। साथ में गोला, गोली आते थे। हम लोगों ने बैठे खाया है। जिनको मारा, मारा, जिसको बक्सा बक्सा। दरबार तक हमारी पहुंच है। सरकारी नौकर हमसे कापता है। यह सब कुछ बदल जायेगा। सुना है दरबारी मारे मारे फिर रहे है।

इसी प्रसंग में उन्होंने बताया—सम्पत् जी, मेरे हाथ से कत्ल हुआ है और मैं बैठा हू। कुछ नही बिगड़ा मेरा। आने वाली हुकूमत में क्या होगा, आप जानते है? लगता है, आज ये लुच्चे-लफगे जो जेलों में पड़े हैं, इन्हीं का राज होगा। क्या हमे ये बख्सेंगे?

कंवर साहब से मतभेद होते हुए भी मेरी उन्होंने सहानुभूति

कर ली। मैं जिन्हें देशभक्त कहता था, उन्हें कंवर साहब लुच्चे-लफंगे कह रहे थे। अपने स्वार्थों की लडाई दुनिया लडती है। कंवर साहब का स्वार्थ इसी में था कि स्थिति में परिवर्तन न हो किन्तु परिवर्तन अवश्यम्भावी था इसलिए कवरसाहब की चिन्ता स्वाभाविक थी।

इसलिए मैं एक ही बात कहता हू कि इन्द्र हमारे सस्कारों से मुक्त रहे। हमने भोग लिया सो भोग लिया, इन्द्र अपने जमाने मे अपने हाथ की कमाई खायेगा। बस यही बात इन्द्र को समझानी है, सम्पत् जी कि वह अपना हाथ मजबूत करे। दुनिया यह न कहे कि विजयसिंह की औलाद रोटी के लिए तरस रही है।

कवरसाहब ने यह भी कहा—मैं जानता हू कि वह पढाई मे कमजोर है। आप जैसा लडका होता तो मैं उसे विलायत भेज देता। इस समय मेरी इतनी पहुच है।

मैं उनकी बात सुन रहा था और उनके भरे चेहरे की मूछों को एक-टक देख रहा। मैं भीतर ही भीतर यह भी समझ रहा था कि गिने दिनों मे ये मूंछें नीची हो जायेंगी। एक मीठा सपना था मेरे दिमाग मे वह जल्दी ही साकार होगा, मुझे लगने लगा था। समय एक चुटकी के साथ बदल रहा था।

छुट्टी के दिन अचानक दिमाग में आया कि ट्यूशन वाला काम पक्की कर आऊ। पहले सावित्री के यहा चला गया। दरवाजा स्वय सावित्री ने ही खोला। उसने दरवाजा खोलने से पहले पूछ लिया था—कौन? उसे मेरे आने की तो प्रतीक्षा ही नहीं थी। मैंने 'कौन' का उत्तर दिया था—'मैं हूं।' फिर भी शायद उसने पहचाना नहीं था और कमरे का दरवाजा खोलने के बजाय दूसरा दरवाजा खोला। उस दरवाजे से प्रवेश करने पर समूचा घर सामने आ जाता है। दरवाजा खोलते ही उसने मुझे देखा और मुस्कराकर मेरा स्वागत किया—'ओह आप।' वह बालों में कघा लगा रही थी।

—अभी स्नान किया है क्या?

—स्नान किए तो बहुत देर हो गई, बाल सूखने पर कघा कर रही थी।

और भीतर दो गेंदें उछलने लगी। मैंने उसे कसकर बाहों में कस लिया।

बस तो, उसकी सांसों की महक, उसके ओठों का मिठास, उसका गुद-गुदा जिस्म, एक ही क्षण में ऐसा हो रहा और ऐसा लगने लगा कि नीचे की जमीन और दीवारें हिल रही हैं।

—आप तो बड़े वैसे हैं, और वह तुरन्त अलग हो गई।

—बुरा मान गई न, मेरे ओठ सूख गए थे, सर्दी में भी चेहरे पर पसीना आ गया। मुझे अपने से ही भय लगने लगा।

मैं तुरन्त पढ़ने के कमरे में आकर बैठ गया और अपना दिल जमाने लगा। दिल की धड़कन बढ़ गई, शायद वह बुरा मान जाये इसलिए।

मैंने चाहा कि उसके पास जाकर मैं क्षमा-याचना करूं।

उसी क्षण वह पुस्तक लेकर आ गई। उसके चहरे पर एक नकली गम्भीरता थी।

वह पढ़ती गई और स्थिति सहज होती गई। थोड़ी देर बाद ही बच्चे आ गए थे।

पढ़ाई जल्दी ही समाप्त कर दी।

—चलूं, मैंने हाथ जोड़कर विदाई मांगी।

वह मुस्करा गई मैंने उसके गाल थपथपाकर विदाई ले ली। भीतर ही भीतर एक उपलब्धि पर मैं गर्व महसूस करने लगा।

श्यामी के घर गया तो ऐसा लगा कि एक मन्दिर में प्रवेश कर गया और उस मन्दिर की देवी की प्रतिमा है—श्यामी—गहन और गम्भीर।

उसके बाल भी पीठ पर पड़े थे और वह अपनी सहज मुद्रा में एक पुस्तक लिए अपने छोटे से बगीचे में घास पर कुर्सी पर पीठ लगाए पढ़ी जा रही थी।

—जल्दी आ गए आप, उसने अपने पतले ओठो पर मुस्कान बिखेर दी।

—मैंने उसकी आखो पर दृष्टि डाली, वे अभी नत थी।

—क्या पढ़ रही थी? मैंने बैठते ही पूछा।

—एक उपन्यास, उसने पुस्तक बन्द कर दी।

—कैसी पुस्तक है ?

—अच्छी है, और वह कुछ गम्भीर हो गई, शायद वह पुस्तक के किसी हिस्से पर किसी हद तक सोच रही थी।

फिर उसने कुछ गम्भीर होकर कहा—लेखक न मालूम किस तरह नारी के बारे में सोचते हैं।

—यह बात कैसे आई ? मैंने और जानने की कोशिश की।

वह बोली—इस उपन्यास का नायक नारी को एक खिलौना समझता है और उससे खेलता है जैसे कि नारी का अपना कोई व्यक्तित्व ही नही, यह कहा तक उचित है ?

मुझे श्यामी की इस बात ने कुछ सोचने को विवश कर दिया। मैंने कुछ क्षणों के अन्तराल से ही कहा—श्यामी, नारिया भी एक तरह की नहीं होती। हो सकता है, लेखक उन नारियो को ही लेकर चल रहा है जो केवल खिलौने ही है। फिर नारी भी तो प्रदेश, परिस्थितियों के साथ भी तो बदलती हैं। नारी का एक रूप ही तो नही होता। पुरुष हो या नारी, खेल इनके जीवन का एक अंग तो होता है। हो सकता है, आगे जाकर लेखक नारी की गहराई तक चला जाये, अभी उपन्यास पूरा तो नहीं हुआ।

—हा, पूरा तो नही हुआ।

श्यामी उसी मेज पर अपनी पुस्तकें उठा लाई। शाम की ढलती धूप सुहावनी लग रही थी।

मैंने पूछा—दिन में यही बैठकर पढती हो।

—धूप अच्छी लगती है।

उसने पुस्तक खोल ली।

मैं उसके चहरे को देखने लगा था।

—क्या देख रहे हैं, पहले से मैं सावली हो गई हूं न ? उसने मुझसे ऐसा प्रश्न पहली बार किया।

मेरे भीतर कुछ गुदगुदी-सी हुई।

—नही, मैं तो ऐसा नही सोचता, मैंने असहमति प्रकट की। शायद हर नारी अपने सौन्दर्य की सुरक्षा चाहती है।

उसने फिर अपने फिराक की बाह उल्टी,—यह देखिये, कितना अन्तर

है ? कपड़े के भीतर का रग तो और भी अधिक मनोहारी था। मैंने चाहा था, बाह और उघाड़कर उसके उठे हुए मास तक चली जाये तो सम्भवत. सौन्दर्य की पराकाष्ठा आ जाये, किन्तु श्यामी और मेरे बीच तो एक पारदर्शी परदा है जिसमें मुझे उसका सानिध्य ही सभव है। इससे एक और ही प्रकार का रस बूद-बूद करके मेरे भीतर टपकता जा रहा था और उससे शनै.-शनै. कुछ रेखायें एक तस्वीर बनाती जा रही थी और वह तस्वीर श्यामी के अतिरिक्त किसी और की नहीं हो सकती। श्यामी एकमात्र अनु-भूति थी जो मेरे मानस को हर पल सहलाती रहती जिसमे मैं आत्म-विभोर होकर डूबा रहता, जिसे जीवन का एकमात्र रस कहा जा सकता है, कुछ ऐसा-सा ही।

उसी दिन रात को कवर साहब ने मुझसे एक राय मागी—सम्पत्जी, आप मुझे एक राय दो।

—हुकम करो, मैंने कहा।

—मै इन्द्र की शादी करना चाहता हू।

—शादी इन्द्र की, अभी ? मैंने आश्चर्य व्यक्त किया।

आप समझे नही, वे बोले, आज मुझे सारी सरकारी सुविधायें मिल सकती है। मैं उसी शानशौकत से शादी कर सकता हू। कोटा मे ही मुझे एक सबंध मिल रहा है।

दरअसल, मेरी राय क्या मायने रख सकती थी, मैं तो इस पक्ष मे था ही नही कि इन्द्र की अभी शादी की जाये। वैसे उसकी उम्र कम तो नही थी, किन्तु शिक्षा को देखते हुए उसमे कहीं औचित्य नही था, किन्तु कंवर साहब बहुत दूर की सोचने वालो मे से थे। हा, इन्द्र का डीलडौल हल्का नही पड रहा था। मैंने भी अपनी स्वीकृति दे दी।

तभी से इन्द्र की शादी की तैयारी धूमधाम से चालू हो गई।

कवर साहब के डेरे के पास रिडमल सिंह की भी कोठी थी। वे उनके छुटभैया थे। वे सचिवालय में एक मेमी के पी० ए० थे। दरबार के साथ दो बार इगलैड भी हो आए थे। मैं कभी-कभी उनके यहां चला जाता। कवर साहब से उनकी अधिक नही बनती थी, क्योंकि कवर साहब प्राय: उनकी बुराई करते थे। राजकाज मे उनका पूरा हाथ होते हुए भी उन्होंने हमेशा

उनके परिवार को नुकसान ही पहुंचाया। छटभैया होने के कारण उनकी कौमी प्रतिष्ठा भी कम थी, किन्तु रिडमल सिंह ने नौकरी के द्वारा अपनी प्रतिष्ठा बनाई जो कवर साहब को अखरती थी। वे प्राय कहते—'यह रिडमल सिंह बड़ा घाघ आदमी है। अपने आप को बहुत कुछ समझता है।'

रिडमल सिंह के घर रेडियो था, इसलिए कभी-कभी रेडियो सुनने उनके यहा चला जाता। वे अपनी बड़ी तारीफ करते। विलायत की वहुत-सी बातें बताते। वे अपने रेडियो की भी तारीफ करते, वह बिलायती रेडियो था। उनके कमरे में वहुत-सी चीजें थी जो विलायती थी, उनके बारे मे एक-एक कर चर्चा करते। वे फिर अपने लड़के को दिखाते, उसकी होशियारी की भी बात बताते और फिर एक दो पक्ति मे उसकी तुलना इन्द्र से कर जाते। मूलरूप में रिडमल सिंह को जो चिढ थी वह कौमी थी। योग्यता मे रिडमल सिंह के सामने कवरसाहब शून्य थे, किन्तु बिरादरी की बैठक मे विजयसिंह का पद ऊचा था। यही बात रिडमल सिंह को अखरती थी, फिर इसी बात को लेकर रिडमल सिंह मानवीय सिद्धान्तो पर आ जाता, योरोपीय सस्कृति की तुलना करता और यहां के समाज की विकृतियो और विसगतियो पर आक्रोश की भाषा मे बोलने लगता। उस समय मुझे ऐसा लगता कि रिड़मल सिंह नही, मैं ही बोल रहा हूं। फिर भी मैं रिडमल सिंह के घर जाते हुए झिझकता था, कभी ऐसा न हो कि कवर साहब कभी अन्यथा लेले। मैं मन ही मन यही निर्णय लेता कि भारत की जातीय व्यवस्था कितनी ढोंगी और खोखली है।

इन्द्र कभी-कभी भागू को हँसने लगता—'मेरे विवाह मे एक गोली आयेगी, वह हम भागू को ब्याह देगे।'

'भागू मन ही मन मुस्कराता। उसकी मूछों के छोटे-छोटे बाल खड़े हो जाते, उसकी नासिका फूल जाती और उसकी मुहफाड़ और चौड़ी हो जाती।

एक दिन सावित्री ने मुझे वताया कि उनके एक रिश्तेदार और आ गए हैं। उनके भी एक लड़की है। उसे भी आप ही पढायेंगे।

—मुझे समय कहा है, सावित्री?

समय तो आप निकाल लेंगे, उसने सुझाया, आप सीधे कॉलेज से चलें,

फिर उनके यहा, एक घटा के बाद श्यामो के यहां और फिर अन्त मे मेरे यहा। उनके यहा एक लडका है और एक लड़की। पैसे भी ठीक मिलेंगे। वे एक होटल खोलेंगे। उनके पास भी अच्छा पैसा है।

मैंने कहा—तुम्हारे यहां वहुत देर हो जायेगी।

—कोई बात नही, मैं देर से ही पढ लूगी। रात को वैसे ही मुझे देर से नीद आती है।

—वात करेंगे।

—वात क्या करेंगे, वह बोली, वह दिन मे आई थी, मेरी मा से बात करके गई थी। बुलाऊ मा को?

मैंने कुछ सोचकर कह दिया—अच्छा बुला लो।

मैंने समय और शादी के निर्णय ले लिए।

मैं सावित्री के घर पहुचा, उस समय काफी बिलम्ब हो गया। सावित्री बिल्कुल तैयार बैठी थी। मैंने कहा—सावित्री, देरी हो गई है। तूने उलझन मे डाल दिया।

—आज आप उधर हो आए?

—हा, हो तो आया।

—कैसा रहा?

—ठीक है, भाई-बहन हैं। हिन्दी तो आती ही नही।

—अभी-अभी आए है, बेचारे।

—तभी तो।

—लडकी कैसी लगी यह, कितनी खूबसूरत है।

—सभी खूबसूरत है, मैंने ऐसे ही कहा।

—वह श्यामो से सुन्दर है।

—मैं तो तुम्हे भी खूबसूरत मानता हू।

सावित्री की आखे नत हो गईं।

—चलो, पढ लो, इन बातों मे क्या रखा है?

उसने पुस्तक निकाल ली।

घर जाने पर भागू मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे उस पर तरस आई। मैंने भागू से कहा—'भागू, यार, यह तो ठीक नही रहा। अभी-अभी

घंटाघर ने नौ बजाए हैं इस वक्त तक तू इन्तजार करता रहेगा ?

—हां, हां, सम्पत् जी, मैं तो ग्यारह बजे तक काम करता ही रहता हूं। अभी रोटी ले आता हूं।

रोटियां ठंडी हो गई थी। खाने मे मजा नही आया। मैंने किसी प्रकार खा-पी कर पेट भर लिया। रोजाना ऐसे ही ठंडा खाना मिलेगा, यह सोचकर कुछ चिन्ता हुई, लेकिन कोई विशेष ध्यान नही दिया। मुझे कुछ पैसो का मोह हो गया था, छोटी-छोटी इच्छायें मेरे भीतर पलने लगी थी, क्योंकि मैं अब भी अधूरा शहरी था अभी-अभी एक इच्छा और अंकुरित हुई। मैं पराई घड़ियों से चलता था, काम करता था। दूर का घंटाघर मुझे जगाता है, सुलाता है, श्यामी और सावित्री की घडियां मुझसे पढ़वाती हैं। चलते रास्ते मे मुझे पूछना पड़ता है—'क्या बजा है ?' मेरी छोटी कलाई पर कौन-सी घड़ी फबेगी ? मैं लोगों की कलाइयां और घड़ियां देखने लगा था श्यामी की कलाई पर एक छोटी-सी घड़ी थी। मैंने पूछ लिया—'श्यामी, इस घडी के कितने रुपये लगे ?' जब उसने यह कहा—'भाई साहब से पूछूंगी, शायद दो सौ लगे थे, बम्बई से आई थी।' मैं चुप हो गया। पचास साठ में शायद घड़ी आती ही नहीं होगी। सौ रुपये मे आ जाए, तो भी कुछ जोड़-तोड़ सम्भव था, खैर! उन दिनो मेरा ध्यान उसी पर टिका था। मैं उन दिनों आदमी के पूरे स्वरूप की उपेक्षा कर केवल उसकी कलाई की ओर देखता था, कलाई पर भी उसकी घड़ी की ओर। यदि किसी के घड़ी नही होती, मैं उसे भी अपनी तरह अधूरे शहरी की संज्ञा दे जाता।

कुन्दन का पत्र बहुत दिनो से आया। मेरे ध्यान से करीब करीब यह उतरता जा रहा था कि मेरे मां, बाप भी हैं, एक भाई है—कुन्दन, आवारा कुन्दन, एक बहन—भगनी, भोली भगनी। मां भी ध्यान से उतर गई थी—अच्छी, बहुत अच्छी मां, पिता उदास और कर्मठ पिता इसलिए कुन्दन ने लिखा—बहुत दिनों से तुम्हारा पत्र नहीं आया, मां बहुत चिन्ता करती है। क्या बात हो गई ? फिर उसने एक बात और लिखी—गांव मे सड़क आ रही है और उस सडक पर काम करने जा रहा हू। मुझे मजदूरो की हाजरी लगाने का काम सौंपा है। साठ रुपये मिलते हैं। मैंने एक

महीने के साठ रुपये पिताजी को लाकर दे दिए। फिर उसने अपनी कुश्ती का वर्णन किया। उसने गाव के चार जवानों के नाम बताये, उसने उन्हें पछाड कर मारा। कुन्दन ने बडी खुशी से पत्र लिखा था। फिर उसने मा का उपालम्भ दोहराया कि मेरे पत्र के न पहुचने से बड़ी चिन्ता करती है।

मुझे तुरन्त मा याद आ गई, जैसे वह कतई सामने खड़ी है, उसके मैले पुराने कपड, उसकी भुकी हुई कमर, उसके काम करते हुए हाथ।

मुझे कुन्दन की स्थिति से सतुष्टि मिली। चलो, कुछ तो कर रहा है वह। दिन में एक पोस्ट-कार्ड लिया और लिख दिया—कुन्दन, तुम ठीक काम कर रहे हो। तुम मेरे से भाग्यशाली हो कि मा, बाप की सेवा तो कर रहे हो। पिताजी को कभी नाराज मत करना। वे अब काम करने लायक नहीं रहे। फिर भी हम सबके लिए काम कर रहे हैं। मा को प्रणाम कहना। मेरी परीक्षाये निकट आ रही है। काम ठीक चल रहा है। मगनी को स्नेह स्मरण। सभी बड़ों को प्रणाम।

पत्र बाहर लेटरबक्स में डाल कर सीढ़ियों के सहारे ऊपर राधा के घर में प्रवेश कर गया। राधा कुर्सी पर बैठी थी, मैंने भी पास मे पडी कुर्सी ले ली, फिर कमल भी आ गया। दोनों ने पढ़ने के लिए पुस्तक खोली। तभी उनकी मां मेरे लिए चाय ले आई। राधा की मां छरहरे बदन की औरत है, हर समय रगीन ढीला पाजामा पहनती है, ऊपर ढीला लम्बा कुरता। उसका रंग साफ गोरा है बडी आखें है और तीखी नाक। उसकी अवस्था उसके पति से काफी कम लगती थी। सावित्री ने इस गुत्थी को पहले ही सुलझा दिया था कि वह उनकी दूसरी पत्नी है। तभी उसका स्थूल पति उसके सामने भद्दा लगता था। चाय पीते समय राधा की मा का चेहरा एक बार फिर देख गया और फिर मैंने राधा की तरफ देखा। कितना साम्य था। राधा अभी छोटी थी, उसे अभी चुन्नी तक रखने की नौबत नहीं आई थी।

दोनों अभी हिन्दी पढ़ते थे। राधा और कमल का अभी मुकाबला चल रहा था। कभी-कभी वे आपस मे लड लेते थे। वहीं उनकी छीना-झपटी हो जाती। मैं राधा का पक्ष ले लेता, कभी कमल के पक्ष में उसकी मा आकर खड़ी हो जाती। मा सिन्धीमय हिन्दी बोलती थी। तब राधा उसे ही

चिढ़ाने लग जाती—'तुझे हिन्दी तो आती ही नही।' तब वह मुस्कराकर वहा से चली जाती। एक दिन बड़ी अजीब घटना हुई। रविवार को सुबह सुबह ही मै राधा के घर चला गया। रोजाना की तरह ही मैंने प्रवेश किया। खुले नल के नीचे आगन मे राधा की मा स्नान कर रही थी। वह अपने नगे जिस्म को हाथों से मसल रही थी। मैं शर्म से वापिस मुड गया। उस क्षण मे सब कुछ देख गया था। मैं अपनी लाचारी पर स्वय लज्जित हुआ, किन्तु जब मैं भीतर गया, उस समय राधा चिड़चिड़ा रही थी–'अरे मा को मास्टरजी नगी देख गए।' वह शायद ऐसा कह रही थी—'चुप, तेरे पिताजी को मत कहना।' कमल कुछ ऐसे कहते सुनाई दे रहा था—'तू नगी होकर स्नान क्यो करती है?'

—क्या हो गया, मास्टरजी तो हैं ही, शायद वह कुछ ऐसा ही कह रही थी।

आओ, भई, मैंने यह कहकर उन्हें आवाज दी।

राधा और कमल दोनों आकर बैठ गए। वे मेरे पास आकर बैठ गए। अपनी पुस्तकें खोलकर पढने लगे। उनकी मा अब बाहर नही निकली। वह शायद कपडे पहन रही होगी फिर बालो को कधा किया होगा। मैं अभी तक पढाने में व्यस्त था। पता नही, मेरी आंखें उसी दरवाजे पर क्यो टिकी थी जहा से उनकी मां को निकलना था। अभी तक उसका नगा रूप मेरी आखो में समाया हुआ था, औरत का नंगा रूप उसका मूल रूप। वह मा तो थी, लेकिन अभी उसने यौवन खोया नही था। एक दिन श्यामी ने अपने कपडे से एक इच आवरण दूर कर अपने गोरेपन का प्रदर्शन किया था आज राधा की मा ने समूचे रूप का प्रदर्शन कर दिया। शायद एक अनावृत रूप एक नयापन था। इसलिए सुन्दर था। यदि इसी रूप मे सभी नारिया सदैव की घूमती फिरती, तो सम्भवत यह सबसे भद्दा रूप होगा।

हलके-हलके काले बादल आकाश मे मडरा रहे थे। श्यामी के हा[illegible] उठकर मैं सीधा सावित्री के यहा जा पहुचा। बादलों ने उमड़ घुमड छोटी बूदें फेंकनी शुरू कर दी। बाहर अधेरा और गहरा [illegible] सावि[illegible] ने कहा—'बरसात [illegible]ा रही है।' उसे दरवाजे से बाहर [illegible] बूदें भीतर तक प्रवेश करनी शुरू कर हो गईं। एक

आकर हमें भी छू गई। उसने उठकर दरवाजा बन्द कर दिया। हम दोनो का ध्यान उखड गया। रोशनदानो से प्रकृति विकृत रूप स्पष्ट होता जा रहा था। दूर वृक्षों के माध्यम से उसकी विकरालता प्रकट हो रही थी—सूं-सू की एक भयकर आवाज। सामने घडी पर नजर फेंकी, रात नौ बजने को थे। मैंने मन ही मन सोचा—अब कैसे जा सकूगा ?' सावित्री ने कुछ पढने की व्यर्थ चेष्टा की तभी ट्यूब की रोशनी गायब हो गई, एक घुप अंधेरा कमरे में उमड आया। मै कुछ भी नही देख पा रहा था। बाहर का तूफान बढता जा रहा था, भयानक आवाजें आ रही थीं, जिनसे डर लग सकता था। मैंने धीरे से सावित्री को टटोला। मेज पर उसका हाथ था, मैंने अपना हाथ भी उसी के ऊपर रख दिया। मेरे हाथ उसके सहारे पर आगे चल पड़े। मैंने समूची सावित्री को टटोल लिया। हम दो से एक हो गए, हृदय से हृदय जुडकर, ओठो से ओठ चिपका कर। गहरा अंधेरा अब डरावना नही, मीठा, बहुत मीठा लगने लगा। मेरी अगुलियों ने सावित्री की उन गाठों को टटोल लिया जो उसके नारीत्व को बांधे हुए थीं। उसका एक हाथ मेरे पुरुषत्व को खोज रहा था। सावित्री उस रूप मे सर्व सुन्दरी थी, मैंने उस रूप को चूम लिया। इस अंधेरे मे सावित्री एक नगी मोमबत्ती-सी लगती थी जो मेरे भीतर तक प्रकाश फेंक रही थी। मैंने अनुभव किया कि यह सावित्री नही, जीवन का एक मात्र आनन्द मेरे शरीर से चिपका हुआ है, यही एकमात्र रस है जो मेरे शरीर के हर रोम से प्रवेश करता जा रहा है। मुझे एहसास हुआ कि इस समय दोनों शरीर इस प्रकार जुड़ गए हैं कि उन्हें अलग नही किया जा सकता और दोनो शरीर अधिक जुड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। तभी कुछ ऐसा हुआ कि भीतर की आधी एकदम ठहर गई और बादल बिखर गए। तभी ट्यूब से बिजली ने आकर सावित्री को मेरे से अलग खड़ा कर दिया।

क्या कर दिया आपने ? सावित्री ने एकदम अपने आप को सम्भालते हुए कहा।

मुझे भी उस समय शर्मिन्दगी महसूस हो रही थी। हमने अपनी नग्नता को प्रकाश में तुरन्त छिपाने का प्रयास किया जैसे कि हमने कोई भूल कर दी। बाहर का तूफान ठडा पड़ गया और मैंने बाहर निकलने मे बिलम्ब

नही किया।

आगे जाकर मैंने अपनी ढकी रोटियां सम्भाली। खाना बर्फ की तरह ठंडा पड़ा था। रोटियां चमड़े के से सख्त टुकड़े बन गए थे। दाल मे कोई दम नहीं था। खाना मुझे खाने को आ रहा था। कुछ टुकड़े दांतों के नीचे दबाने लगा और निगलने की कोशिश की लेकिन कुछ अच्छा नही लगा। बाहर अब भी तीखी हवा चल रही थी, इच्छा तो हुई थी कि बाजार जा कर कुछ खा-पी आऊं, किन्तु बाहर के वातावरण से वह इच्छा दब ही गई। मैंने फिर कपड़े ओढ़कर नींद का स्वागत करना ही उचित समझा खाने के बारे मे असन्तोष को मन ही मन घोलता रहा। मुझे इस घर के खाने से ही वितृष्णा हो गई थी। सुबह एक ही प्रकार की सब्जी आ रही थी–यानी सूखी हुई की ककड़ी की सब्जी-'खेलरी' और शाम को एक ही दाल—मोठ की दाल। ऐसा लगने लगा था कि शरीर कुछ निर्बल होता जा रहा था। मुझे फिर होस्टल की रोटियां याद आने लगी। लेकिन इन्हें जवाब भी कैसे दूं, कंवर साहब अपने मन की बात मेरे मन से जोड कर करते थे। मैं कुछ देर तक असमंजस में पडा पडा सोचता रहा और फिर नींद आ गई थी। सुबह उठते ही मैं बाजार गया और दूध पीकर आ गया। मां ने ऐसा ही निर्देश दिया था।

इन्द्र के विवाह की तैयारियां शुरू हो गई। कंवर साहब बहुत व्यस्त रहते थे। वे कह रहे थे कि मैं किसी प्रकार की कसर नहीं रखूंगा। बारात में मुझे भी जाना था। दिन निकट आते गए। तीन दिन बारात चढने के बीच मे रहे, तब उन्होंने मुझे बुलाया—'सम्पत् जी, एक काम बाकी रह गया और वह आप ही को करना है।'

—हुकुम करो, तैयार हु, मैंने आश्वासन दिया।

यहा तो हाथी अपने को मिलेगा ही, किन्तु कोटा नही मिलेगा उन्होंने बताया, लेकिन मैंने इन्तजाम कर ही लिया, कोटा दरबार यहा आए थे, मैं उनसे मिला था, उन्होंने मौखिक स्वीकृति दे दी है लेकिन वहां जाकर लिखित स्वीकृति के लिए आपको जाना होगा। आप आज ही शाम को चढ़ जायें।

मैं खुशी-खुशी तैयार हो गया।

उन्होने कोटा मे दरबार के एक ए. डी. सी. का पता मुझे दिया था। मैं उन्ही के यहा पहुचा। वे उन्ही के रिश्तेदार थे। मेरी अच्छी आवभगत हुई। वहा खाने-पीने की कोई कसर नही थी, मुझे बड़ी सतुष्टि मिली। दरबार से तो केवल दो मिनट का ही काम था। सचिवालय मे गया, कवर साहब का प्रसग दिया और आवेदन-पत्र रखकर स्वीकृति ले ली। इन्द्र के श्वसुर भी वहीं आ गए थे। मैंने वह स्वीकृति पत्र इन्द्र के श्वसुर को ही दे दिया था मैं दो दिन में ही इस शहर के नयेपन से ऊब गया था और वापिस रवाना हो गया। मुझे अपना शहर खीच कर ले आया। मुझे सभी कुछ याद आया विशेषकर श्यामी और सावित्री। उनसे दो दिन की छुट्टी मागकर गया था। मैं बारात मे जानबूझ कर शामिल नही हुआ। पता नहीं, इन बड़ो से मुझे मन ही मन नफरत क्यों थी, कहा सभी बड़े-बड़े थे, उनमें अपना अस्तित्व छिपा देखकर मुझे मन ही मन घबराहट होती थी। इनका समूह मुझ मे एक अजीब किस्म की नफरत पैदा करता था जैसे शहर के कूड़े से भागता हू।

वापिस आया, उस समय केवल भागू ही घर था। बाहर का सभी कुछ सूना था, वह सूनापन मुझे प्यारा लगा। उसमें भागू का सहवास और भी अच्छा लगा। अब भागू से मन की बात करने का अवसर मिला। ऐसा लगा जैसे उसकी बातो मे कवर साहब की बातों से भी अधिक मिठास था। कवर साहब की बातो मे फिर भी कुछ घुटन थी लेकिन भागू की बातों मे वही झिझक नही, भीगा हुआ नशा था। भागू मेरे आने पर मुझे बैठा मिलता था। हम दोनो पास-पास बैठ जाते और बाते करते रहते। भागू ने मुझे बतलाया—'हम दोनों के लिए एक-सा खाना बनता है और घर के लिए अलग।

वह भी उस सब्जी से चिढ़ा हुआ था जो सुबह खाने को मिलती थी। शाम की दाल उसे भी पसन्द नही थी।

उसने बतलाया—'मैं भी इस जगह को छोड़ना चाहता हूं, रिड़मल सिंह कहते हैं कि तू हमारे यहा आ जा, लेकिन मैं इन्हे छोड़कर वहा जाना नहीं चाहता।

—क्यों ? मैंने पूछा।

—यह इसलिए कि पास में ठीक नहीं रहता।

—यह तो ठीक किया, मैंने समर्थन दिया, लेकिन ये कहते हैं कि तेरी शादी कर देंगे।

—यह तो इन्तजार कर रहा हूं, कवरसाहब और वह हँसने लगा।

वह मुझे भी कवरसाहब कहता था 'कवरसाहब' कहना राजपूत जाति में एक प्रथा है, जिसका पिता जिन्दा होता है, उसे सभी कवरसाहब कहते हैं।

मैंने उसे मजाक में पूछा—तूने कभी औरत का स्वाद चखा है क्या?

दो युवक एकान्त में घनी देर तक मिलते हैं, तब यह विषय बड़ा रोचक बनता है।

—नहीं कवर साहब, और वह फिर हँसने लगा।

—सच बताओ, यार तुम भी जवान हो।

वह फिर हसने लगा। उसकी छोटी मूछों के नीचे दांत साफ दिखाई देते थे।

मैंने फिर उसे बताने को प्रेरित किया।

उसने कहा—सिर्फ, एक बार।

—कहां? मुझे उत्सुकता हुई।

—रिडमल सिंह के यहां एक औरत रहती थी। वे कहीं से खरीद कर लाये थे।

—औरत खरीद कर? मैंने आश्चर्य प्रकट किया।

—हां, हां उसे ये 'गोली' बनाना चाहते थे।

—अच्छा? कमाल है। औरत खरीदी भी जाती है।

—हां, हां, कवर साहब, आपको मालूम नहीं क्या?

—नहीं तो, खैर! आगे बताओ।

वह फिर हँसने लगा। शायद उस घटना को छिपा कर रखना चाहता था।

—बताओ, भागू।

—क्या बताऊं, उसने हँसते हुए कहा, 'थी तो स्याली कालो-कलूटी, लेकिन उस समय मुझे अच्छी लगी थी। रात को मेरे साथ आ जाया

करती थी।

—दिन मे तुमने उसे कहा होगा, मैंने पूरी जानकारी लेने की कोशिश की।

—दिन मे वह मेरी तरफ देखकर हँसती थी, वह कुछ गम्भीर हो गया।

—हाँ, तभी तो।

—मैंने उसे एक दिन इनके घर मे ही भीच दिया, उसके गाल खीच लिए।

फिर मे जोर से हँस दिया। वह भी जोर से हँस पड़ा।

वाह, भाई, भागू तो तुम जानते हो। तब तो यार, तुम औरत को जानते हो।

मुझे अनुभव हुआ कि भागू भी मेरी नाव में बैठ चुका है।

फिर मैंने कहा—भागू, कवर साहब की शादी में 'गोली' तो जरूर आयेगी।

उसके दिल में गुदगुदी-सी हुई। वह फिर हँस दिया।

उस हँसी के बाद ही मैं अपने कमरे में अकेला हो गया।

दो दिन बाद इन्द्र की बरात लौट आई। उसी रात को उसके डेरे में एक महफिल जमी। इसमें दो नर्तकियां भी आई। उनके गायन के साथ-साथ शराब के दौर भी चले। कवर साहब शराब में खूब झूम रहे थे। कुछ और भी राजपूत सरदार थे जो उनके साथ शराब के दौर चला रहे थे। मस्ती मे सभी कुछ के कुछ करते जा रहे थे। नर्तकिया भी शराब में शामिल थी। वे झूम-झूम कर गा रही थी। सभी उनकी ओर देख-देख मनमाने बोल बोल रहे थे। मैं दूर खड़ा इन्हे देख रहा था। मैंने देखा—दोनों नर्तकिया बहुत खूबसूरत थी। उनमे से एक पतली थी और एक कुछ मोटी। दोनों का रग बहुत गोरा था, शायद उन्होंने जरूरत से ज्यादा पाउडर और लिपस्टिक का प्रयोग किया था। उनकी पोशाक देशी थी—घाघरा और ओढना। ओढना बहुत महीन था। कुछ देर बाद पतली नर्तकी ने नाचना शुरू किया। उसकी घघरी कुछ ऊंची उठ जाती और उसकी गोरी पिंडलिया दिखाई दे जाती।

इन्द्र उस दिन भी अपने कमरे मे नहीं सोया। खाना भी विशेष बना

था, मैंने भी बड़ी रुचि से भोजन किया। मैं सोने जा रहा था, किन्तु उस समय भी महफिल चल रही थी।

दूसरे दिन भागू ने मुझे बताया—कंवर साहब, वह आ तो गई।

—अरे, कैसी है, यार।

—बहुत खूबसूरत है, कंवर साहब।

—तब तो मजे हैं, यार।

वह इन दिनों खुशी-खुशी काम में लगा रहता था।

परीक्षायें अति निकट आने लगी थीं और मैं एकजुट होकर पुस्तकों में लीन हो गया। श्यामो और सावित्री भी परीक्षाओं में लीन थीं और इन्द्र भी।

परीक्षा-परिणाम सभी के पक्ष में निकले। मेरे अंक देखकर मुझे तो असन्तोष हुआ ही, मेरे अध्यापकों ने भी आपत्ति की।

छुट्टियां समाप्त होते ही मैं फिर कंवर साहब के डेरे में आ गया। पहले पहल कंवर साहब से मिला। उनके पास ढेर-सी बातें थीं, इन्द्र के लिए नये सिरे से निर्देश जिन्हें कंवर साहब ने डेढ़ महीने से बटोर लिए थे। ये निर्देश कुछ तो कंवर साहब ने स्वयं गढ़े थे, कुछ कंवराणी-सा की ओर से दिए हुए थे। कंवर साहब ने उन्हें अपनी ही शैली में एकत्रित कर लिये थे। इन्द्र की बहू भी यहीं थी इसलिए ये निर्देश महत्वपूर्ण थे।

कंवरसाहब ने बताया—इन्द्र अपनी बहू के पास बहुत रहता है। दिन भर चौबारे में उसी के पास बैठा रहता है। आप उसे समझायें कि उसके पास अधिक न रहा करे।

—मैं कहूंगा।

ऐसा है सम्पत् जी, वे फिर बोले, वह तो बच्चा है, समझता नहीं। इन्द्र को पढ़ाई करनी है, पढ़ाई में औरत का मोह अच्छा नहीं रहता। इससे पढ़ाई से मोह टूटता है। उसे इस बार दसवीं का इम्तिहान देना है। वह फिर पढ़ेगा कैसे? आप उसे समझायें।

—मैं समझाऊंगा।

—नहीं, एक बात और है, कंवरसाहब ने धीरे से कहा, औरत के सीने

गर्मी होती है और आदमी के भीतर उसके सीने से भीतर चली जाती है और उसमें कई बीमारियां पैदा कर सकती है। इन्द्र तो वैसे ही कमजोर-सा है। यह इन्द्र के लिए अच्छा नहीं रहेगा। मैं यह बात तो उसे कैसे समझाऊं। इन्द्र की मां भी नहीं समझा सकती। आप उसके साथी हैं, आप उसे ये बातें बतायें।

—मैं बताऊंगा।

—सुनो, एक बात और। औरत के पास बैठे रहने से आदमी की ताकत धीरे-धीरे निकलती रहती है। इस उम्र में ही ताकत निकलने लग जाये तो फिर आदमी कमजोर होता जाता है। कमजोर आदमी को बीमारी फौरन दबोच लेती है। मैं उसे कैसे बताऊं, वह बेवकूफ हरदम उसके पास ही पड़ा रहता है। कम से कम आप यह तो कहो, अरे भले आदमी, बहुत दिन पड़े हैं, अभी क्या है। लेकिन वह तो जब देखो, ऊपर। सुबह, शाम, दोपहर, टाइम का ख्याल ही नहीं। आप उसे शिक्षा दें, सम्पत् जी, यह अच्छा नहीं होता। अपनी पुस्तक में मन लगाए। यह कहीं जा थोड़ी रही है, क्यों सम्पत् जी, ठीक है न।

ठीक है, कंवरसाहब, मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं इन्द्र को ठीक मार्ग दे सकूंगा।

मैं कंवर साहब से हटकर अपने कमरे में तो आया तो ऐसा लगा कि ये सभी बातें कंवरसाहब मुझे ही कह रहे थे। दरअसल, औरत के जिस्म में गर्मी होती है, आग में जलता हुआ लाल तवा, जो केवल दिखने में सुन्दर होता है लेकिन आदमी के जिस्म से शनैः-शनैः रक्त खींचता रहता है। उसकी सांस में ही जलाने वाली आग होती है जो आदमी के शरीर पर हर क्षण गिरती रहती है। आदमी केवल एक मोम की बत्ती है, जो पल पल पिघलती रहती है। कंवरसाहब बिल्कुल सही कहते हैं। मां ने मुझे कहा भी था—'बेटा, तू कमजोर बहुत हो गया है।'

मैंने क्या कहा था मां से। यह कहा था—'रोटी ठीक नहीं मिलती, मैं वह जगह बदल लूंगा।'

मां ने फिर अपने हाथ से बटोरा हुआ घी मुझे खिलाया था। मैं अब ठीक हुआ हूं। लगता है, मां का भरा हुआ घी भी तो पिघलने वाला घी है।

मैं जल्दी ही आग के पास बैठने वाला हूं और वह दो सेर घी कुछ ही दिनो मे पिघल कर साफ हो जायेगा। अब मुझे सावित्री से घृणा होने लगी थी। उसके शरीर की महक जहर-सी लगने लगी जो अब तक भारी मात्रा में मेरे शरीर मे प्रवेश पा चुकी थी। कवर साहब ठीक ही कहते है कि औरत की छाती मे गर्मी होती है और सचमुच सावित्री की छाती उसके शरीर से न मालूम कितनी बार चिपकी थी। उसे वह गुदगुदी लगी थी, अच्छी लगी थी, आकर्षक लगी थी। अपनी ओर खीचती गई थी। मैंने कितनी ही बार उसे शरीर से चिपकाया था। मैने समझा था कि बस, जिन्दगी के आनन्द के एकमात्र ये स्रोत है। गह, उसी से मेरा सीना चिपकता गया। उसकी सासें, मैंने सोचा, मेरे भीतर रस का सागर उडेल रही हैं, किन्तु वही मेरे भीतर का दम खीचकर ले गई। सचमुच, कंवर साहब का उपदेश केवल मेरे लिए था।

मैं इन्द्र को समझाने का अवसर ढूढने लगा। सुबह वह अपनी पुस्तकें लेकर बैठ जाता और मैं भी। उसके शरीर मे हलकी-सी चपलता आ गई थी जो शादी के बाद आ जाया करती है, शरीर कुछ उभरा हुआ था, फिर कंवर साहब को अचानक चिन्ता कैसे हो गई, राम जाने। यह सारा परिवर्तन शादी के बाद ही हुआ, शादी के कारण ही हुआ या यो कहूं कि नारी के सपर्क से। फिर तो कवर साहब का अपनी ओर से इकतरफा निर्णय था। उसके बाद तो इन्द्र इतना बदल गया कि मैं अपने आप को उनके सामने बौना-सा महसूस करने लगा। यह शायद इसलिए हुआ था कि उसने अपने साथ एक अनुभव और जोड लिया था जिसके सम्बन्ध मे मैं कतई शून्य था। कुछ दिनो तो मैं ऐसा अवसर ढूंढने लगा कि मैं कवर साहब का उपदेश उस तक प्रेषित कर रहा हू, किन्तु स्थिति ऐसी बनी जा रही थी कि मे उसके लिए साहस ही नही जुटा सका।

इन्द्र और भागू आपस मे मजाक करते और मैं उनके मुह की ओर देखता रहता। इन्द्र भागू से उस 'गोली' के प्रसंग को लेकर मजाक करता। उसका नाम चिमनी था। इन्द्र रात का भीतर चला जाता और फिर भागू भी अकेला पड़ जाता। वह मेरे पास आ जाता। उसने एक दिन मुझसे कहा—'कवर साहब, आपको चिमनी दिखा दू।'

मैंने कहा—'दिखा तो।' मेरे हृदय मे उसे देखने की इच्छा जागृत हो गई।

उसने बताया—'वह कवर साहब को खाना खिलाने आयेगी, आप इस झरोखे से देख लेना।

मेरे और कवर साहब के बीच में एक सुराख था।

मैंने चिमनी को देखा। मुझे आश्चर्य हुआ कि इस परिवार मे इतनी खूबसूरत कहा से आ गई। शायद विधाता ने इसे फुरसत मे गढा है। ऐसा लगा था कि अजन्ता की कलाकृति मूर्त्त रूप बनकर चल पडी।

मैं एकटक उसकी ओर देखता रहा। कुछ देर बाद भागू आया। मैंने कहा—यार, गजब है, तेरी चिमनी मैंने देखली। इतनी खूबसूरत लडकी मैंने आज तक नही देखी। तेरा भाग्य ही जाग गया।

भागू ने धीमे से एक बात कही—कवर साहब, एक बात कहूं।

—क्या?

—चिमनी इन्द्र की बहू से सुन्दर है। इन्द्र का मन भी इस पर चल रहा है। लेकिन कवराणी-सा बहुत ध्यान रखती है।

—अच्छा, मैंने विस्मय प्रकट किया।

—एक बात और बताऊ।

उसने अगुली से कवर साहब की ओर इशारा किया—इसका भी मन इस पर है। तभी तो रोटी इससे मगवाते है। कवराणी-सा आज तक चिमनी से चिढती हैं। कहती हैं—इसको यहा से टिपा दूगी।

—तेरे वाली बात, मैंने पूछा।

—वह तो पक्की है, वह फिर हँस पडा।

गर्मी की झुलसने वाली लूओं से बचने के लिये श्यामी ने सभी खिड-कियां बन्द कर ली थी। ऊपर का पखा भी गरम सास ले रहा था। बाहर से आते ही कुछ देर तो वह बहुत ठडा लगा था, किन्तु फिर उसकी तासीर महसूस हुई।

श्यामी ने कहा—बहुत गर्मी पड़ती है यहा तो।

—यह राजस्थान है न, मैंने कहा, गर्मी यहा नही पडेगी तो कहा पड़ेगी?

—रात को भी चैन नहीं मिलता।

—इन दिनों तो आधी रात के बाद ही ठंडक मिलेगी।

—हां, है तो ऐसा ही, सुबह बड़ी मादक होती है. उस समय ही चैन की नींद आती है।

श्यामी ने अपनी पुस्तक खोल ली।

नौकरानी दो कप चाय ले आई। मैंने कहा— इस गर्मी में चाय।

—हां, आदत-सी पड़ गई। वह बोली—पीजिए न।

श्यामी ने कप ओठों से लगा लिया। उसके पतले लाल ओंठ चाय को खींचने लगे।

मैंने भी कप उठा लिया।

मुझे चाय बहुत गरम लगी। मैं बड़ी कठिनाई से उसे गले उतार रहा था। श्यामी तब तक पूरा कप खींच गई थी। उसने मेरा कप देखने के लिए दोनों पलकें उठाईं जैसे दो तितलियों ने एक साथ अपने पंख खोले और बन्द कर लिए। फिर वह मुस्कराई, जैसे निर्मल जल में लाल फूल चटक कर खिल गया।

—और लेंगे, उसने पूछा।

यह भी मुश्किल से भीतर जा रही है, मैं चाय पर अब भी फूंक मार रहा था।

—आप आदी नहीं हैं न।

—तभी तो यह हाल है।

वह फुरसत में थी। उसने व्यवस्थित होने की चेष्टा की। उसकी कुर्सी हिली, उसके साथ उसके शरीर में कुछ हलचल हुई, गोलाइयां भी कुछ हिलीं, श्यामी अब और उभर आई थी।

मैंने वैसे ही बात करने के लिए बात की, ताकि अन्तराल सूना-सूना-सा न लगे—आजकल उपन्यास नहीं पढ़ती हो।

—आप लाकर भी नहीं देते, उसका उपालम्भ आया।

—कल लाकर दूंगा, यह कह कर मैंने खाली प्याला नीचे रख दिया।

श्यामी की पुस्तक फिर खुल गई।

पढ़ाई के बीच में मैंने श्यामी से पूछा—'मैंने सुना है कि . .

भाभी आने वाली है।

—हां, हरीश भैया की शादी हो रही है न।

—*फिर तुम अकेली तो नहीं रहोगी।*

—हां, फिर ठीक हो जाएगा, श्यामी के चहरे पर हर्ष से लालिमा आ गई।

सावित्री इन दिनों कुछ भुरभुरी-सी लगने लगी थी। चेहरे पर फुंसियां आ बैठी थीं जिससे उसका चेहरा खुरदरा होने लगा। उसे अब चेहरे से झुंझलाहट होने लगी थी और वह हरदम अपनी अंगुलियां चेहरे पर ही रखने लगी थी। मैं कह देता —लो, यह काम मैं कर दूं और तुम पढ लो।

उसके और मेरे बीच मे सकोच की सभी कड़ियां टूटी हुई थी। वह अब नाराजगी शब्दों का प्रयोग अधिक करने लगी। अब तक जो खिंचाव था, अब भी धीरे-धीरे ढीला पड़ता जा रहा था। यह क्यों होता जा रहा था, पता नहीं। उसका मन भी अब चिड़चिड़ा होता जा रहा था। वह हर बात पर श्यामी को बीच में लेकर व्यर्थ मे मेरे से झगड़ा कर बैठती और मेरे पर निराधार लांछन फेंकती रहती। मैंने उसे बार-बार विश्वास दिलाया—मेरा उसका संबध केवल अध्यापन का है, किन्तु उसे मेरे पर विश्वास नहीं था। थोड़ा से विलम्ब होते ही वह कह बैठी—'आप देरी से क्यों आए ?'

—हो गई देरी, ठीक कहता हूं।

—क्या कर रहे थे वहां, पढाना ही तो है।

—पढाकर ही तो आया हूं, मैं कहता।

—फिर इतनी देरी कैसे हो गई ?

—तू पागल है, सचमुच,

—मैं तो पागल ही हूं, जो…

—यानी तेरा मतलब क्या है ?

—कुछ नहीं, काम करना है, काम कीजिए।

कभी उसके गाल फूल जाते, कभी ओंठ फड़फड़ाने लगाते, कभी आंखें आंसू भर लेती।

जब कभी अवसर मिलता, मैं उसके ओठों को चूमकर उसे 'नॉरमल'

करने का प्रयत्न करना । वह हँस देती, तभी वहा से चलता ।

अब सावित्री का नारीरूप मेरे लिए समस्या बनने लग गया था । ऐसा लगने लगा था कि मैं इर्द-गिर्द कटीले तारो मे उलझ गया हूं । एक काटा निकालता, दूसरा चुभ जाता । चारो ओर काटे से लगने लगे थे, हाथ से निकालू तो हाथ मे चुभ जाते, दातों से पकड़ू तो ओठो मे चुभ जाते । एक उलझन थी—जो सुलझ नही रही थी । लगता था इस नाटक का कहीं भेद खुल गया तो मुह काला हो जायेगा । सारा भण्डाफोड़ होने पर कही पैर रखने को धरती नही मिलेगी ।

राधा और कमल अब स्कूल मे प्रवेश लेने में समर्थ हो गए थे । मैं उन्हे स्कूल मे ले गया और प्रवेश दिलवा दिया । थोड़े से अर्से में हिन्दी की प्रगति पर अध्यापकों ने छात्रो की प्रशसा की । अब वे स्कूल के नियमित छात्र हो गए । इस खुशी में राधा की मा ने मुझे जलपान कराया । इसमे चाय और मिष्ठान था । वह बहुत खुश नज़र आ रही थी । उसके ओठो पर हल्का-सा लिपिस्टिक और पाउडर सुहावना लगता था । वह अपनी टूटी-फूटी हिन्दी बोलती थी जो बहुत प्यारी लगती थी । उसने अपनी आकाक्षा प्रकट की—'मुझे भी आप हिन्दी सिखा दो ।' दरअसल उसकी हिन्दी पर राधा और कमल दोनो ही हँसते । उसने यह भी कहा—'मुझे सिन्धी आती है और मैं सिन्धी मे आठ पास हू ।'

मैंने उसे आश्वासन दिया—'आप बहुत जल्दी हिन्दी सीख लोगी, मैं रोज अक्षर डाल दिया करूगा ।'

दूसरे दिन राधा की मा ने भी पढाई शुरू कर दी । वह कभी मेरे पास नही बैठती थी, उसका पाठ पाच-सात मिनट मे ही समाप्त हो जाता । उसका नाम दया था, यह मुझे मालूम हो गया । मैंने उसे दया कहकर पुकारने लगा, वही मुझे प्यारा लगता था । कुछ ही देर के लिए वह मेरे पास आती, बैठती, उसके शरीर से पाउडर और सुगन्धित तेल की महक मेरे शरीर मे प्रवेश कर जाती ।

एक दिन दया मेरे पास नही आई । कमल और राधा मेरे पास बैठ गए । कमल और राधा एक दूसरे की ओर देखने लगे, कुछ अस्वाभाविक-सा लगा । कुछ घटित होने वाला है क्या, मैं सोचने लगा । कमल ने मुझसे

कहा—'आप मेरी कॉपी में हिन्दी की राइटिंग लिख दीजिए।'

—बस, मैं कुछ निश्चित हुआ और मैंने राइटिंग लिख दी। फिर राधा ने कहा—'मेरी कॉपी में भी लिख दीजिए।'

मैंने उसकी कॉपी में भी लिख दी।

दया उस दिन नहीं आई। मैंने पूछा—'तुम्हारी माताजी नहीं आईं।' फिर दोनों ने एक दूसरे की ओर देखना प्रारम्भ किया। राधा ने ही पहल की—'मां बीमार है।'

मैं उठकर श्यामी की ओर चल पड़ा। मैं रास्ते में सोचता रहा कि वातावरण में कुछ अस्वाभाविकता थी। दया भी नहीं दिखाई दी, कुछ बेचैनी-सी रही। दूसरे दिन तक वह बात दिमाग से उतर गई।

मैं जाकर कमरे में बैठ गया। कुछ देर अकेला ही बैठा रहा। राधा और कमल भी नहीं आए। दूसरे ही क्षण दया ने प्रवेश किया। वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। उसके चेहरे पर उदासी थी, आंखें लाल थीं, बाल बिखरे थे। उसने टूटी-फूटी हिन्दी में इस प्रकार कहना शुरू किया —'शर्म नहीं आती तेरे को, तेरे मां, बहन नहीं है क्या?' और फिर शायद अपनी भाषा में कुछ गालियां निकालीं। मैं कुछ भी नहीं समझ सका कि बात क्या है। बिल्कुल वैसा ही भाव कमल और राधा के चेहरे पर था। वे भीतर ही भीतर बड़बड़ा रहे थे। जिस गुरुत्व को मैं अब तक ओढ़े हुए था, तीनों ने मिलकर एक क्षण में उतार दिया। मैंने पूछा—बात क्या है, मुझे बताओ लेकिन शायद गालियों की बौछारें थीं जो समझ में नहीं आ रही थीं। तीनों मिलकर अपने हाथों को एक प्रकार का नक्शा बना रहे थे जो एक इशारे से गाली ही थी। मेरी उन्होंने एक भी नहीं सुनी। मैं उठ खड़ा हुआ। मेरा मुंह कुछ रुआंसा-सा हो गया। मुझे भ्रम हुआ, शायद सावित्री ने कुछ कह दिया हो। फिर कल के 'राइटिंग' के संदर्भ में सोचता रहा, कहीं कोई तार पकड़ में नहीं आया।

मैं सीधा सावित्री के पास गया। मैं उसके निर्धारित समय से पूर्व ही चला गया था। मैंने जाते ही सारी घटना का विवरण सावित्री के सम्मुख प्रस्तुत कर ही दिया। वह बहुत हंसी। उसने फिर धीरे से कहा—'आपने दया को पसन्द तो नहीं कर लिया।'

मैंने कहा —'मेरे गले में फंसी हुई हैं, तुझे मजाक सूझ रहा है।'

—आपके साथ ठीक हुआ।

—तूने कुछ कह तो नहीं दिया, मैंने गम्भीरता से पूछा।

—मैं क्या पागल हू, अब वह भी गम्भीर हो गई।

—तो फिर बात क्या हुई?

हम दोनों ने इसी पहलू पर कुछ समय तक विचार-विमर्श किया। कोई निर्णय हाथ नहीं लगा।

मैं उसी समय उठकर श्यामी के पास पहुच गया। उसने अपनी पुस्तकें बटोरनी शुरू की। मैंने कहा—'मैं आज पढ़ाने नहीं आया, तुम बैठो मैं एक बात कहने आया हू।' और मैंने अपनी बात कही।

श्यामी इस बात से गम्भीर हो गई और स्वय ही अपने विचारों में डूब गई।

कुछ देर बाद ही उसने ओंठ खोले—'उनको कोई भ्रम तो नहीं हो गया।'

—मेरे तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा।

—कैसे करें?

—तुम स्वय वहा जाकर वस्तुस्थिति का पता लगाओ, मेरी राय तो यही है।

मैं पढ़ाने के मूड में था ही नहीं, मैंने फिर यही कहा—'तुम आज या कल सुबह वहा जाओ। मैं फिर कल ही आऊगा, मुझे स्थिति का पता लग जाये, मैं तो यही चाहता हू।

भागू ने मुझे खाना खिलाया, लेकिन खाना मुझे अच्छा नहीं लगा। रोटी के टुकड़े मेरे गले में अटक जाते। मैंने पानी के सहारे गले में उतारने की चेष्टा की। भागू ने भी कहा—'आपने कुछ भी नहीं खाया आज तो।'

—तबियत ठीक नहीं है, भागू। और मैं लेट गया। दया की गालियों की गूंज मेरे कानों में रेंग रही थी।

मैं एकान्त में अपनी खाट पर पड़ा रहा। गर्मी की उष्णता के साथ भीतर की उष्णता ने नींद को बतई रोक दिया और मैं करवट लेता रहा। उस दिन मुझे अपनी कमजोरी का भारी एहसास हुआ। दया का सुकुमार

सौंदर्य किस तरह विकराल रूप धारण कर गया, राधा-कमल के दिमाग में अचानक मेरे प्रति क्यों घृणा पैदा हो गई, यह विचार मेरे मानस को झकझोरने लगा। दया का औरत रूप जो एक दिन नंगा होकर सामने आया, फिर उसी रूप ने मुझे निकट आकर चाय पिलाई, मीठा खिलाया और जिसके सुन्दर कपोलों की मीठी-मीठी महक मेरे सांसों के निकट आकर मेरे हृदय की दीवारों को सहला गई, वही फिर ज्वाला की तरह भभक उठी। मुझे सारा नाटक अजीब और डरावना लगा। मैं मन ही मन भयभीत हो रहा था और साथ ही अपनी ही स्थिति पर तरस खा रहा था अंतर में एक द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ। मेरी विवशता मुझे कचोटने लगी। इस भारी भीड़ में मैं अपने आपको अलग-थलग पाने लगा, अजीब स्थिति को ढो रहा हूं मैं। मेरे साथ और भी तो छात्र हैं खुली हवा में विचरते हैं मस्ती में, निश्चित होकर। और मैं? क्या अस्तित्व है मेरा? क्यों झूम रहा हूं इस तरह? घर-घर घूमता हूं लोगों की गलियों का पेशाब सूंघता। उनके मुंह की तरफ देखता हूं कि कहीं उनकी चेहरों की रेखाएं बिगड़ न जाएं। औरत का आकर्षण मेरे से सटकर बैठता है और मैं उन्हें झांकता रहता हूं। मन करता है कि इन्हें छू लूं, चूम लूं, चूस लूं। फिर भय लगता है कि कहीं विस्फोट हो गया तो। क्या है यह सब कुछ? ज्यों-ज्यों आदमी आगे बढ़ा है, वह और जकड़ा है, उसके दिल और दिमाग को समाज के फंदे ने अधिक कस लिया है। इससे पशुता ही अच्छी है जिसे मुक्त वायुमण्डल तो नसीब है। मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं एक पंछी हूं जिसके पंख हैं, लेकिन उसे उड़ने की मनाही है। सोचने लगा—पगले, किस जाल-जंजाल में फंस गया। यह शहर है या कोई मायानगरी। सुनहले थाल सामने परोसे देख तरसता हूं और मेरी लारें टपकती हैं और एक-एक लार के साथ मेरा शरीर रिसता जा रहा है, घटता जा रहा है।

चिन्ता की चादर डाले मैं अपने आप को श्यामों के घर ले गया। श्यामों का कमरा सूना था और उसके आते ही उसका सूनापन मिट गया। मैं भारी मन से उसके चेहरे को देख रहा था कि अभी वह कल की घटना का रहस्य खोल कर रख देगी। वह बैठ गई। मैंने पूछा—'तुम गई थीं राधा के घर?'

—हां, गई थी, उसने कहा और वह मुस्करा दी।

—क्या बात है ?

—बात बडी अजीब है, उसने कहा।

मेरा दिल धड़कने लगा। शायद मेरी कमजोरी बाहर फूट जाये।

वह बोली—'बात यह थी कि एक पत्र उनके घर डाला गया। वह कोई प्रेम-पत्र था, यह तो सच है, किन्तु किसी आदमी के नाम किसी लड़की का है। पत्र बहुत पुराना है और शायद कोई बच्चा उसे उठाकर ले आया और इनके घर वहा डाल गया जहा डाकिया पत्र डाला करता है। पत्र दयाराम के नाम का है। दया राधा की मा का नाम भी है। वह शायद अभी-अभी आपसे हिन्दी सीखने लगी है। उसने उसे डाक मे आया पत्र मान कर पढने लगी और उसे इस पत्र का आप पर सन्देह हो गया। उसने राधा और कमल को निर्देश दिया कि वे आपकी 'राइटिंग' उसके पास लाए। उसने अपने आप ही मिलान किया और आप पर बरस पडी।

—हा, हा, हा, मैंने अट्टहास किया और बेफिक्री से बोला—'तुमने क्या कहा ?'

वह बोली—'मैंने कह दिया कि तुम सब पागल हो। मैंने वह पत्र देखा और स्पष्टीकरण कर दिया। मैंने उन्हे बताया कि मास्टरजी एक सज्जन और शरीफ आदमी हैं। मुझे एक वर्ष से पढ़ा रहे हैं। मैं अकेली ही पढ़ती हू। वे ऐसे होते तो कम से कम मेरे सामने साफ हो जाते। उन्हे पढ़ाने के अलावा कुछ नही आता।'

मैं फिर शराफत के अभिनय पर आ गया। मेरी आखें नीची हो गईं और भीतर ही भीतर अपने आप को टटोलने लगा।

उसने फिर मुझसे कहा—'दया अपने किए पर पछता रही थी। वह कह थी कि मैंने एक भले आदमी को बुरा-भला कहा और परेशान किया। उसने यह भी कहा कि कल से उन्हे भेज देना।'

—मै वहां कभी नही जाऊगा, मैंने स्पष्ट कर दिया, जब तुम कभी जाओ तो मेरे पैसे ले आना। और मैंने उसको अपना हिसाब बता दिया।

—हरज क्या है उसने पूछा।

मैं गरीब हो सकता हूं, श्यामी, लेकिन अपमान नहीं पी सकता। मैं

जहां कहीं भी जाता हूं, स्वाभिमान को साथ रखता हूं। वह तो औरत थी, मैंने औरत का लिहाज कर दिया, वरना मैं उसका गला घोट देता। मेरा चेहरा तमतमा आया था और सोया हुआ 'अहं' जाग गया।

—उसकी गलती तो नहीं थी। भ्रम हो गया उसे।

—यह गलती नहीं है, श्यामी कि उसने मुझे निरर्थक गाली दी।

—यह तो है, उसके चेहरे पर उदासी आ गई थी।

—सच कहता हूं, मुझे रात भर नींद नहीं आई।

—छोड़ो जी, मुझे क्या, वे जानें, उसका काम जानें।

बात आगे नहीं हुई और मैं फिर शान्त होने लगा।

मैंने श्यामी के घर अधिक समय नहीं दिया। उठा और सावित्री के घर चला गया।

—सावित्री मेरी प्रतीक्षा में थी। मेरे बैठते ही वह हँसने लगी।

—अरी, बात क्या है? मैंने पूछा।

—मैंने आप को पकड़ लिया।

—अरे, कहां?

—आप पत्र लिखते है, प्रेम-पत्र, पराई औरत को।

—तुझे कैसे पता?

—मैं गई थी राधा के यहां।

—अच्छा, श्यामी भी तो गई थी।

—अरे, फिर आप को पता चल गया।

—मैं अभी उसके यहां से तो आ रहा हूं।

—उसने कह दिया होगा, वरना मैं उसको खूब चिड़ाती। देखो, कितनी बेवकूफ औरत है। हिन्दी पढ़ रही थी न आप से।

वह फिर हँसने लगी।

उसने फिर कहा—'औरत बड़ी रूप वाली है। वह अपने आप को कुछ समझती है। उसे अपने रूप पर घमंड है।'

—रूप होगा, वह तो अपने आप को समझेगी ही, मैंने चुटकी ली।

—अब जायेंगे आप?

श्यामी भी पूछ रही थी। उसका क्या पता साली, कल को कह दे कि

ये मेरी तरफ देख रहे थे। फिर कह दे, इसने मुझे पकड़ लिया। दरअसल, रूप में तो खतरा ही खतरा है। यह तो एक जहरीला 'कैपसूल' है जो ऊपर से रंगीन और सुन्दर लगता है।

—तो आपको अब रूप से चिढ़ ही गई। मैंने तो सचमुच यह समझा था कि आपकी नाव दया की तरफ चल पड़ी थी।।

—और मैंने समझा कि यह सावित्री की मेहरबानी है।

—यह भी कभी हो सकता है, वह बोली।

सावित्री के घर से चलते समय मैं निश्चिन्त हो गया था, चलो जान छूटी। एक बड़ी परेशानी सिर पर सवार हो गई थी, वह एकदम उतर गई।

'डेरे' पर पहुंचते ही भागू ने एक पत्र दिया। पत्र कुन्दन का था। कुन्दन के पत्र की भी चिन्ता थी। पत्र खोलकर पढ़ने लगा। लिखा था—गांव में अच्छी बरसात है, सावणी बीज ली है। मैंने सड़क छोड़ दी है और अब नहर पर लग गया हूं। सेठ रामकुमार ने नहर का ठेका लिया है। काम कराने में मुझे लगा लिया है। मैं हर माह पिताजी को रुपये दे देता हूं।

मुझे पत्र पढ़कर सन्तोष मिला। मैंने पत्र समेट कर आलमारी में रख दिया। भागू ने खाना दे दिया और मैंने खाना खा लिया। इन्द्र के आने की इस समय कोई सम्भावना ही नहीं थी। आकाश में हलके-हलके बादल आ गए थे। बरसात की-सी सम्भावना बन गई थी, इसलिए मैंने अपना पलंग बरामदे में ही डाल लिया। सामने से लैम्प-पोस्ट की रोशनी गिर रही थी। भागू कार्य से निवृत्त होकर सामने बैठ गया। वह कभी भी पलंग पर नहीं बैठता था, आज भी नहीं बैठा। ऐसा उसके संस्कार में आ गया था। मैं कभी उसे कह भी देता—अरे, ऊपर बैठ भागू।

—नहीं, कंवर साहब, कभी आपके बराबर बैठा जाता है। हम तो छोटे आदमी हैं और छोटा रहना ही ठीक है।

मैंने भागू से पूछा—कहो, क्या हाल है?

वह हमेशा अपनी दोनों टांगें पसार कर बैठता था और बातें करता रहता था। शायद यह उसकी आदत थी या उसे ऐसे बैठने में सुविधा

मिलती थी।

उसने कहा—कंवर साहब, मजे हैं।

—अरे, कैसे, मैंने पूछा।

—बस, काम बनने ही वाला है।

—यानी शादी होने वाली है।

—शादी तो हो ही जायेगी, उसने बताया, लेकिन वह भी अब तैयार हो गई है।

—तो यह मेरी 'लव मैरिज' हो गई।

वह इस शब्द से परिचित था, क्योंकि मैं और इन्द्र प्राय. इस शब्द का प्रयोग करते थे और वह समझ जाया करता था।

उसने सहमति प्रकट की, 'लव' मैरिज ही समझो और वह फिर अपनी आदत के अनुसार हँसने लगा।

उसने कई बातें इस प्रसग में बतलाई। उसन यह बतलाया कि चिमनी कई बार उससे एकान्त मे मिली। उसने उसको अपनी बाहो मे डाला और उसके कपोल चूमे। उसने यह भी कहा कि कंवर साहब की निगाहें उस पर अच्छी नही है। इन्द्रजी भी अपनी नजरें उस पर डालते रहते हैं। चिमनी ने उसे बतलाया था कि इन्द्र ने खाना खिलाते समय उसका हाथ पकड लिया था। उसने उनसे कह दिया—'मैं माताजी को कह दूंगी।' तब वे छोड बैठे। भागू ने यह बताया कि कवराणी-सा अब अपने हाथों में कवर-साहब को खाना खिलाती है। कवर साहब कवराणी-सा से बहुत डरते हैं। उनके सामने वे भीगी बिल्ली बन जाते हैं।

बादल घुमड़ने लगे थे, बूंदें 'टप् टप्' गिरने लगीं तब भागू उठकर अपने कमरे की ओर चला गया।

सुबह कवरसाहब ने मुझे बुला लिया। रात की शराब ने उनके शरीर को तोड दिया था, इसलिए वे उस समय बोतल से कुछ घूट ले रहे थे। कोई खुमारी का उनके चेहरे पर आभास नही था। जब कभी वे अधिक पी लेते हैं, तब वे ऐसा ही किया करते हैं।

कवर साहब ने कहा—'आपसे एक राय लू, सम्पत् जी।'

—हुकम करो, मैं प्राय: यही शब्द काम मे लिया करता था। वे बोले,

'मैं शीघ्र ही भागू और चिमनी की शादी कर रहा हू।'

—जरूर कर दीजिए, मैंने समर्थन दिया।

—ऐसा है, वे कहने लगे, भागू कभी-कभी दिल हिलाता है, मैं समझता हू, चिमनी से बधते ही यह कही नही जायेगा और जमाना बदल ही रहा आप जानते है।

—ठीक है जी।

—ऐसा लगता है, वे बोले, भागू का चिमनी मे दिल भी है। मैंने उसे उसके साथ बात करते भी देखा है, हँसते भी देखा है। शायद, भागू आप से भी बात करता रहता है। उसने आपसे भी कुछ कहा होगा।

कवर साहब का यह प्रश्न-वाचक चिह्न था। मुझे उसका उत्तर देना था। इसलिए मुझे कुछ सम्भलना पडा। मैंने कहा—'हा, हा, बात तो करता है।'

—कुछ कहता होगा चिमनी के बारे मे ?

—हा, हा, उसका मन है चिमनी मे।

—बस तो, काम बन जायेगा। वैसे चिमनी है भी सुन्दर, यह कहते-कहते उन्होने एक मुस्कान अपनी मूछो मे छिपा ली।

—अवश्य बन जायेगा, मैंने अपनी मुस्कान बडी कठिनाई से छिपा ली।

फिर उन्होने एक बात और कही—एक बात और भी है जो आप इन्द्र से कहें। वे फिर चुप हो गये। उन्होने अपना स्वर और धीमा कर लिया। फिर टूटे शब्दो मे बोले —'आप इन्द्र को समझा देना कि वह अपने आप को संभाल कर चले। चिमनी खूबसूरत है। वह कभी इसकी खूबसूरती मे उलझ न जाये। सम्पत् जी, सच्ची बात है कि खूबसूरत चीज आदमी को पसन्द आती है। उस समय आदमी उसके नतीजे पर विचार नही करता। बडा वही है जो इस समय अपने आप को सम्भाल ले। मैं यही चाहता हू कि इन्द्र मे यह कमजोरी न आये।'

दरअसल, चिमनी सारे परिवार को दुविधा मे डालने लगी। कवर साहब को यह परेशानी सताने लगी कि इन्द्र इस आग मे न झुलस जाये। कंवराणी-सा इसलिए चिन्तित थी कि चिमनी का सौन्दर्य उसे अपने पति से

अलग न कर दे। इन्दु की बहू यह सोचकर चिन्ताग्रस्त हो गई कि वह पीहर गई और चिमनी मेरे पति के बिस्तर पर आई। चिमनी इसलिए दु:खी थी कि वह किस-किस का मन सतुष्ट करे। भागू उसे जल्दी अपनाने को तड़प रहा था। चिमनी एक आग की चिनगारी थी जिसका ताप सभी को सताने लगा।

और एक दिन भागू का विवाह चिमनी के साथ हो गया।

श्यामी और मैं एक दिन एक विवाद में उलझ गए। श्यामी की बात से मैं कतई सहमत नहीं था। श्यामी की बात बड़ी खुली थी। उसका मत था कि आदमी परिस्थितियों का गुलाम नहीं होता, वह इतना सक्षम है कि परिस्थितियां स्वयं उसके पीछे बनती चलती है। बात यो चली थी कि दया का प्रसंग आ गया था। सावित्री ने एक बार दया के चरित्र पर शंका की थी। किसी सदर्भ में यही बात मेरे मुह से श्यामी के सामने निकल गई। तब मैंने इस प्रक्रिया को स्वाभाविक बताया कि दया एक युवती है उसका पति वृद्ध है। यदि इस परिस्थिति से वह प्रेरित होकर गलत काम कर भी जाती है तो उसका दोष ही क्या है इस पर श्यामी ने इतिहास के उदाहरण दिए और भारतीय जीवन में कुछ चरित्र उपस्थित किये जिनमें नारी यौवन के प्रारम्भ में ही वैधव्य धारण कर लेती है और जीवनपर्यन्त निष्कलंक उसे निभा ले जाती है। मैंने इसका प्रतिवाद बदलते जीवन के परिवेश में किया कि आज का खानपान परिस्थितियां इतनी विपरीत हो गई है कि यह सब कुछ सम्भव नहीं है और इसमें चूक भी नहीं है मैं यहां तक आगे निकल गया था कि मैं कह गया था कि नारी के लिए चरित्र पर तूल देना एक बेमानी है, इससे अनेकों जीवन बिगड़े हैं। उसने तब कहा—नारी चरित्र के संबंध में कभी कमजोर नहीं रही और न रहेगी।

—रहने दे, श्यामी, यह फालतू बात है, आदमी जहां कमजोर है और वहां औरत भी कमजोर है।

वह सीधी वेश्यावृत्ति पर आ गई। वह कहने लगी – वेश्यावृत्ति को क्या समझते है आप, आदमी की कमजोरी या औरत की कमजोरी।

—मैं तो इसे औरत की कमजोरी मानता हूं, मैंने कहा।

—वाह, वाह, आप भी खूब तर्कशील हैं। यह आदमी की ही कमजोरी है जिसका उपयोग औरत करती है। औरत की भूख है पैसे की और आदमी को भूख है औरत की।

श्यामी पहले इतनी नही खुली थी जितनी अब। मैं भी उसके खुलेपन पर दंग रह गया।

—समय की बात है श्यामी, समय स्वयं विवश कर देता है, चाहे पुरुष हो या नारी, मैंने गम्भीरता से कहा।

—समय क्या है, मानव स्वयं अपने पर नियन्त्रण रखे, श्यामी फिर आवेशमय हो गई।

—समय किसी की परीक्षा न कराये, यही उत्तम है, मैंने फिर संतुलित होकर कहा।

—परीक्षा, परीक्षा क्या है, मैं कहती हूं, मेरी कोई परीक्षा कर ले, श्यामी ने उसी भाषा में कहा।

मैं हँसने लगा—अच्छा, यह बात है, परीक्षा बुरी होती है, श्यामी।

—हां, हां, मैं परीक्षा के लिए प्रस्तुत करती हूं, श्यामी सहज नहीं हुई थी।

—अच्छा, छोड़ो तो, हमें क्या वहम करती है। मैंने कहा और फिर अन्य प्रसंग में बात टल गई।

मैं कुछ देर के बाद उठने को हुआ, तब मुस्कराकर कहा—'तो श्यामी, परीक्षा तो करनी ही होगी।'

वह उस समय सहज हो गई थी और मुस्कराकर मुझे विदा दे गई।

—परीक्षा'' परीक्षा'''परीक्षा—यह गूंज भीतर तक प्रवेश कर गई।

भागू मेरे कमरे में हजामत बना रहा था मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—'अरे, इस समय क्या कर रहा है तू।'

—दिन में फुरसत ही नहीं मिलती, कंवर साहब, दो मिनट में रगड लेता हूं।

—वाह रे वाह, कोई जरूरी है, मैंने कहा, तेरा क्या ले रही है, पहले भी यह झाड़-झपाड़ खड़ा रहता था।

वह हँस दिया और यही उसका उत्तर था।

मैंने खाना खाया और उसने अपना साज-शृंगार किया।

थोड़ी देर मे वह जाने लगा तो उसने दो शीशियां उठाई।

—क्या है इसमे ?

उसने छिपाने का प्रयास किया। मैंने उसकी चेष्टा विफल कर दी। एक शीशी बडी थी और एक बहुत छोटी। मैंने पहले बड़ी शीशी देखी उसमे सुगन्धिवाला तेल था, छोटी मे इत्र।

—अच्छा, बच्चू, यह बात है, मैं बात समझ गया था।

उसने हँसने के अतिरिक्त कुछ नही किया। उसकी आखें थोडी नत हो गई थी।

मेरे पास सोने के अतिरिक्त कोई काम नही रह गया।

दूसरे दिन मैं कालिज रवाना होने को था, मेरे सिर में एक चक्कर आया और मुझे बैठना पडा। मैंने कमजोरी-सी महसूस की और फिर लेट गया। क्या हुआ यह, मैं सोचने लगा। फिर कॉलेज चला तो गया लेकिन दिन भर एक बेचैनी सताती रही कि इन दिनों शरीर मे ऐसी कमजोरी आ गई है जिसे अधिक दिन सहन नही किया जा सकेगा। दिन मे मैं अपने पुराने होस्टल मे चला गया। वहां पहले वाले माहौल में परिवर्तन आ गया था। व्यवस्था भी नही थी, छात्र कुछ और आ गए थे। पुराने चले गए थे। मैंने वहा के खान-पान के सबंध में भी बातचीत की। एकदम एक प्रेरणा मिली कि मुझे होस्टल में आ जाना चाहिए, चाहे कोई नाराज हो या राजी।

दूसरे दिन मैंने अपने निर्णय को कार्यरूप दे ही दिया। कवर साहब ने कुछ असन्तोष व्यक्त किया, भागू मेरी राय से सहमत था, इन्द्र ने कोई रुचि नहीं ली।

मैंने शाम का खाना होस्टल मे खाया। मुझे पर्याप्त सन्तोष मिला, उस समय मैंने अनुभव किया कि कवर साहब के घर जाना मेरी भूल थी। खान-पान के साथ होस्टल के माहौल मे भी नशा था और मैं नशे से अब तक मुक्त रहा।

होस्टल में नया साथी मिला—मुकुन्द—अल्हड़ और अलमस्त। दिन-रात गीत गाता और कविता रचता। रात की अंधेरी मे जब सब सो जाते,

वह प्रेम की कहानियां कहता। मुकुन्द का जीवन स्वय एक उपन्यास था। उसकी भी एक प्रेमिका थी। वह उसके वियोग में विरह के गीत गाता और कविता रचता। मैं रात को आता उस समय वह अपना एक गीत तैयार रखता और मुझे गाकर सुनाता। धीरे-धीरे मैं भी मुकुन्द से एक रस और एक रूप होने लगा। उस अंधेरे मे बीच की सभी सीमायें टूट जाती और मैं मुकुन्द के सामने खुले हृदय से सामने आ गया। सभी पात्र उसके सामने नगे हो गए—सावित्री श्यामी और दया। वह उन सभी पर अपनी टीका-टिप्पणी करने लगा।

सावित्री जितनी किरकिरी लगती थी, श्यामी उतनी ही माधुर्यपूर्ण। स्वभाव के साथ उनके चेहरों मे भी भारी अन्तर आ गया था। सावित्री जितनी घटिया गई उतनी ही श्यामी बढिया गई। रंगीन साड़ी में उसके खुले बालो में आकर्षण का एक एहसास था। अपने स्वभाव के आगे उनकी नीची आखों ने भी अंगड़ाई ली और मैं आगे बढ़ते-बढते रुक गया। श्यामी ने अब तक जिस शालीन व्यक्तित्व का समावेश अपने भीतर और बाहर कर रखा था यह झिझक उसी का प्रमाण था। मैं बैठ तो गया किन्तु अभी तक ओठों की फड़फड़ाहट मिटी नही थी, गले में अभी एक अवरोध था, बाहर आने को था, मैं उसे निगलने का प्रयास कर रहा था।

—श्यामी, मैंने धीरे से कहा।

'श्यामी' का उच्चारण ही भाव-विभोर था और एक चोट करने वाला प्रहार जिसके आगे-पीछे बहुत कुछ जुड सकता था और उसका अर्थ सहज ही निकाला जा सकता था। मैंने उस समय फिर श्यामी की तरफ देखा। उसकी आखें वैसे ही नत थी और वह और सिकुड़ती जा रही थी, इकट्ठी होती जा रही थी, शायद लज्जा, एक नरी-सुलभ लज्जा उसके इर्दगिर्द इकट्ठी हो रही थी और उसे समेटती जा रही थी। इससे उसका सौन्दर्य और उभर आया। श्यामी मुझे और प्यारी लगने लगी। मेरे सामने की मेज छोटी होती नज़र आई। श्यामी का चेहरा और रक्तिम हो गया,उसके नथुने कुछ फूले हुए लगे। मैंने उस चेहरे के कई बार अर्थ लगाने के प्रयास किए है। मुझे एहसास होने लगा था कि श्यामी अब तक मिली औरतों मे भिन्न औरत है। इसके साथ एक अलग प्रकार की अनुभूति प्रकट होती है, सदैव निकट रहने की

अनुभूति जिसे कभी अलग नहीं किया जा सकेगा। टूटने पर एक ऐसी असह्य पीड़ा जिसके आगे जीवन शून्य, निरर्थक और नकारा जाने वाला होगा। कभी मैं महसूस करता कि यह मेरा इकतरफा फैसला तो नहीं। मैं अपनी कमजोरी को ताड़ना देता, ऐसी कमजोरी जो शायद अन्य पुरुष में सुगमता से नहीं मिल सकती। व्यर्थ की एक भूख चिपकाने वाला आदमी, जिसका कोई सिद्धान्त नहीं, मान्यता नहीं, कहीं ठोसता नहीं, जिधर का झोंका आया मुड़ गया, जिधर का बहाव आ गया, बह गया। जिन्दगी में इतना खुरदरा भी किस काम का कि जो भी आया ठहर गया और स्थान बनाने लगा। कोई फिसलने वाली पॉलिश हो जिस पर कोई बूंद तक न ठहर सके। श्यामी क्या अनुभव कर रही होगी, वह भी मेरी अनुपस्थिति में सहन नहीं कर सकती। एक दिन उसने कहा भी था—'आप कल आए नहीं' समय कटना मुश्किल हो गया।

एक वाक्य मेरे भीतर कई बार गुदगुदा जाता है, मैं सोचता हूं, श्यामी मुझे अपना समझती है, मेरे बिना वह अधूरी है, किन्तु ये बीच के पत्थर, रोड़े कहीं से आकर रुक गए हैं कि कभी रास्ता साफ ही नहीं लगता और इन्हीं रोड़े-पत्थरों से भयभीत होकर पीछे मुड़ जाता हूं।फिर इसी तरह मैं वापिस मुड़कर अपने घर चला गया।

कुन्दन का पत्र पढ़ा और चिन्ता हो गई। उसमें पिताजी की बीमारी का उल्लेख था। साधारण बीमारी में तो कभी पत्र में चर्चा नहीं आती, स्थिति गम्भीर होगी, तभी कुन्दन ने लिखा है, इसलिए शाम को गांव को प्रस्थान कर गया।

घर पहुंचा तो मालूम हुआ कि पिताजी बीमार हुए थे और ठीक हो गए। एक दिन रात को स्थिति गम्भीर हो गई तो पत्र लिख दिया। अभी पिताजी ने अपनी खाट छोड़ी नहीं थी। उसने पिताजी को बीमारी की बात आद्योपान्त सुनाई, यह उसकी आदत थी। एक दिन आते ही कहने लगे—पसली में दर्द है। 'सो जाओ, चाय बना देती हूं, सेक कर देती हूं।' मां ने कहा था।

—सो तो क्या जाऊं, अभी तो चलने फिरने लायक हूं।

और वे खसते फिरते रहे, काम करते रहे।

—सो जाओ न, काम होता रहेगा, कुन्दन कर लेगा, मगनी कर लेगी।

—थोड़ा और कर लेता हूं, शरीर क्या बिगड़ता है।

—शरीर तो शरीर ही है, कब तक निभ सकता है, आखिर खाट पकड़ ली, बुरी तरह करहाने लगे। हाय मरा। अब क्या होगा? खांसी—और भारी पीड़ा।

मैंने रेत गरम की, खाट पर डाली, सेक दिया, मां ने बताया।

—रात भर जागते रहे, मां कह रही थी, मैं भी नहीं सोई। कहने लगे सम्पत् को बुला दो, मैं देख लूं, मैं बचूंगा नहीं। कुन्दन ने वैद को बुलाया, उस बेचारे ने टीका लगाया। तब कहीं चैन पड़ी। ऐसे है तेरे पिताजी।

पिताजी कमजोर हो गये थे, मुंह निकल आया था। केवल मूछें ही दिखती थी। वैसे पिताजी अधिक उम्र वाले नहीं थे लेकिन परिस्थितियों ने उन्हें तोड़ दिया था। मैं मन ही मन सोचने लगा कि पिताजी दरअसल औलाद के सुख से वंचित हैं। मैं तो बेकार हूं ही किसी काम का नहीं अब भी और बाद में भी। कुन्दन भी इसके लिये बेकार हो गया। क्या हुआ वह काम करता है तो। पिताजी को उसका क्या सुख है? इधर ताऊजी इसमें सुखी हैं। कर्ज है तो है लेकिन खेत मे तो खड़े नहीं रहते। इनके दोनों बेटे दायें-बायें खड़े रहते हैं। तभी वे स्वस्थ है और रात को भगवान् की टेर छेड़ देते हैं।

मैंने कहा—पिताजी कैसे है आप?

—ठीक हूं सम्पत क्या बिगड़ता है मेरा?

—कुछ दुखता है?

—अरे, नहीं तो, ठीक हूं ऐसे ही कुन्दन ने लिख दिया और तू आया, तेरी पढ़ाई हर्ज हो गई, भाड़ा भी लगा। मैं ठीक हूं। तू जा, पढ़।

पिताजी ने कभी निराशा से मुक्ति नहीं ली। आशा की सभी किरणें उनके लिए जैसे लुप्त हो गई हों ऐसा ही लगता था।

—लाओ पैर दबा दूं मैंने पैरों की तरफ हाथ करते हुए पूछा।

—नहीं रे, मेरा कुछ भी नहीं दुखता।

उन्होंने कभी भी हाथ लगाने ही नही दिया।

मां अभी चूल्हे के पास बैठी थी। मा ने कहा—अबकी बार मगनी की शादी करनी है तेरी छुट्टी कब हो जायेगी।

—जेठ, माढ मे।

—उन्ही दिनो करेंगे मगनी का ससुर आया था।

—कुन्दन का काम कैसा चल रहा है ?

तभी कुन्दन भी आ गया था।

—अभी याद ही कर रहे थे तुझे, मा ने कहा।

कुन्दन का शरीर भरने लगा था। उसके भारी चेहरे पर रौब था। चेहरा निखरा-निखरा लगता था। उसके चौडे सीने पर सफेद चोला फबता था। ढीला पाजामा उसकी चप्पलो पर गिरना उसकी शौकीनी तबियत को प्रकट कर रहा था।

वह आकर मा के पास बैठ गया।

मैंने मां से ही पूछा—कुन्दन कुछ देता तो होगा ही।

—इसी से पूछ ले, मा ने उसकी तरफ मुस्करा कर कहा।

—क्यों भाई ? मैंने कुन्दन से पूछा।

कुन्दन ने अपनी धन राशि का लेखा प्रस्तुत किया। तभी उसने अपनी कलाई की घडी का प्रदर्शन किया।

—यह कितने मे ली, मैंने घडी की तरफ देखते हुए कहा।

—पौने दो सौ, उसने बताया।

मा ने बीच मे ही रोकते हुए कहा—बस, ऐसे पैसे खराब करता है, देने को धरा है इसके पास।

मां ने निराशा तो प्रकट की लेकिन इतनी असंतुष्ट नही थी। वह बेटे को देखकर मन ही मन खुश थी।

—रहने दे मा, कुन्दन ने तीखी आवाज में कहा, कितना ही कर दो, कुछ फल तो है ही नहीं।

तभी बनारसी की मा आ गई। बनारसी की विधवा मा अपने बेटे और बेटी को पालती हैं। उसने अपने पालन-पोषण मे दोनों को जवान कर लिया है। अपने वैधव्य ने जल्दी ही उसे लकड़ी के सहारे चला दिया और

उसका मुंह पोपला बना दिया। इस संघर्ष में दो दांत अब भी टिके हुए थे। जो उसके हँसने पर दिखाई दे जाते थे। उसने अपनी लकड़ी रख दी और घुटनों को दोनों हाथों का सहारा देकर बैठ गई और बोली—'क्यों धमका रही है मेरे बेटे को ?'

इस वाक्य का भी एक अर्थ था। अर्थ यह था कि कुन्दन रात को बनारसी की मां के घर सोता था। इसलिए वह कुन्दन को 'बेटा' कहकर सम्बोधित करती थी। मां का यहां तक शक था कि कुन्दन कुछ पैसे बनारसी की मां के पास जमा करता है। बनारसी जवान थी, इसलिए मां कभी-कभी और तरह का शक भी कर लेती थी, लेकिन प्रकट रूप में नहीं करती थी। मां ने कहा—'धमका नहीं रही हूं, समझा रही हूं।'

—समझा ले समझता है तो, मैं और यह समझने वाले भी तो नहीं हैं।

बात मजाक में टल गई और फिर अन्य बातें होने लगीं जिनका कोई जोड़-तोड़ नहीं था। बनारसी की मां को सभी 'ताई' कहकर पुकारते थे।

ताई ने बताया—जोरा सुनार एक औरत उड़ाकर ले आया। उसका खसम अभी जिन्दा है। औरत ही ऐसी छिनाल है कि यह उसके साथ भागकर आ गई। यह औरत पोथी भी पढ़ती है।

उसने यह भी बताया—बूढ़े लुहार ने नई-नई शादी करली है। औरत जवान है, छैल छबीली है। वह नये-नये आदमियों से दोस्ती बनाती है।

उसने सेठ रामकुमार के बारे में नया विवरण दिया—सेठ ने आरे का एक पेंच लगा लिया है, उसमें रुई भी धुनी जाती है, लकड़ी चीरने का काम भी है। हमारे पड़ोसी की अब तार आ गई।

ताई गांव की गतिविधियों का ब्यौरा अपने पास रखती है। वह दिन भर गांव में अपनी लकड़ी के साथ घूमती रहती है। घर में रोटी खाने के अलावा काम नहीं। बाकी समय वह घर-घर घूमने में बिताती है। उसे बातों का रस है और इसी रस के विटामिनों से जिन्दा रहती है। उसके भीतर एक घुटन है और इसी घुटन में वह कटती रहती है। उस घाव पर ये बातें थोड़ा मरहम का काम करती हैं। फिर भी वैधव्य एक 'कैंसर' है जो एक असाध्य रोग है। वह कभी-कभी अपने पति को याद करती है; तब

उनके आंसू उसकी थमी हुई आंखों को धो देते हैं।

पिताजी स्वस्थ होने लगे थे। उनके हाथ-पैरों में थोड़ी-सी हिम्मत आई और वे काम में लग गए। थोड़ा-सा आराम करने की बात उन्हें जचती नहीं थी। उनकी मान्यता था कि बीमारी का निवास ही खाट पर है। उससे उठ जाओ, बीमारी खुद छोड़ देगी। इसी विचारधारा के अन्तर्गत वे बुखार चढ़ने पर खेत चले जाते हैं, फिर तर्क देकर पुष्टि करते हैं—स्साली को काम करना पड़ता है तो खुद भाग जाती है।

मैंने कहा—'पिताजी ठीक हो गए हैं, अब तू ठहर कर क्या करेगा, तेरी पढ़ाई खराब हो रही है।'

और फिर मैं अपने शहर में आ गया।

शहर इसलिए निकट आने लगा था कि श्यामी निकट आने लगी थी। मैं पहुंचा और उसने उपालम्भ फेंक दिया—'बहुत दिन लगाये आपने, मेरा दिल तो नहीं लगा।'

—पिताजी बीमार थे न।

—अब तो ठीक हो होंगे, उसने पूछा।

—हां, ठीक हैं तभी आया।

—इतना लम्बा अन्तराल—बड़ी कठिनाई से कटा।

मैं इसका अर्थ अपने ही कोष के आधार पर निकालने लगा और मैं इस निर्णय पर आ गया कि श्यामी भी मेरे मार्ग पर खड़ी है, वही अकुलाहट जो मैं अनुभव कर रहा हूं श्यामी भी महसूस कर रही है। सोचा इन तारों को छेड़ूं, देखूं कि ये प्रेम की भाषा में बोलते हैं या नहीं। प्रतिकूल बोल गए तो क्या होगा? एक भारी झिझक थी ऐसी झिझक जो तोड़े टूट नहीं पाती थी। मैंने कभी यह ग्रन्थि मुकुन्द के सामने नहीं खोली शायद मैं उसके सामने मजाक का पात्र बन जाऊं।

श्यामी के खुले बालों में उसका मुखड़ा ऐसा ही लगता था जैसे कि काले घने बादलों में चांद हो। पुराने कवियों ने अपनी प्रेमिकाओं को यह उपमा ठीक ही दी थी। उसके गले में सोने का हार डाल रखा था। उसके मांसल गोरे गले पर बड़ा फब रहा था। पैंडल उसकी गोलाइयों पर टकराता, मेरे दिल की धड़कन बढ़ जाती। उठते समय मेरे हाथ अनायास

उसके बालों को छूते हुए उसके कपोलों को छू गए। प्रतिक्रिया को जानने की चेष्टा किये बिना मैं घर लौट आया। दिल जोर से धड़कने लगा और दिन भर नहीं टिक सका जब तक मैं दूसरे दिन वहां नहीं पहुंचा।

श्यामी उसी मेज के पास उसी कुर्सी पर बैठी थी। उसके बाल वैसे ही बिखरे थे। उसने बहुत ही हल्का-सा फिराक पहन रखा था। मैं जाकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया और श्यामी ने एक पत्र मेरे सामने रख दिया। मैंने पत्र पढ़ लिया और मेरा नशा एक झटके से उतर गया। उसमें जो कुछ लिखा था उसका एक ही सार निकला—'मैं आपको हरीश के समान अपना भाई समझती हूं। आप शायद कुछ और समझ गए। मेरा गला अवरुद्ध हो गया और मैं बोलने का साहस नहीं जुटा सका। मेरी आंखें उसी खत पर झुकी रहीं। ऐसा लगा मैं जल्दी ही रो दूंगा। दोनों के बीच मौन छाया रहा एक डरावना मौन जिसे तोड़ने का साहस शायद हम दोनों में ही नहीं था।

मैंने फिर खत को मोड़ दिया, श्यामी के सामने रख दिया। श्यामी ने उसे हाथ में लिया और अपनी पुस्तक में डाल लिया।

श्यामी मेरे चेहरे को देख रही थी। कैसा लगा होगा मेरा चेहरा, वह जाने। लेकिन मुझे तो ऐसा लगा जैसे कालख पोत दी गई। मुझे अपनी भूल का एहसास हुआ जैसे कि मैंने कमजोरी का नंगा रूप उसके सामने रख दिया हो। फिर उसने साहस जुटाया और बोली—'आपने एक दिन कहा था, मैं तुम्हारी परीक्षा लूंगा। आपने मेरी परीक्षा ले ली।'

—तुम उत्तीर्ण हो गई, मेरा गिरा हुआ मनोबल कुछ उठा, लेकिन मेरा दिल डूबने लगा था।

शेष समय बड़ी कठिनाई से निकाला। श्यामी दूर बहुत दूर चली गई थी। एक जलता हुआ चिराग बुझ गया। श्यामी बिना तेल और बत्ती के एक मिट्टी का ढेला रह गया।

उसके बाद मैं श्यामी के पास आता और चला जाता। मेरे आस-पास का सभी कुछ शून्य था, एक घुप अंधेरा, शरीर बोझ-सा लगने लगा था जिसे मैं बड़ी मुश्किल से ढो रहा था।

उसके बाद एक दिन होली आई थी। होस्टल के सभी छात्र अपने-

अपने घर चले गये थे। रसोइया भी नहीं आया था। पास के घरों में पकवान बनने की सुगन्धि आई थी और मैं उसे सूंघता रहा था। मैं उस दिन घर नहीं गया, न स्वामी के। न सावित्री के दिन भर अकेला पड़ा ऊबता रहा, रात को भी कुछ नहीं खाया, भूखा-प्यासा पड़ा रहा। उस रात को शिवाजी, भगनी, कुन्दन सभी बाहर आए थे। त्योहार के दिन जहां मान, पकवान बन रहे थे और मैं अकेला भूख से तड़प रहा था। रात को बहुत देर तक नींद नहीं आई, एक बार तो दिल उफन गया था और आंखों में आंसू आ गये थे। याद नहीं, रात को नींद आई या नहीं। मैंने मन ही मन स्वामी और सावित्री को गालियां निकाली थीं।

रात भर की घुटन के बाद सूरज की किरणें आयीं, तब मैं अकेला होस्टल में पड़ा था। एक बार द्वार खुला, भगिन ने आकर कुछ सफाई की और चली गई। मैं अपनी दुखी हुई मन स्थिति को लेकर खाट पर पड़ा था। फिर सोचा - बेवकूफ, दुनिया के द्वार तो मेरे लिए बन्द हैं, लेकिन जेब में पैसे हैं, फिर भूखा क्यों? और मैं बाजार चला गया।

यही बात मुकुन्द ने एक रात को मुझे बतलाई हम दोनों बेवकूफ हैं बल्कि जेब में पैसे होने चाहिए, दुनिया में क्या नहीं मिलता?

और हम दोनों रात्रि के अंधेरे को चीरते हुए एक बन्द गली में जा पहुंचे।

मुकुन्द इस रास्ते का साथी थी, इसीलिए उसने एक अजनबी आदमी से बातचीत की। हम दोनों एक सीढ़ी से जो अंधेरा पाले थी एक कमरे में प्रवेश कर गए। यह बन्द कमरा ट्यूब की रोशनी से जगमगा रहा था। उसमें अकेले में एक सजीधजी औरत बैठी थी। उसने मीठी मुस्कान के साथ हम दोनों का स्वागत किया। मुकुन्द ने जाते ही उसके गालों को सहलाया जैसे कि वह उसकी पूर्वपरिचिता थी। मुझे उसके गोरे गोल कपोल सुहावने लगे। मुकुन्द फिर वहां से उठा और एक दूसरे कमरे में प्रवेश कर गया। वहां भी इसी तरह की सुहावनी नारी किसी प्रतीक्षा में थी। मुकुन्द फिर मुझे बाहर ले आया। उसने मेरे कान में फुसफुसा कर कहा —'बोलो, इधर या उधर।'

बाजार का माल था, खरीदना था, पसन्द आए वही खरीदो। औरत

बिक रही है कुछ ही क्षणों के लिए। बात यही तो थी।

अकेले में एक औरत के पास बैठ गया हूं मैं, एक खुली औरत, न दुराव न छिपाव, न कोई झिझक, न कोई झमेला, न भय, न कोई आशंका। रोशनी में नगी औरत—क्या है यह? यह पहला अनुभव था मेरा। एक अजीब अनुभव। कुछ देर बाद सब कुछ स्पष्ट। मैं बाहर, मुकुन्द बाहर, आओ चलें—बस।

रास्ते भर मौन, जैसे कि कुछ चढावा ले गए थे, चढ़ाकर वापिस मुड़ आए।

होस्टल में आते ही कमरे में प्रवेश और फिर बत्ती जली। हमने एक दूसरे के चेहरे को देखा।

—बोल, कैसा रहा? मुकुन्द ने गर्व के साथ कहा।

—क्या रहा, कुछ भी नहीं रहा, मैंने कहा।

—वाह मित्र, क्या गजब का माल था?

मैं कुछ निराश-सा होकर पलग पर लुढ़क गया।

—अच्छा है, बस ठीक है, ऐसा ही कहा मैंने।

—तुम तो सचमुच निराशावादी हो, वह बोला, तुम्हें तो बस रोना अच्छा लगता है, बन्धु एक हाथ में श्यामी और दूसरे हाथ में सावित्री। दोनों हाथों को अपने सीने पर रखलो और उनके नाम को लेकर रोओ, खूब रोओ।

—बात यह है, मुकुन्द, मैंने कहा, जहा तुम और हम गए, वे औरत हैं ही नहीं। वे तो पत्थर हैं जहा जल चढ़ा दो और आ जाओ।

—अबे, जा, मुकुन्द ने गुस्से में कहा।

—और क्या, जहा दिलों की धड़कनें नहीं, हृदय का स्पन्दन नहीं, एक टीस नहीं, एक पीडा नहीं, सवेदना नहीं वहा औरत कहां?

—तो ले लो पीडाएं, जाओ श्यामी के पास, कहा मिलेगा तुम्हें सब कुछ, फिर उसने मुझे चिढाते हुए कहा—मैं तो तुम्हें भाई मानती हू, स्साली पहले तो नखरे करके तुम्हारे पास बैठी रही—तुम्हारे बिना दिल नहीं लगता और जब तुमने उसके गालों को छू लिया तो एक झटके में बहन बन गई। मैं तो ऐसी का मुंह भी देखना नहीं चाहता।

मैं अपने भीतर उमड़ी आह को पी गया। उसने फिर कहा, अच्छा, अब तो सो जा।

उसने कुछ ही क्षणों में खर्राटें भरने शुरू कर दिए। मैंने सोने का उपक्रम किया, किन्तु नींद नहीं आई। मुझे एक-एक क्षण कुछ समय पूर्व की वह अजनबी औरत याद आती रही। रोशनी में उसका गुलाबी चेहरा चमक रहा था। लिपस्टिक और पाउडर की महक उसके गालों पर फैली थी। उस रोशनी में उसने कहीं लाज, शरम का घूंघट नहीं ओढ़ा और किसी प्रकार का कुछ भी अभिनय तक नहीं किया। एक 'रूटीन'-सा निभाने में कितनी अभ्यस्त थी वह। कितना भोंडा था उसका नगापन, कितनी फूहड़ थी उसकी अश्लीलता। ऐसा लगा था कि कुछ ही क्षणों में मुझे कै हो जाएगी। जूठन कहीं की। छिः मुझे अब भी ऐसा लग रहा था कि कुछ चींटियां मेरे कपड़ों में चिपटी थीं जो अब भी रेंग रही हैं।

दूसरे दिन से मैं सावित्री को नए सिरे से देखने लगा था। सावित्री ने मुझे प्यार दिया, प्यार किया, मुझे निकट लेकर अपने जिस्म का स्वाद दिया। मैंने उसके अछूते ओठों को चूमा, उसके नंगे जिस्म पर मैंने पहली बार हाथ फेरा। कितनी अच्छी है सावित्री। किन्तु सावित्री कुछ विमुख-सी लगी। मैंने जाते ही फिर मौका पाकर उसके ओठों को चूम लिया। उसने मेरे हावभाव को लेकर कुछ एतराज किया— क्या हो गया है आपको?

मैंने कहा—सावित्री तुम बहुत अच्छी हो, केवल तुम ही अच्छी हो।

उसने मेरी बात पकड़ ली, वाक्य पकड़ लिया, कमजोरी पकड़ ली।

—कैसे अच्छी हूं, आपने किसी और को भी अपनाने की कोशिश की है क्या?

सावित्री ने कैसे मेरी कमजोरी पकड़ी, इसमें दोनों ही कमजोरियां पकड़ी गई शायद, श्यामी की भी कमजोरी और रात वाली कमजोरी। मुझे ऐसा लगा जैसे कि मेरे जूठे होठों का स्वाद कुछ भिन्न हो गया और सावित्री ने उसे पहचान लिया। मैं मन ही मन सावित्री का एहसान अपने सिर पर लादे था और अपनी कमजोरी पर शर्मिन्दा था और चाहने लगा था कि मैं सब कुछ उसके सामने प्रकट कर दूं कि उसने कुछ भूले की हैं और सावित्री उसे क्षमा कर दे। किन्तु इतना साहस जुटाने में असमर्थ था।

श्यामी के घर गया, पढ़ाने की एक औपचारिता पूरी की। श्यामी इन दिनों अधिक घुटने लगी थी, वह धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही थी। ऐसा महसूस किया उसकी लालिमा जैसे गायब होती जा रही थी, उसका रंग पीला पड़ने लगा था। उसकी पोशाक इतनी फीकी होने लगी थी जितनी वह स्वयं फीकी हो गई थी। वह कुछ बोलती भी नहीं थी जैसे उसके भीतर के सारे द्वार बन्द हो गए हों, भीतर के उमड़ते विचार जलने लगे हों, धुआं बना रहे हों और उस धुंए के निकलने के लिए कहीं निकास नहीं हो। मैंने पूछा भी—आजकल कुछ कमजोर हो गई हो।—नहीं तो, यह कहा उसने। और वह अपनी पुस्तकें उठाकर भीतर चली गई। कुछ गड़बड़ है श्यामी के, मैंने तो यही सोचा था।

एक दिन रास्ते में इन्द्र मिल गया। वह साईकिल से बाजार जा रहा था। मुझे देखकर उसने साईकिल रोक ली। एक पैर जमीन पर, दूसरा दूसरी ओर पैडल पर, हैन्डल थामे, आधा झुका हुआ वह मेरे से बात करने ठहर गया। मैंने ही कहा—'क्या हालचाल है इन्द्र ?

—ठीक हूं।

—कंवर साहब ठीक-ठाक।

—उनकी तबियत ठीक नहीं रहती, आप तो रास्ता ही भूल गए।

—अरे क्या बताऊं, फुरसत भी नहीं मिलती, अच्छा, कल आऊंगा, छुट्टी है न।

—अच्छा चलें, नमस्ते।

इन्द्र चल पड़ा, मैं चलते-चलते सोचने लगा दरअसल, मेरी गलती तो थी, मैं आने के बाद कंवर साहब से मिला तक नहीं। कहते हैं, नमक खाकर भूलना नहीं चाहिए और मैं भूल गया। कंवर साहब क्या सोचते होंगे।

मैं दूसरे दिन कंवर साहब से मिला। कंवर साहब पलंग पर लेटे हुए थे—बहुत उदास। मैं पहुंचा तो कंवर साहब उठकर बैठ गए। पहले उन्होंने मेरा हालचाल पूछा। मैंने इन्द्र की पढ़ाई के बारे में बातचीत की। उन्होंने असन्तोष प्रकट किया और स्पष्ट किया, कि वह ज्यों-त्यों भीतर ही रहता है, पढ़ने के लिए शायद ही बैठता है। उन्होंने इन्द्र की शादी को

अपनी भूल स्वीकारा।

मैंने इधर-उधर देखा, भागू नजर नहीं आया। मैंने पूछ ही लिया—कंवर साहब, भागू कहीं गया हुआ है क्या?—आपको पता नहीं सम्पत् जी, वह तो भाग गया और चिमनी को भी भगाले गया।

—अच्छा, कहकर मैंने आश्चर्य प्रकट किया।

कंवर साहब कहने लगे—यह भी मेरी भूल ही थी, सम्पत् जी मैंने सोचा भी यह था कि भागू को चिमनी बांध लेगी, लेकिन मुझे क्या पता था कि यह जानवर खूंटे सहित भाग जायेगा। खैर! चला गया तो चला गया। जमाना करवट ले चुका है, सम्पत् जी। अब पुरानी परिस्थितियों में जुड़ा रहना हमारी गलती है। अब पुराने दिन हमें भूलने होंगे। फिर चिमनी हमारे घर के लिए घातक सिद्ध होती। खुद इन्द्र की मां भी नहीं चाहती थी। वह प्रकाश देने वाली ज्योति नहीं, जलाने वाली आग थी। अच्छा हुआ, झगड़ा मिटा। मैंने तो चाहा था, पुलिस में रिपोर्ट कर दूं, लेकिन इन्द्र की मां ने मना कर दिया।

कुछ और परेलू बातों के बाद मैं होस्टल लौट आया। रास्ते में मुझे अपने आप हंसी आती रही—भागू भाग गया चिमनी को लेकर। शायद इन्द्र की मां ने भगाया है, उसे ही चिमनी की आग सुहाई नहीं। उसमें दोनों तरफ खतरा लगा होगा। शायद कंवर साहब और इन्द्र दोनों ही उसमें बच नहीं सकते थे। हो सकता था, आगे जाकर यह कंवर साहब और इन्द्र दोनों में विवाद पैदा कर देती।

होस्टल में आकर मैं अकेला कमरे में पड़ा रहा। मुकुन्द अभी तक नहीं आया। मैंने किचन में जाकर खाना खाया। शायद मुकुन्द विलम्ब से आए, इसलिए मैं उसका खाना थाली में डलवाकर अपने कमरे में ही ले आया। मैं अपनी खाट पर जम गया, मुकुन्द की खाट मेरे सामने बिछी थी। उसके मैले, अधकचरे कपड़े उसी पर अस्तव्यस्त गिरे थे जैसे मुकुन्द स्वयं एक अस्तव्यस्त आदमी हो। मैंने कमरे में प्रकाश फैलाया और अपनी पुस्तक खोल ली। मुकुन्द नहीं आया मैंने सोचा, शायद पिटकर चला गया हो। मैं पढ़ता रहा। बाहर आदमी का स्वर मन्द पड़ने लगा था, सड़क पर तांगों की आवाज अब भी आ रही थी। दूर इंजन की सीटी बज रही थी। होस्टल

का भी कोलाहल अभी शान्त था। मेरी पुस्तक पर रोशनी गिर रही थी और मैं अपने अध्ययन में दत्तचित्त था। तभी मुकुन्द ने अपने लड़खड़ाते पैरों से कमरे में प्रवेश किया।

मैंने कहा—मुकुन्द,तुम, और ····

उसने लड़खड़ाते स्वर में कहा—चोउ······प

—रोटी खालो, खाना ठंडा हो रहा है, मैंने बात बदली।

मुकुन्द वैसे तो होश में था, केवल उसके पैर और आवाज ही लड़खड़ा रहे थे।

मुकुन्द ने कपड़े खोले, थाली उठाई और खाने पर जुट गया।

—बहुत देर लगा दी, यार, मैंने पूछा।

—अरे, यार, चला गया था उस स्साली के पास, उसने बताया, फिर उसने आज पीने की माग कर ली। मैंने भी पीली। क्या कमाल है यार? सच बड़ा मजा आया।

मुझे लगा मुकुन्द अटक गया है।

—खाना तो ठंडा हो गया न, मैंने कहा।

—खाना कुछ नहीं, स्साला, वह बोला, अच्छा होता, बाजार में खा लेता।

लेकिन वह रोटियों को निगलता जा रहा था। कुछ देर तक तो वह बहक गया, फिर अपनी खाट पर लुढ़क गया और कुछ ही क्षणों में खर्राटे लेने लगा।

मुकुन्द का बाप पुलिस में सब-इन्सपैक्टर है। पैसा आता है अनाप-शनाप। जब जाता है, मर्जी आये उतना ही ले आता है। उस पैसे को भी रास्ता बनाना है। मुकुन्द ने इस पैसे के लिए ठीक रास्ता चुन लिया।

श्यामी के घर चहल-पहल शुरू हो गई। हरीश की शादी होने जा रही थी। सावित्री और श्यामी दोनों व्यस्त रहने लगीं। राधा और दया भी उसी घर में आ गई। एक अजीब माहौल बन गया—रंगीन माहौल। रंग-बिरंगी तितलियां फुदकने लगीं। कुछ दिनों के लिए मुझे पढ़ाने में छुट्टी मिल गई। सावित्री और राधा के पिताजी कार्यक्रम में अग्रणीय थे। बाहर के काम उनके सुपुर्द और भीतर का सावित्री की मां और दया के हाथ में। सावित्री

श्यामी, और राधा लुभावने कपड़ों में इधर-उधर विचरण करतीं। मैं कभी-कभी जाता, उन्हें दूर से ही देखता, शायद मैं इस माहौल में उपेक्षित पात्र था। मैं एक दिन गया, उस समय सभी ढोलक पर गीत, गा रही थीं। सावित्री नृत्य कर रही थी। श्यामी गुस्न और ढोलो-ताली लगी। मैं जब पहुंचता, सावित्री दूर से मुझे देखती जाती और कनखियों से मुस्करा देती। राधा कुछ दूसरी नजर से देखती जैसेकि मैं चोर हूं। श्यामी ऐसी बन जाती जैसे उसने कोई गुनाह किया हो। सावित्री की मां अन्दर से पुकारती—'आप शाम का खाना यहीं खायेंगे।'

मैं एक दिन ही शाम का खाना खाने गया, श्यामी का विशेष आग्रह था।

मैं खाना खाने लगा, उस समय कुछ युवक भी उस माहौल में सम्मिलित हो गये थे, उस समय मेरे भीतर कुछ और ही तरह की भावना पैदा हो गई। एक युवक ने मुझे खाना परोसा। मैंने देखा, सावित्री उसके पास खड़ी मुस्करा कर बात कर रही थी। उसने सावित्री के कन्धे पर हाथ रखा था। मैंने चाहा उसे फटकार दूं, 'कौन है तू?' ऐसा क्यों सोचा था मैंने, शायद इसलिए कि मैंने सावित्री को अपना लिया था। सावित्री मेरी है, यही तो। कुछ देर बाद मैंने देखा—श्यामी उसके सामने खिलखिला कर हँस रही थी। मैंने श्यामी को पहली बार इतनी खुली हँसी हँसते देखा। मैंने मन ही मन कहा—'रसाली कहीं की।'

मुझे बाद में मालूम हो गया कि वह युवक राधा का पहला मां से बड़ा भाई है, बाहर किसी कालिज में पढ़ता है। शादी में आया है, कुछ दिन ठहरेगा।

बारात आ गई और श्यामी की भाभी आ गई। चहल-पहल समाप्त हो गई, किन्तु श्यामी का एकाकीपन मिट गया।

शहर पर फिर गर्मी उतरने लगी थी। अब बड़े आदमी दोपहर को पंखे के नीचे होते और छोटा आदमी उनके ऊंचे मकानों की छाया में चलने लगा। दोपहर को हम लोग अपनी खटिया अपने बरामदों में ले लेते और पढ़ते-पढ़ते पसीना भी पोंछते रहते। कभी-कभार हवा का झोंका भी मिलता, कुछ देर वह ठंडा लगता, फिर गर्म हो जाता। हम लोग इस

जिन्दगी के आदी थे, इसलिए हमारे लिए कुछ भी अजीब नहीं था।

एक दिन मैं उसी दोपहरी को चीरकर श्यामी के घर पहुंच गया। वह अपने कमरे में पंखे के नीचे बैठी थी। मैंने इधर-उधर नजर डाली, उसकी भाभी कहीं नज़र नहीं आई।

—तुम्हारी भाभी चली गई क्या ? मैंने पूछा।

—नहीं तो भीतर है, उसने बताया।

मुझे भीतर का पंखा चलता नज़र आया।

—सो रही होंगी, मैंने कह दिया।

—हां जी, वह इतना ही बोली और पुस्तक खोलने लगी।

पढ़ाते-पढ़ाते मैंने फिर पूछ लिया—कैसी है तुम्हारी भाभी ?

—अच्छी है, उसने कहा।

उसकी भाभी को मैंने देख लिया था एक दिन पहले भी, जब वह शाम को हरीश के साथ घूम रही थी। चेहरे से तो सुन्दर ही थी, लेकिन उसके चेहरे पर कुछ गरूर टपकता था जो औरत के चेहरे को शोभा नहीं देता।

मैंने पूछा— कितनी पढ़ी-लिखी है तुम्हारी भाभी ?

—एम. ए. पास, उसने बताया।

मुझे आश्चर्य हुआ।

इस परिवर्तन से श्यामी में एक परिवर्तन आना चाहिए था। उसे नई जिन्दगी का एहसास होना चाहिए था, उसे एक नया वातावरण मिला है, एक चुलबुला वातावरण जिसमें एक नया रस है, अट्टहास है। जिन्दगी की हर शाम, हर सुबह बदलती है, हर पौधा नित नये फूलों के साथ आता है, उसकी हर हँसी में नयी मस्ती है, लेकिन श्यामी के फूल पर तो वही दोपहरी है। क्या हो गया है श्यामी को ?

मैंने पूछा—'तुम्हारे भाई साहब तो कारखाने में ही होंगे।'

—नहीं तो, वे भीतर हैं।

और मैंने मन में कहा—और दरवाजा बन्द है।

तभी बन्द खिड़कियों की दराजों में से चीरती दो आवाजें मेरे कानों में गिरने लगीं। दो पंखों की आवाजों के बीच वे आवाजें अस्पष्ट थीं, किन्तु यह अस्पष्टता भी एक अर्थ रखती है जिसे मैं और श्यामी दोनों ह

सहज रूप में समझ रहे थे। *श्यामी ने चाहे राखी का धागा मेरे हाथ में नहीं बांधा हो, उसने मुझे हरीश की तरह का भाई स्वीकारा था, इसलिए चाहते हुए भी मैं ऐसी हँसी नहीं हँस सका, जो श्यामी को कोई और अर्थ दे जाये।* श्यामी ने मेरी तरफ देखा था, और मैंने श्यामी की ओर। मैं शायद आवश्यकता से अधिक गम्भीर हो गया था। मुझे उस समय ऐसा लगा था कि श्यामी और भी अकेली होती जा रही थी।

ऐसा ही एहसास मुझे एक दिन फिर हुआ था जब हरीश और उसकी पत्नी दोनों बाहर बगीचे में बैठे थे और श्यामी दूर बरामदे में अपनी पुस्तकें गिन रही थी। मैंने उस समय भी पूछा था—'श्यामी तुम्हारी भाभी कैसी है।'

—अच्छी है, केवल यही कहती है वह।

और मुझे लगा, श्यामी इस एकाकी जीवन की घूंट निगल तो रही है, लेकिन उसे तकलीफ हो रही है। हम दोनों की एक भूल ने उसके और मेरे बीच में एक नाते का परदा डाल दिया है जिसमें खुलकर बात करने, हँसने का भी भरोसा नहीं छोड़ा, वरना चाहे हम आगे बढ़ने या न बढ़ने, किन्तु उस पुराने अस्पष्ट संबंधों से यह घुटन तो महसूस नहीं होती।

एक दिन मुझे बाहर से ही लौटा दिया गया और कहा गया—श्यामी बीमार है।

मैंने सावित्री से भी पूछा—क्या हो गया है श्यामी को ?

—मुझे मालूम हुआ कि वह बीमार है, मैंने बताया, तुम देखकर आना।

—आप भीतर नहीं गए क्या ? उसने पूछा।

—मुझे जाने नहीं दिया।

सावित्री ने दूसरे दिन बतलाया कि श्यामी को बुखार है और वह आपको याद कर रही थी।

मैं फिर श्यामी के घर गया। बाहर से ही उसकी भाभी ने कहा दिया—श्यामी को बुखार है, वह आज नहीं पढ़ेगी।

शायद मेरा और श्यामी का नाता केवल पढ़ने और पढ़ाने का था, अतः उसकी भाभी का इतना कथन ही पर्याप्त था और मुझे लौटना पड़ा। इसके अतिरिक्त भी कोई संबंध हो सकता है या नहीं जिसके आधार पर

मैं श्यामी के पास जा सकू, उसे देख सकू, उसे आश्वस्त कर सकूं। ऐसा मेरे सोचने मे नही आया। और फिर मैं उसकी भाभी से क्या कह कर भीतर जा सकता था, कौन हू मैं ? क्या संबध है मेरा ? और फिर मैं कह भी दू तो उसकी भाभी उसका क्या अर्थ लगाए, इन सभी बातो के इर्द-गिर्द घूमता मैं होस्टल आ गया—एक उदास और डूबी हुई मन.स्थिति लेकर।

सावित्री रोज श्यामी के यहा जाती थी। वह सही स्थिति मे अवगत करा देती थी। उसने बतलाया—कल डाक्टर ने श्यामी को 'टाइफाइड' डिक्लेयर कर दिया। अब वह कई दिन ठीक नहीं होगी, दिन लगेंगे।

—हा, अब तो वहा जाना ही बेकार है।

सावित्री ने एक दिन बतलाया—श्यामी बहुत दुबली हो गई है। पलंग से चिपक गई है। लेकिन वह अब भी आपको याद करती है। आपने कोई जादू तो नही कर दिया उस पर।

मेरी आंखों मे आंसू आने को हो गए।

—नही सावित्री, मैंने मन थामकर कहा—वह तो मेरी बहन बन गई थी। हमने बहन-भाई का नाता स्थापित कर लिया था।

वह कुछ आश्वस्त होकर बोली—वह आपकी बहन रह रहकर आपको याद करती है। कहती है—मास्टर साहब, आए नही क्या ? कब आयेंगे ? मुझे भूल ही गए।

मेरी आखों से अनायास आसू चू पड़े और सावित्री मेरे चेहरे को मुझे देखती रही।

ऐसे लगा जैसे भीतर का मैल धुल गया हो और मुझे सामान्य होने मे कुछ समय लगा। मैंने फिर कहा—श्यामी एक अच्छी लड़की है, सावित्री कैसे मिलू उससे ?

उसने बताया—उस पर बड़ा पहरा है। आपको ठीक बताती हू कि उसकी भाभी को कुछ सन्देह हो गया है। वह स्वभाव से निष्ठुर लगती है। वह आपको कोसती है। शायद हरीश की भावना भी आपसे विपरीत हो गई लगती है यह श्यामी की ही बेवकूफी है कि वह आपका नाम बार-बार लेती है। इसी से यह गड़बड़ हुई। लेकिन वह बेहोशी मे ही ऐसा करती रहती है।

—अच्छा ऽऽ।

मेरे हृदय पर एक हथौड़ा-सा गिरा। शायद मैं श्यामी को समझने में असमर्थ था। श्यामी मेरे सामने एक रहस्य बनकर उपस्थित हो गई।

कुछ दिनों के बाद सावित्री ने एक भयावह समाचार दिया—श्यामी पागल हो गई है। वह आपका नाम लेकर प्रलाप करती है। अब आप उधर मत जाना।

—क्या तुम्हारे घर······मैंने भयभीत होकर वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

—नहीं, वह योगी, मैं स्थिति सम्भाल लूंगी।

न जाने क्यों, मेरे पैर श्यामी के घर की ओर मुड़ गए। मैं बाहर खड़ा रहा, भीतर प्रवेश की हिम्मत नहीं हुई। पैरों में कम्पन, किन्तु एक साहस जुटा पाया था कि मैं हर प्रश्न का उत्तर देने को तैयार था।

सामने से हरीश द्वार पर आ गया।

हरीश तो मुझे देखते ही तड़क उठा—कैसे आए हैं, आप?

मैंने आत्मसम्मान से कहा—सुना है, श्यामी बीमार है, मैं उसे देखने आया हूं।

हरीश ने द्वार खोल दिया।

एक भारी जिज्ञासा और हर्ष को लेकर मैं भीतर गया। श्यामी दुबले-पतले शरीर को लिए पलंग पर एक पुस्तक लिए बैठी थी।

मैंने आवाज दी—श्यामी।

—ओ हो, आ गए आप, उसका स्वर बदला हुआ था।

मैं चुपचाप सामने कुर्सी पर बैठ गया और उसके बैठे हुए शरीर को देखने लगा। मुझे गहरी पीड़ा हुई।

—क्यों, ठीक हो, अब तो, मैंने उसे आश्वासन देने की चेष्टा की।

बस, वह तो फूट-फूट कर रोने लगी।

—श्यामी, श्यामी, मैंने साहस बंधाने का प्रयास किया, लेकिन उसका रोना रुका ही नहीं।

हरीश और उसकी पत्नी मेरे पीछे खड़े थे। वे एकटक श्यामी को देख रहे थे।

—चलिए, हरीश ने कहा।

—क्या हो गया इसके ? मैंने पूछा।

—आपकी मेहरबानी है, हरीश की पत्नी ने कहा, आप यहां से चले जाइए और फिर कभी नहीं आए।

मैंने यह बात सावित्री से कह सुनाई। वह हतप्रभ हो गई।

—तो आप चले गए वहां, है न, उसने मुझे डांटते हुए कहा।

—क्या करता, मन नहीं माना, सोचा, मैं उसको ठीक कर दूंगा, मैंने अपने विचार व्यक्त किए।

तो आप डाक्टर बन कर गए थे वहां, और वह हँस पड़ी।

किन्तु मेरे हृदय पर एक भारी बोझ आ पड़ा था जो उतारे नहीं उतर रहा था।

कभी-कभी घटनाएं आपस में ऐसा समझौता करती हैं कि वे सब मिल कर एक साथ आ टपकती हैं और आदमी को झकझोर कर छोड़ देती हैं। आदमी या तो टूट जाता है या टूटते-टूटते मामूली-सा बच जाता है, बस ऐसा ही हुआ था मेरे साथ।

श्यामी की गुत्थी में उलझा हुआ मैंने सावित्री के द्वार को खटखटाया।

—कौन, यह आवाज थी भीतर से।

…मैं, मैंने कहा, मेरी आवाज तो जानी पहचानी तो थी ही।

भीतर फुसफुसाहट हुई मर्दानी और जनानी दोनों आवाजें एक साथ आ रही थीं।

दरवाजा खुला। सावित्री की मां ने खोला था दरवाजा।

मैं कमरे में पहुंच गया। सावित्री नहीं आई। मैं बैठा रहा। थोड़ी देर बाद सावित्री की मां फिर आई। आते ही उसने मेज पर पैसे रखे और कह दिया…बस, आपका हिसाब-किताब हो गया। हमें पता नहीं था, आप ऐसे आदमी हैं। दया ने कहा—हमने बात झूठी मानी। अब श्यामी का आपने सत्यानाश करके छोड़ दिया। उसकी जिन्दगी बिगाड़ दी। हमने समझा, एक गरीब छोकरा है, अपनी पढ़ाई कर रहा है। बेचारा भला ही होगा। हमने अपनी लड़कियां तुम्हारे भरोसे छोड़ दीं और तुमने यह दिन दिखाया हमें। जाओ, फिर कभी इस घर में मत आना। तुम्हारे आज तक के पूरे पैसे हो गए। इसके पिताजी तो ये पैसे भी देने वाले नहीं थे। श्यामी

—अच्छा ऽऽ।

मेरे हृदय पर एक हथौड़ा-सा गिरा। शायद मैं श्यामी को समझने में असमर्थ था। श्यामी मेरे सामने एक रहस्य बनकर उपस्थित हो गई।

कुछ दिनों के बाद सावित्री ने एक भयावह समाचार दिया—श्यामी पागल हो गई है। वह आपका नाम लेकर प्रलाप करती है। अब आप उधर मत जाना।

—क्या तुम्हारे घर······मैंने भयभीत होकर वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

—नहीं, वह बोली, मैं स्थिति सम्भाल लूंगी।

न जाने क्यों, मेरे पैर श्यामी के घर की ओर मुड़ गए। मैं बाहर खड़ा रहा, भीतर प्रवेश की हिम्मत नहीं हुई। पैरों में कम्पन, किन्तु एक साहस जुटा पाया था कि मैं हर प्रश्न का उत्तर देने को तैयार था।

सामने से हरीश द्वार पर आ गया।

हरीश तो मुझे देखते ही तड़क उठा—कैसे आए हैं, आप?

मैंने आत्मसम्मान से कहा सुना है, श्यामी बीमार है, मैं उसे देखने आया हूं।

हरीश ने द्वार खोल दिया।

एक भारी जिज्ञासा और हर्ष को लेकर मैं भीतर गया। श्यामी दुबले-पतले शरीर को लिए पलग पर एक पुस्तक लिए बैठी थी।

मैंने आवाज दी—श्यामी।

—ओ हो, आ गए आप, उसका स्वर बदला हुआ था।

मैं चुपचाप सामने कुर्सी पर बैठ गया और उसके बैठे हुए शरीर को देखने लगा। मुझे गहरी पीड़ा हुई।

—क्यों, ठीक हो, अब तो, मैंने उसे आश्वासन देने की चेष्टा की।

सच, वह तो फूट-फूट कर रोने लगी।

—श्यामी, श्यामी, मैंने साहस बंधाने का प्रयास किया, लेकिन उसका रोना रुका ही नहीं।

हरीश और उसकी पत्नी मेरे पीछे खड़े थे। वे एकटक श्यामी को देख रहे थे।

—चलिए, हरीश ने कहा।

—क्या हो गया इसके ? मैंने पूछा ।

—आपकी मेहरबानी है, हरीश की पत्नी ने कहा, आप यहां से चले जाइए और फिर कभी नहीं आए ।

मैंने यह बात सावित्री से कह सुनाई । वह हतप्रभ हो गई ।

—तो आप चले गए वहां, है न, उसने मुझे डांटते हुए कहा ।

—क्या करता, मन नहीं माना, सोचा, मैं उसको ठीक कर दूंगा, मैंने अपने विचार व्यक्त किए ।

तो आप डाक्टर बन कर गए थे वहां, और वह हँस पड़ी ।

किन्तु मेरे हृदय पर एक भारी बोझ आ पड़ा था जो उतारे नहीं उतर रहा था ।

कभी-कभी घटनाएं आपस में ऐसा समझौता करती हैं कि वे सब मिल कर एक साथ आ टपकती हैं और आदमी को झकझोर कर छोड़ देती है । आदमी या तो टूट जाता है या टूटते-टूटते मामूली-सा बच जाता है, बस ऐसा ही हुआ था मेरे साथ ।

श्यामा की गुत्थी में उलझा हुआ मैंने सावित्री के द्वार को खटखटाया ।

—कौन, यह आवाज़ थी भीतर से ।

…मैं, मैंने कहा, मेरी आवाज़ तो जानी पहचानी तो थी ही ।

भीतर फुसफुसाहट हुई मर्दानी और जनानी दोनों आवाजें एक साथ आ रही थीं ।

दरवाजा खुला । सावित्री की मां ने खोला था दरवाजा ।

मैं कमरे में पहुंच गया । सावित्री नहीं आई । मैं बैठा रहा । थोड़ी देर बाद सावित्री की मां फिर आई । आते ही उसने मेज पर पैसे रखे और कह दिया…बस, आपका हिसाब-किताब हो गया । हमें पता नहीं था, आप ऐसे आदमी हैं । दया ने कहा—हमने बात झूठी मानी । अब श्यामा का आपने सत्यानाश करके छोड़ दिया । उसकी जिन्दगी बिगाड़ दी । हमने समझा, एक गरीब छोकरा है, अपनी पढ़ाई कर रहा है । बेचारा भला ही होगा । हमने अपनी लड़कियां तुम्हारे भरोसे छोड़ दीं और तुमने यह दिन दिखाया हमें । जाओ, फिर कभी इस घर में मत आना । तुम्हारे आज तक के पूरे पैसे हो गए । इसके पिताजी तो ये पैसे भी देने वाले नहीं थे । श्यामा

के पैसे तुम्हारे घर अपने आप पहुंच जायेंगे—समझे।

और वह एक झटके से भीतर चली गयी। मुझे एक गुस्सा भी आया और फिर दब गया। मैं उन्हीं पैरों से लौट आया। पता नहीं सावित्री कहां थी, थी या नहीं थी। मैं मन ही मन बडबडाता रहा—स्साली, कहती है, एक गरीब छोकरा है, पैसे क्या हराम के दिए थे।

मेरे पैर पड़ने जा रहे थे और मैं होस्टल में आकर पड़ा रहा। मुकुन्द पता नहीं कहा था, मैं अपना अकेलापन लिए पड़ा रहा, भीतर ही भीतर सड़ता रहा, श्यामी और सावित्री के भाई, मां-बाप को गालियां निकालता रहा, उनसे आपस में लड़ता रहा। कितना शून्य हो गया था यह शहर, दीवारें, वही सड़कें, बाग-बगीचे, फूल, क्यारियां सभी जैसे ज्यों की त्यों खड़ी हैं, लेकिन मुझे उनमें कतई जीवन नहीं लगा। सभी कुछ बेमतलब और बेहया है। सारा माहोल जैसे बुरी तरह बिगड़ गया है, निकम्मा और निर्जीव हो गया है।

एक दिन इसी शहर में मैं कितनी कल्पनायें लेकर उतरा था। कितनी मन मोहक तितलियों ने मेरे मानस को गुदगुदा दिया था, आज वही शहर कितना फीका और नीरस लग रहा है। मैं कुछ देर तक जी भर कर रोया।

इतना बड़ा शहर एक दिन श्यामी और सावित्री में सिमटकर रह गया था। इस शहर का अर्थ ही श्यामी और सावित्री रह गया था और आज वही फैलकर पूरा शहर बन गया—वास्तविक शहर जिसमें इन्सान का मूल्य पैसे से आंका जाता है—गरीब छोकरा। छि· मैं सावित्री और श्यामी तक सीमित होकर भी बड़ा बन गया था। मैंने उनसे प्रेम किया। उन्हें चाहने लगा, और वे मुझे। मैं सिकुड़ा और हीरो बन गया, हीरा बन गया और अब फैलकर फिर शून्य हो गया—एकदम शून्य।

शहर पर रात उतर आई और शहर काली और सफेद चादरों से ढक गया और मेरा हृदय घुप अन्धेरे में डूब गया था।

मुकुन्द कमरे में प्रवेश कर गया और मैं कमरे से बाहर। सड़क पर अकेला, रोशनी और अन्धेरे को पार करता रहा। जगमगाती सड़कें वितृष्णा भरी लगीं। एक नफरत चारों ओर फैलती जा रही थी और मैं सड़कें

पार कर एक गली मे चला गया। वही गली जहा एक रात को मैं और मुकुन्द दोनो गए थे। मैं उसी परिचित मकान के पास पहुंच गया जहा हम दोनों कुछ देर ठहरे थे, एक आदमी से बातचीत की थी। मैं बिना बातचीत किए ही उस सीढी पर चढ गया। वह अकेली बैठी पान चबा रही थी।

—आइए, आइए, उसने स्वागत किया।

कितनी अच्छी है बेचारी, मैंने अपने मन मे कहा।

मैं उसके पास ही रुईदार गद्दे पर बैठ गया। उसके गाल सहलाए, उसे चूम लिया। उसकी निर्धारित राशि उसके हाथ मे रख दी।

—आइए,

—नहीं, मैं तुमसे प्रेम करूंगा, तुम्हारे बालो को सहलाऊगा, तुम्हारे गालो को चूमूंगा, तुम्हारे अंग-प्रत्यग सहलाऊगा, मैं आज टूट गया हू, किसी बेहया इन्सान ने मेरे कलेजे को चकनाचूर कर दिया है। मेरी श्यामी और सावित्री छीन ली गई है।

—क्या कह रहे हो तुम, कुछ पी ली क्या? वह बोली और उसने मुझे अलग कर दिया।

—लो, और पैसे ले लो, मुझे प्यार करने दो, मैंने कहा, एक नोट और रख दिया। उसके हाथ में।

—लो, आ जाओ। और वह अनावृत होकर मेरे सामने गिर गई।

—नहीं, केवल इतना नही, कुछ और, तुम मेरे से लिपट जाओ। मुझसे प्रेम करो, सच मैं रो दूगा। तुम मेरी सावित्री हो। असली सावित्री, आओ न।

वह अपना अनावृत भाग मेरे और पास खीच कर आ गई।

—ऐसे नही, तुम प्यार करो मेरे से।

—मैं प्यार-वार नही जानती, आना है तो आ जाओ, नही अपने रास्ते लगो, उसने फिर अपना नगा जिस्म मेरे आगे करके कहा।

—तुम प्यार नही कर सकती?

—तू पागल तो नहीं है, मेरे और ग्राहक आने वाले है, आना है तो आ जा, नही भाग यहा से।

—और ग्राहक मैंने आश्चर्य से कहा।

—हां, हां, तू अकेला ही है क्या, फिर तो खा लिया कमा कर, चल बे, जा यहां से। पीलो क्या ? प्यार· प्यार··प्यार···पागल कहीं का।

और मैं उसी सीढी से नीचे उतर आया। सड़कों पर आदमी से आदमी जुड़े जा रहे थे। सभी के चेहरे सामान्य थे, केवल मैं ही था जो औरों से भिन्न था, एक धसा हुआ मकान, उजड़ी हुई क्यारी, एक मनहूस इन्सान।

कमरे में गया, उस समय मुकुन्द गीत गा रहा था। गीत का आलाप कर रहा था। मुझे उसकी मस्ती पर ईर्ष्या हुई।

—अरे, कहां गए थे मजनू, मुझे देखते ही रहा।

—बाजार, मैंने कहा।

—बाजार क्यों, श्यामी को रोने।

—श्यामी और सावित्री दोनों को।

—क्यों, वह भी पागल हो गई क्या ?

—नहीं तो।

—फिर ? उसकी आंखें मेरी आखों में कुछ ढूढने का प्रयास कर रही थी और मैं उन्हें झुकाए बैठा था।

आदमी यदि दुख को नहीं फोड़े तो वह, गांठ बन जाता है और वह जीवन भर की पीडा। हर इन्सान में कुछ छोटी पेटियां होती है जो अति संवेदनशील होती हैं उन्हें छूने पर सहृदयता और और सहानुभूति का स्रोत फूटता है जो इन्सानियत को पालता है। मैंने अपना दर्द मुकुन्द के सामने रखा और मुकुन्द की वह पेटी खुल गई। हम दोनों के तार जुड गए और मैं फूट पडा। उसने मुझे सहलाया, मेरे दर्द को पीया, मैं काफी हल्का महसूस कर रहा था।

उसने साफ-साफ कहा—सम्पत्, कई जगह हम गलती कर जाते हैं। हमारा उनमें क्या सम्बन्ध हो सकता है। हमें उतनी ही सीमा रखनी चाहिए जिससे हम निभ सकें। तुम दरअसल अभी सुलझे नहीं हो। तुम उनमें इतने घुल-मिल गए जैसे कि तुम्हारी हों। निरन्तर निकट बैठने से यह स्वाभाविक है।

—मैं तो आदमी खुरदुरा हूं, मित्र।

—तभी तो तुम भोग रहे हो, वरना वजे तो वजाओ नही तो तोडो और खाओ। तुम तो आगे निकल गए, लैला और मजनू वाला पागलपन। चलो, अब तो छिटकाकर आ गए। बच गए, अब पढ़ो और लाइन पार करो।

आवारा और अल्हड़ समझा जाने वाला मुकुन्द कितनी समझबूझ की बात करता है, मुझे आश्चर्य हुआ। मैं उसे मार्गदर्शन कराता था, आज वही मेरे लिए प्रकाशस्तम्भ बन गया, भूले-भटके का एक मात्र सहारा।

परीक्षा मे एक मास शेष था। पुस्तकें सम्भाली तब महसूस हुआ कि, अभी कुछ किया ही नही, कितना करना शेष है सामने एक पहाड़-सा उग आया। दरअसल, इतना कुछ बेवकूफी मात्र था, बिलकुल बेमानी और बेमतलब। कुछ पुस्तकें और कुछ नोट्स जुटाए और चित्त को केन्द्रित करने का प्रयास करने लगा। श्यामी और सावित्री अनायास बीच में अड जाती, हटाने से भी नही हटती, तब वह विशाल पहाड़ और विशाल हो जाता। मन में एक घबराहट बनती, किन्तु प्रयास मे जुटना मुझे आताथा।

एक-एक दिन घटने लगा और बोझ बढने लगा। मनमौजी मुकुन्द भी पुस्तक लेकर बैठता था। रात बारह बजते, सुबह चार बजे फिर उठते। और काम भी क्या था ? परीक्षा ऐन निकट आ गई और फिर उसे समाप्त होने में भी विलम्ब नही लगा। अर्थशास्त्र का पेपर कुछ खराब भी हो गया, शेष पेपर ठीक-ठीक हो गए।

परीक्षा समाप्त होने के दूसरे दिन रास्ते मे अचानक सावित्री मिल गई। वह स्कूल से पैदल आ रही थी और थी अकेली। मुझे देखकर वह हर्ष से गद्गद् हो गई। उसने मुझे देखते ही नमस्ते की और ठहर गई।

—क्या हाल है तुम्हारा ? मैंने पूछा।

—ठीक ही हू। उसने उत्तर दिया।

—श्यामी की सुनाओ।

—वह भी ठीक हो गई, स्कूल उसने छोड दिया है, उसने बताया।

—क्यो ?

—कमजोर हो गई थी।

—वह पागलपन?

वह दूर हो गया, उसने बताया।

तुम लोगों ने मेरे साथ व्यवहार अच्छा नहीं किया, मेरे मुंह से निकल गया।

—मेरा क्या वश था, वह बोली।

—पढ़ाई कैसी चल रही है?

—बस, चल रही है।

वह इधर-उधर देखने लगी थी। उसे शायद कोई भय था, एक झिझक थी, खुलकर कुछ कहना नहीं चाहती थी, इसलिए 'अच्छा चलूं' कहकर चल पड़ी।

मेरे पुराने घाव फिर उभर आए। दिल में एक हविस उमड़ी कि मैं किसी प्रकार श्यामी से मिल आऊं। एक दिन उसके घर के पास से निकला, दूसरे दिन दीवार को पार करके देखा, कहीं नजर नहीं आई। फिर मन ही मन सोचने लगा कि अब भी कुछ शेष है क्या? अब तो अपमानित होने के अलावा कुछ भी बाकी नहीं है, सम्पत्। यह शहर है जहां आदमी का मूल्य नहीं, पैसे की कीमत है। आदमी का माप उसका पैसा है। पैसे से आदमी बिकता है, औरत बिकती है, प्यार बिकता है। तुम पैसे के लिए यहां आए थे। अच्छा है, तुम अपने आप को बचाकर यहां से खिसक जाओ। हरीश कारखाने का मालिक है, दो गुंडे पीछे लग गए तो कहीं के नहीं बचोगे, यह बात एक दिन मुकुन्द ने समझाई थी। प्रेम-व्रेम के चक्कर में मत पड़ो। ये बड़े आदमी हैं, ये आदमी को पैसों से खरीद सकते हैं, बेच सकते हैं। तुम एक घंटे में बिके हुए आदमी थे, इससे बड़ी तुम्हारी परिभाषा नहीं।

फिर एक दिन कंवर साहब के यहां भी गया। कंवर साहब अभी स्वस्थ नहीं हुए थे। इन दिनों उनके लिए एक बड़ी बात और हो गई कि जागीरी का जो कुछ मिलना था, उनके बड़े भाई को मिल गया और कंवर साहब को चर्चा हुई मिली—'आह'। उसे पड़े-पड़े पी रहे थे। फिर इन्द्र से मिला, उसके पेपर नहीं हुए थे।

होस्टल आया तो मालूम हुआ कि मुकुन्द आने को है। उसका तांगा

बाहर खड़ा है।

मैंने कहा —अभी जा रहे हो।

—यहा क्या करना है, यार ? घर जायेंगे। ऐश करेंगे। यहा होस्टल की रोटियो से तग आ गये है। तू क्या करेगा यहा ?

—एक दो दिन और ठहरते, मैंने कहा।

—यहा क्या रखा है ? अभी मन भरा नही क्या ?

उसने बिस्तर बाध लिया था। मैंने कुछ सामान उठाया और कुछ उसने। तागे पर बैठकर हम स्टेशन जा पहुचे। स्टेशन से गाड़ी मे और गाडी ने सीटी दी। 'टा टा' कहकर मुकुन्द विदा ले गया।

मैं होस्टल में आ गया और कुछ देर अकेला ही अपनी खाट पर पडा रहा। होस्टल की चहलपहल धीमी हो गई थी। कुछ लोग चले गए थे, केवल वे लोग शेष थे जिन्हे स्थानीय परीक्षा देनी थी। कमरा उस दिन बहुत सूना-सा लगा। मुकुन्द की खाली खाट बड़ी अटपटी लगी थी, बिल्कुल डरावनी।

होस्टल से बाहर निकला, कुछ देर गली मे खडा रहा। इक्के-दुक्के आदमी इधर-उधर जा रहे थे। होस्टल के पास ही निकलती गन्दी नाली थी जिस पर मच्छर और मक्खिया भिनभिना रही थी, कै होने वाली बदबू फैल रही थी। मैंने मुह ढक लिया और आगे चल पडा। अब तक मुझे यह बदबू क्यो नहीं महसूस हुई। आज मै सब कुछ ध्यान से क्यो देख रहा हू, शायद इसलिए कि मुझे अब कुछ देखने को शेष नहीं रहा। एक लम्बे अन्तराल तक मेरी आखो मे केवल दो तस्वीरें थी। आगे-पीछे वे मेरी आखो में समाई रहती। वे आंखो से निकल गई तो अब मैं शेष दुनिया को ध्यान से देख सकता हू।

मैं उस गली से सरक कर सड़क पर आ गया। यहा शहर चल रहा था इक्के पर, तागे पर, रिक्शा पर, कार मे, जीप मे, साइकिल पर, मोटर साइकिल पर, कई आवाजो के साथ, भिन्न-भिन्न प्रकार की, एक दूसरे से घुली-मिली। सभी अपनी-अपनी धुन मे भागे जा रहे थे। सड़क के दूसरी ओर दो भूरी-भूरी लड़कियाँ आपस मे हँसती, मुस्कराती, [illegible] देखती चली जा रही थी, श्यामा-सावित्री की तरह एक साथ। भीतर

तड़फ़ उठी, फैली और बैठ गई। एक लम्बी सांस, पीड़ा भरी और फिर शान्त हो गई। कुछ बना, कुछ टूटा फिर छितरा गया।

पास से वेग के साथ एक प्रौढ औरत निकली। पूछा—क्या बजा है ?

—पांच बजे होंगे।

वह सुना-अनसुना कर आगे निकल गई।

मैं फिर आगे निकला और ऊचाई पर जाकर फिर ठहर गया। सूर्य की आखिरी किरणें बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं पर कुछ देर रुकी रहीं और फिर खिसक गई। सारा शहर धुएं में डूबा हुआ था। दूर बिजलीघर की दो चिमनियां ऊंचा-ऊंचा धुआं फेंक रही थीं वह धुआं शहर को ढके जा रहा था, ऐसा लगा जैसे कि कुछ ही घंटों में शहर धुएं में डूब जाएगा। थोड़ी देर में एक भिखारी का लड़का आया और बोला—'बाबा, पैसा, तेरे को भगवान देगा।'

नशा की भांति मैंने उस पर ध्यान नहीं दिया। पास की सड़क वाहन के कोलाहल से कराह रही थी।

वहां से उठकर मैं आकर बैठ गया। यहां प्रकृति को काट-छांट कर रमणीय बनाया जा रहा था, सुन्दर-सुन्दर फूलों को कैदखाने में डाल रखा था। मुझे ऐसा लगा था कि यहां का समूचा रूप ही कृत्रिम है, धोखा है। सड़कों पर ऐसा ही बनावटी आदमी और औरत एक बेमानी जिन्दगी ओढ़े घूम रहे हैं।

वहां से उठकर मैं सीधा होस्टल पहुंच गया। किचन में खाना खाया और फिर खाट पर चला गया।

आज नींद आनी कठिन हो रही थी। परीक्षा थी, तब सोचते थे कि इसके समाप्त होते ही दिन-रात मन भर कर नींद लेंगे, किन्तु अब नींद आ ही नहीं रही थी। कुछ देर परीक्षा के पेपरों की उधेड़-बुन में उलझता रहा, पास-फेल का निर्णय लेता रहा। अब तक शहर सोया नहीं था। सड़कों पर फिल्मी गीत बज रहे थे, दूर इंजन की सीटी बज रही थी, अब भी गाड़ियों के हॉर्न सुनाई दे रहे थे, तांगों के घोड़े अब भी सड़क पर पैर पीट रहे थे।

मैं विचारों में डूबा रहा और शहर सोया हुआ लगा।

दूसरे दिन मैं इतना ऊब गया था कि मुझे सारा शहर ही वीरान और

उजाड़-सा लगा। एक क्षण भी यहा ठहरने को मन नही कर रहा था और मैं शाम को प्रस्थान कर गया।

मैंने जाते ही मां के पैर छुए, और आशीर्वाद लिया उसके बाद पिताजी आ गए, उनके भी पैर छुए और आशीष ली। मुहल्ले के बच्चे इकट्ठे हो गए। जाते समय मीठी गोलियां ले ली थी, एक-एक गोली उनके हाथ में दे दी। सभी खुश होकर चले गए। फिर मा से बातचीत चालू हुई। मा ने सबसे पहले मेरे मुह की ओर देखा और बोली —'बेटा, बहुत दुबला हो गया है, यह पढाई तेरे किस काम की, बहुत हो गया, अब रहने दे।'

—मां, मैंने कहा, इम्तिहान देकर आया हू न। मेहनत की है, कमजोर तो होऊंगा ही।

—अच्छा, बोल, परचे कैसे हो गए ? मा ने पूछा।

—ठीक हो गए।

—पास तो हो ही जाएगा, मा ने विश्वास के साथ कहा।

—अब तू थोड़ा घी खा ले, पिताजी ने बीच ही मे कहा।

—बोल, क्या बनाऊ तेरे लिए, मा ने पूछा, चाय का दूध।

—चाय बना दे मा,

—अरे, तेरी चाय तो खराब कर रही है, मा ने बताया।

मा ने चाय बना दी और मैं पीने लगा।

उसी समय मा ने बताया—मगनी की शादी कर रहे है, बस पन्द्रह दिन और रहे हैं।

—अच्छा, तभी घर को लीपा-पोता है, घर नया-नया कैसा नजर आ रहा है ?

—हा, मा ने अपनी सफलता पर हँसते हुए कहा।

—मा ने थोडी चाय पिताजी को भी दी और थोड़ी-सी खुद भी ले लीं।

चाय पीते-पीते मैंने मगनी और कुन्दन के बारे मे पूछा। मा ने —कुन्दन तो काम पर गया है और मगनी शायद ताई के घर ग

मैंने पूछा—ताया का क्या हाल-चाल है ?

—ठीक है, अपनी गाड़ी खींच रहे हैं।

फिर मैंने सभी पड़ौसियों का हालचाल पूछा। मैंने सभी स्थितियों की जानकारी दी। इतने में मगनी आ गई। उसने पुराने कपड़े पहन रखे थे। उसने मुझे देखते ही आंखें नीची कर ली। मैंने खड़े होकर उसके सिर पर हाथ फेरा। उसने अप्रत्याशित लज्जा ओढ़ रखी थी। और इस लाज का कारण उसका निकट भविष्य में होने वाला विवाह था। वह तुरन्त भीतर चली गई।

मैंने अपने कपड़े बदले। मा ने पूछा—सारा सामान ले आया न अब तो। वहां कुछ छोड़ तो नहीं आया।

—हां, मा, अब मैं वहां कुछ भी छोड़कर नहीं आया, अब तक बहुत कुछ छोड़ कर आया करता था।

मेरी बात का अर्थ मां नहीं समझी और न मैं समझाना ही चाहता था।

मा ने अपनी राय प्रस्तुत कर दी—अब बेटा, बहुत हो गया। पढ़ लिया जितना पढ़ना था, अब नौकरी कर ले, समझा।

—हां, मा, मैंने यों ही कह दिया, अब नौकरी ही करनी है, पहले मेरा रिजल्ट तो आने दो।

—नतीजा, मा बोली, अरे, फेल तो तू होता ही नहीं, फस्ट आया करता है। फस्ट नहीं तो दूजे नम्बर आ जायेगा।

मा बेचारी क्या जाने, अब की बार कितनी अनजानी परिस्थियों में से गुजरा था। उसे क्या पता, तेरे बेटे को शहरी माहौल ने डस लिया और वह बड़ी मुश्किल से उसे छुटकारा पाकर आया है।

कुन्दन ने शाम को आते ही अपनी पहलवानी नक्शों का बखान शुरू कर दिया। उसके तौर-तरीके देखकर सभी को हँसी आती थी। वह अपनी हर कुश्ती का चित्रण अपनी ही शैली से करता था, जिससे हँसी आए बिना नहीं रहती। मां कहती—रहने दे अपनी बड़ाई, लेकिन मन-ही-मन हर्षित होती थी।

वह कहता—मा, क्या समझती है, अभी क्या है, देखा तेरे बेटे की करामात। इन भुजाओं में जादू है जादू। फिर वह अपनी भुजाओं को उठाकर, फैलाकर बताता। मा खुश हो जाती।

तक कोई ऐसा इन्सान आया ही नहीं जिसने इन्सान को यह बताने की चेष्टा की हो कि उसमें भी प्रकृति जैसी सामर्थ्य ही है जिसका उपयोग किया जा सकता है। ऐसा लग रहा था कि सांस भरे चमड़ी के थैले इधर-उधर घूम रहे थे और सास निकलने पर इन्हें निर्धारित जगह पर जला दिया जायेगा, फूंक दिया जायेगा। इन्सान का इससे बढ़कर कोई मूल्य नहीं था। इस जीवन में एक ही खासियत थी कि ये मरे हुए इन्सान को भी मूल्यहीन नहीं मानते। उसे भी 'भूत' के रूप में जिन्दा रहने का अर्थ देते हैं, यही जीवन का शाश्वत सत्य है, यही शाश्वत दर्शन।

छोटी मामी ने फिर भूत की कहानी सुनाई और मुझे जोर-जोर से हँसी आ गई। जैसे मामी ने अपनी मान्यताओं को कोई गति नहीं दी है, उसका चिन्तन शाश्वत है। उसे मालूम ही नहीं हुआ कि इन्सान निरन्तर तरक्की करता जा रहा है,उसकी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सूझ-बूझ कितनी आगे निकल गई है, मामी ने केवल पांच बच्चे पैदा किए हैं इस युग में यही उसकी उपलब्धि है। इस उपलब्धि से उसके मुख के गौर वर्ण पर कई काले नक्शे तैयार हो गए। दांत जिन पर वह ब्रुश किया करती थी, वे बाहर निकल आए। दोनों गाल पिचक कर बुढ़ापे की भूमिका बनाने लगे। मैं कहने जा रहा था—मामी तू खुद मुझे भूतनी-सी लगती है, मुझे तेरा डर लगता है। लेकिन उस समय वह मेरे लिए मीठी-मीठी चाय बना रही थी और मेरा ध्यान उफनते पतीली पर था जो उसका पूरा समर्थन दे रहा था। बड़ी मामी के घर में भैंस थी और वह छकवा घी और मक्खन खिला रही थी। मैं ना करता, तब वह कहती अरे, सम्पत्, कितने दिन में तू आया है, फिर पता नहीं, कब आयेगा, तेरे से बढ़िया है कोई चीज धरती पर। खाने मन भरकर खाने। मैं जिस घर में भी घुसा, मुझे दूध के भरे हुए कटोरे मिले। क्या भावना है इस धरती की—जैसे इन मैली चमड़ियों के भीतर एक इन्सानियत का दिल निवास कर रहा हो।

शाम कुछ ठंडी हो जाती तो मैं पास के एक टानू के धोरे पर जाकर बैठ जाता। एक अविवाहित जवान लड़की भेड़ें चराती थी। उसने अपनी घघरी दुहरी कर ऊंची बांध रखी थी। उसके झरोखेदार छलनीनुमा घ रंग से उसकी जवानी झांकती थी। मैंने अपनी आंखों से उसकी आंखों में

झाकने का प्रयास किया। वहा कोई प्रतिक्रिया नही थी, तब मे अपनी विकृत भावनाओं पर स्वय लज्जित हुआ। मैंने महसूस किया कि प्रकृति अपना मूल पाक रूप इस धरती पर समेटे बैठी है, यहा किसी विकारग्रस्त प्राणी ने अभी तक पैर नही रखे, अन्यथा यहा भी मैला धूआ फैल जाता। मैं उस रेतीले रमणीय टीले पर अंगुलियो से लकीरें खीचने लगा। तीन अलग-अलग विभाजन किए। एक शहर जिसमे पूरी इन्सानियत राख बन रही है, जलते मानवीय मूल्यों का धूआ आकाश में मडरा रहा है, दूसरा मेरा गाव जिसमे आधा गांव शहरी लिवास के चपेट मे आ गया है, लोग बौखलाए हुए बचने को पीछे भाग रहे है। किन्तु लपेट से बच सकेंगे और यह गाव जिसमे जल्दी ही शहर उतरने वाला है।

तीन दिन तक हम दोनो ने इस गाव के दिलो को टटोला जहा इस देश की गंगा लहलहा रही थी, मटमैले किनारो के बीच। मैं स्वय हरा हो गया। मेरे पास ऐसा कोई बर्तन नही था जिसमे इस धरती का पानी डाल सकू और फिर अपने गाव, अन्य गाव और शहरो पर छिडक सकू जिससे सभी पवित्र हो जाए। मेरे अधिक रहने से शायद यही खतरा था कि मैं अपने पैरो की मैली धूल इस धरती पर छोड दू और वह सारे गाव को चौपट कर जाये।

कहते-कहते भी हमे इन्होने तीन दिन ठहरने को बाध्य किया। चौथे दिन बडी कठिनाई से हम रवाना हो पाए। उनकी एक गूज, हमारे कानो मे ठहरी रही, अभी तो आए है। एक दिन तो ठहरो। विदाई के समय जैसे सारा गाव इकट्ठा हो गया हो। हाथ जोडकर जो भावभीनी विदाई थी उसमे प्रेम का मूर्तरूप विद्यमान था।

एक दिन बारात आई उसमे सजा-सजाया दूल्हा आया। सभी औरतो ने शृंगार किए, गीत गाए। दो दिन की अनूठी रौनक के बाद मगनी को पूरी औरत बनाकर बिदा दे दी गई। मगनी फूट-फूट कर रोई, मां की आखों ने झर-झर आंसू फेंके। पिताजी ने पहली बार अपने नैनो का पानी दिखाया। मैं अपने आप को नही रोक सका। कुन्दन का पहलवानी शरीर भीतर आकर फूट पड़ा। सारी चहलपहल उठ गई और सारा घर सूना और वीरान लगने लगा। हमने पहली बार घर मे मगनी के [illegible] को पहचाना। तीन दिन बाद फिर मगनी घर में आ गई। एक

घर में गुलाबी रंग बिखर गया, घर की चहारदीवारियां फिर नये गीत गुनगुनाने लगी। ममनी के ओठों पर नयी तरह की मुस्कान थी जिससे मां का हृदय पुलकित हो गया। वे दोनों कोने में बैठकर मन की बातें करती थी और मा मन-ही-मन खुशी से फटी जा रही थी। इसका एहसास केवल उन दो दिलो को ही सकता था, अन्य तो उन्हें देखकर थोड़ा बहुत समझ सकते थे।

अब तो मुझे अपने 'रिजल्ट' की चिन्ता थी।

और एक दिन 'रिजल्ट' का अखबार मेरे सामने आ गया, किन्तु उसमें मेरा रोल नम्बर नही था यानि कि इसका सीधा-साधा अर्थ था कि मैं अनुत्तीर्ण हो गया। मैने कई बार इधर-उधर अखबार के पन्नो को टटोला, लेकिन उसका एक ही अर्थ निकला कि मेरा दो वर्ष का श्रम व्यर्थ गया। मेरे पैरो के नीचे की धरती खिमकने लगी, आसमान मे भूचाल-सा आया। दीवारें हिलने लगी और मेरी आखों के सामने अंधेरा छाने लगा। मै वहा ठहर नहीं सका, घर आया तो मुह नही खोल सका। आखें मौन नही रह सकी, वे टप्-टप् बरसने लगी। मा ने पूछा—क्या हो गया, बेटा।

—कुछ नहीं, मा कुछ नही।

—कुछ तो हुआ है, बता तो सही, मां ने मुह के नजदीक आकर पूछा।

—मा, मैं फेल हो गया और फिर फूट पड़ा।

... वाह रे, वाह, यह भी कोई रोने की बात है, फेल हो गया तो हो गया, तू पहली बार ही तो फेल हुआ है, कोई बात नहीं, अब की बार पास हो जाएगा।

मा ने ढाढस तो बधाया, लेकिन वह खुद सहन नहीं कर सकी, वह भी मेरे साथ रोने लगी।

मां और बेटा साथ-साथ रो रहे थे।

मैंने अपने जीवन मे पहली बार असफल होने की पीड़ा की अनुभूति महसूस की। इस पीड़ा को कैसे रोया जाए, मैं नहीं जानता था।

पिताजी ने सुना, वे बौखलाये तो नहीं, लेकिन वे घुटने लगे। उनकी घुटन इसलिए नहीं थी कि मैं असफल हो गया, लेकिन इसलिए थी कि मैं उनके घर मे एक बेमतलब आदमी बनकर रह गया हू। वे मेरे सबध मे

चुपचाप रवैया रखते थे। इसलिए इस बारे मे भी टीका-टिप्पणी तक नही की। कुन्दन ने बात स्पष्ट ही कर दी। उसने असफलता की बात सुनते ही साफ कह दिया—'क्या रखा है पढाई-लिखाई मे, नौकरी कर लो न। खुद भी सुख पाओ और हम लोगो को भी। खुद की चर्बी घटाते हो और हमारो भी।'

मा के अलावा मेरे प्रति किसी को भी सहानुभूति नही लगी। मुझे यह पता नही था कि मै एक दिन ऐसी स्थिति मे आ जाऊगा जहा मेरा अर्थ केवल शून्य हो जायेगा, एक आवारा और अर्थहीन व्यक्ति। दिल मे एक टीस उभरी और रह-रहकर पीडित करने लगी। मैंने चारो ओर एक नजर दौडाई, अपने सभी परिचित अड्डो तक क्षणो मे चक्कर लगा आया कि इस स्थिति मे कौन तेरा है जो तेरे आसुओ को पोछ सके या सभी के लिए तू नफरत का पात्र है। दो दिन तक इसी विचार मथन मे न खाया, न नीद ली। कुंदन ने एक ताना कस दिया—क्यो सड़ा रहा है अपने शरीर को, आगे तो पहलवान है ही, कही जाकर काम ढूंढ न।' इस बात को सुनकर पिताजी ऐसे हँसे जैसे कि वे भी इसी विचार को अपना समर्थन दे रहे हैं। बेचारी मा ने कहा भी—तुम्हारा क्या लेता है, फेल हो गया तो गुनाह हो गया क्या? फेल आदमी ही होते है।' लेकिन मा के ये शब्द भी मेरे भारी बोझ को ढोने मे सहारा नही दे पा रहे थे। मैं अब अपना समाधान ढूंढने मे लगा था—एक ऐसा समाधान जिसमे मैं अपना बोझ भी न बनू।

मैंने अपना बिस्तर फिर होस्टल मे जाकर डाल दिया। होस्टल मे मेरे सिवाय कोई नही था। दो दिन तक मै कही नही गया। मैंने अपनी पूजी सम्भाली। पूजी अब भी मेरे पास इतनी थी कि मै कम से कम इस शहर मे बीस दिन गुजार सकता हूं। इस सूने वातावरण मे मेरा मन उचटा हुआ नहीं था। इसका कारण एक मात्र यही था मुझे नफरत की नजरों से बचना था। कोई आता नही था यहा। मुझे आया जानकर भगी की छोकरीनुमा बहू जरूर आ जाया करती थी जो मेरे कमरे के आगे से साफ कर जाती, लैट्रिन साफ कर जाती और चली जाती। उसने आते ही पूछा भी था—'आप कैसे आ गए, बाबूजी, अब तो छुट्टियां हैं।'

—ऐसे ही आ गया, मैंने चलते मे कह दिया।

—आपके मा-बाप नहीं है क्या ?

—है तो सही

वह कुछ देर तक हँसी, यह पहली हँसी थी जो मेरी पीडा को सहला रही थी।

वह पैर पसार कर ठण्डी छाया मे बैठ गई। उसने अपनी कमर से बधा हुआ एक आम निकाला और दोनो हाथो से उसे पीच कर चूसने लगी। मैं उसकी गोरी अगुलियो और लाल ओठो के बीच पीले आम को गौर से देखता रहा जैसे कि मेरे दर्द पर कोई शीतल मलहम लगा रहा हो। मैं उसकी मस्त और अल्हड़ जिंदगी से अपनी बेमानी जिस्म की तुलना करने लगा।

उसने आम खाते-खाते ही कहा—आपके मा, बाप वहा होते तो आप यहा थोड़े ही आते, बाबूजी।

—वाहरी, तू बडी आई समझने वाली, मैंने उसी मस्ती से तार जोडते कहा, मा, बाप तो हैं ही मेरे।

—तो मेरे मां, बाप की तरह बेरहम होंगे।

—कैसे ? मैंने कुछ जानने की चेष्टा से कहा।

—कैसे क्या ? मुझे कभी ले जाते ही कही, वह बोली।

—तू यहा दुखी है क्या ? तू तो अपने पति के पास है।

वह फिर मुस्कराई। उसने फिर शर्म से मुह नीचा कर लिया। वह आम खा चुकी थी।

—पीहर तो पीहर ही होता है, बाबूजी, यह कहकर उसने झाड़ू उठा ली।

वह चली गई और मैं फिर अपने विचारों मे लीन हो गया। मैं जिस उद्देश्य मे आया था, मुझे उसे पूरा करना चाहिए। इस गहन अघेरे झंझा-बात मे मुझे एक किरण दिखाई दी थी और मुझे वहा जाने का साहस जुटाना था। बिमला के पिता इसी शहर मे इन्सपैक्टर बनकर आ गए। वे मुझे कही नौकरी दे सकेंगे, केवल जाने की देरी थी। दो दिन मैं इसलिए पड़ा रहा कि मैं अपनी असफलता का मुह उन्हे जाकर कैसे दिखाऊ, लेकिन इसका इलाज भी क्या ? जिन्दा तो रहना ही पड़ेगा, जिन्दा भी अपने लिए

नही रहना, पिताजी के लिए भी नही रहना, कुन्दन के लिए भी नही, केवल मा के लिए। मर गया तो मा अपनी शेष जिन्दगी रोकर गुजारेगी, इसलिए जिन्दा रहना जरूरी था। मां मुझे जिन्दा रहने के लिए विवश कर रही थी, वरना नौकरी मिले या न मिले—मौत तो इस शहर मे सस्ती है, बिल्कुल सस्ती, रेल का इजन जो है, कोई पीड़ा नही होगी। इस पीडा से भी कम पीडा होगी कहा—एक झटके से साफ। यह कमजोर विचार कई बार उमडा था उन दिनो, लेकिन मा का चेहरा तुरन्त सामने आ जाता।

पड़े-पड़े यह भी तो सोचा था कि श्यामी के भाई हरीश के पास जाऊ, सारी कहानी कह दू और उसके कारखाने मे नौकरी माग लू। फिर यह विचार एकदम बदल दिया। मेरी जिन्दगी को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले केवल दो चेहरे—श्यामी और सावित्री। काटने वाले जहरीले साप—एक झटके से। इस विचार को साप की तरह दूर दे मारा।

फिर कपडे पहने और इन्सपैक्टर के कार्यालय की ओर चल पडा।

चिक के आगे की बैंच पर बैठ गया। हिम्मत करके प्रवेश लेने का विचार किया। एक चिट् ली और लिख दिया सम्पत्। और चपरासी से कहा—साहब को दे दो।

बुलाने पर मैंने भीतर प्रवेश किया, सचमुच वही बैठे थे। मैंने उन्हे नमस्ते की और निकट जाकर उनके पैरो को छूआ।

—अरे आओ, भई, सम्पत्, क्या हाल-चाल है, कहा रहते हो? एक साथ वे इतना कुछ कह गए।

मैंने कहा—ठीक हू, गुरुजी!

—आज कैसे आना हुआ, अब तक तो कभी आए नही, तुम तो यही थे।

—पढाई मे लगा रहा, इसलिए आना नही हुआ।

—अच्छा, अच्छा, ठीक है, रिजल्ट निकल गया न तुम्हारा, डिवीजन बनी या नहीं।

—गुरुजी, मैं तो फेल हो गया।

—अरे, फेल हो गए, गुरुजी ने आश्चर्य किया, सम्पत् और फेल, आश्चर्य होता है।

—क्या बताऊं ? मेरे आंखों में पानी भर आया।

—अरे, रोने की क्या बात है ? ऐसे निराश नहीं होते हैं। शायद तुम्हारा 'एडजस्टमेंट' नहीं हुआ। फिर पढ़ो—और डिवीजन लो।

—नहीं, गुरुजी, पार नहीं पड़ेगी। तंग आ गया।

—हां, तुम्हारी स्थिति भी अच्छी नहीं, पढ़ना मुश्किल से चलता है। बोलो, क्या विचार है ?

—नौकरी करूंगा।

—हां, कर लेनी चाहिए, वे सोच-समझकर बोले।

—तो फिर, मैंने एक आश्वासन चाहा।

—कहां नौकरी करोगे ? उन्होंने पूछा।

—आपके यहां, मैंने बताया।

—यानी, मास्टरी।

—कर लो, ठीक है, तुम्हारा 'टेस्ट' भी यही है, वे आश्वस्त हुए।

—तो फिर,

—हां, हां, एक आवेदन-पत्र भर दो, मैं तुम्हें नियुक्ति दे दूंगा।

ऐसा ही समय था वह और मैंने उनके आदेशानुसार जैसा उन्होंने चाहा, कर दिया।

उसके बाद उन्होंने आश्वासन दिया—कल आदेश ले जाना। लेकिन यह बताओ, कहां का आदेश चाहते हो. तुम्हारे गांव कर दूं, वहां एक स्थान रिक्त है।

मैं सहमत हो गया।

गांव की नई कल्पना के साथ मैंने होस्टल को प्रस्थान किया। आदेश मिलने के बाद भी तो मुझे स्कूल खुलने पर ही कार्य चालू करना था, अतः मैंने कोई त्वरा नहीं बरती। शाम को कंवर साहब की ओर चल पड़ा। यहां आने के बाद उनसे मिला भी नहीं था।

कंवर साहब पलंग पर बैठे थे। जाते ही उनसे नमस्ते की।

—आओ, आओ, सम्पत् जी, बैठो।

इस समय मेरे ऊपर निराशा और घुटन का इतना प्रभाव नहीं था। कंवर साहब ने जाते ही बताया—सम्पत् जी, इन्द्र तो फेल हो गया।

—इन्द्र क्या, मैं भी तो फेल हो गया।

—कौन कहता है?

—मैंने अखबार देखा है।

—नहीं जी, आप तो पास हो।

—मैंने खुद अखबार देखा है।

—मुझे यह पता नहीं, इन्द्र ने बताया मुझे तो।

—मैंने तो आखों से देखा है।

—लो, अभी बुलाता हू इन्द्र को।

कवर साहब उठकर भीतर गए और फिर इन्द्र के साथ वापिस मुड आए।

इन्द्र ने आते ही बताया—आप पास हैं, मैंने कॉलिज के नोटिस-बोर्ड पर आखों मे पढ़ा है।

—अच्छा, कमाल है। अखबार में तो रोल नम्बर नहीं था।

—मुझे मालूम नहीं, इन्द्र ने बताया, मैंने नोटिस-बोर्ड पर पढ़ा है, युनिवर्सिटी से आया हुआ। वह तो झूठ हो ही नहीं सकता।

मैं वायु-वेग से कॉलेज पहुचना चाहता था, किन्तु मुझे तागा ही मिला। इन्द्र की बात सही थी, मैं द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण था। अब मेरी खुशिया आसमान को चीरना चाहती थी मेरे पैरों के पख चिपट गए। गुरुजी को भी यह समाचार दे दिया। बाजार मे जाकर जी भरकर मिठाई खाई, रात को पिक्चर गया। इस खुशी मे मेरे लिए इतना ही सम्भव था, मैंने हर्षोल्लास प्रकट कर लिया।

अभी स्कूल खुलने मे दस दिन शेष थे। मैं दो दिन और ठहर गया। इस बीच मुझे श्यामी की नौकरानी मिल गई। उसने बताया—श्यामी ठीक हो गई हैं। वह अब भी आपको याद करती है। उनका कारखाना बन्द हो गया। वे सभी पाच-चार दिन मे बम्बई जाने वाले हैं। इच्छा हुई कि उन सभी से मिल आऊँ, किन्तु अपमानित होने के भय से गया ही नहीं। केवल उनकी तस्वीरें मन मे थीं और उन्हे लेकर गाव लौट आया। अब मैंने इस शहर मे कुछ भी पीछे नहीं छोडा, थोड़ा बहुत खिचाव कहीं था भी, वह भी अब नहीं रहा।—अलविदा श्यामी, सावित्री, अलविदा।

'बेटा मास्टर बनकर आ गया है इस स्कूल में, गाव के एक चबूतरे पर कुछ मनचले छोकरों ने मुझे देखकर जोर से ताना-कसा और मैं मुंह नीचा किए आगे निकल गया। बात तो गाव मे फैल ही गई। बूढों ने यह जानकर खुशी प्रकट की—'अच्छा है भई, घर की घर में कुछ बूढे का सहारा तो होगा ही।' ताई, चाची, मासी, काकी, भाभी सभी पहले तो यह जानकर विस्मित हुईं—'अरे, तू तो छोकरा है, मास्टर थोड़ा ही हो सकता है।' फिर मा से मुंह मीठा कराने को कहा। मां के दिल मे पहले तो पास होने का हर्ष हुआ और फिर मेरी नौकरी लगने का। उसने पिताजी से कह-कहकर अपनी बात ऊंची रखी—'मैंने कहा था न, कभी तो पानी पीते-पीते नाज का कस आ ही जायेगा, देखो ठीक हो ही गया न।' मैंने जगदम्बा की एक कढाई बोल रखी थी। इसकी पहली तनखा आते पर भगवती को भोग चढाऊंगी।'

लेकिन ताया जी की आंखें कुछ बदली-बदली-सी थीं। उन्होंने मुझे पूरी आखें खोलकर नही देखा। अधखुली आंखों से देखकर ही ऊपरी खुशी जाहिर की—'अच्छा हुआ, तू नौकरी लग गया, तेरा बाप वैसे ही तंग आ रहा था। कितनी तनखा मिल जायेगी, रे।'

मैंने तनखा की राशि बतला दी। पता नहीं, उन्हें क्यों यह राशि ओछी लगी। वे खिसियाये मन से कह उठे, 'हा ठीक ही है, हमने तो सोचा था इतना पढ़ कर कही डिप्टी बनेगा, मास्टर ही बना, जो मिला, वही ठीक।'

मेरा मन वहा से तुरन्त चलने को हुआ।

आदेश-पत्र मेज पर रखते ही मैं भरपूर नजर से हैडमास्टर को देख गया। एक बुझे हुए चेहरे पर पीले फ्रेम का चश्मा था। मुझे देखने के बजाय उसने आदेश-पत्र पढ़ने की फुर्ती की।

—'आप ही का नाम सम्पत् जी है?'

—'जी हा।'

—आप दफ्तर मे जाकर अपनी 'जोइनिंग रिपोर्ट' दे दीजिए, यह कहकर उसने एक अगड़ाई सी, जैसे कि वह बहुत देर से बैठे-बैठे अकड़ गया हो।

अध्यापक साथियों में बैठने पर मुझे सभी चेहरे नये-नये लगे। उनमें

कुछ बूढे और कुछ जवान थे। मेरे परिचय की सभी को जिज्ञासा थी। मेरा परिचय तो एक ही था, किन्तु लगभग इन बीसों का परिचय लेने मे मुझे देर लगनी थी। जानी-पहचानी जगह में अनजानपन मेरे लिए कुछ अजीब-सा था। पहले दिन मैं अपनेपन को कुछ अलग-सा पा रहा था। मुझे कुछ अटपटा-सा लगा। सन्तोष इतना ही था कि कक्षाओं मे मैं आधा जाना-पहचाना तो था ही।

रास्ते में एक साथी अध्यापक कुछ देर तक मेरे साथ चलकर गया। उसने एक बात पर अधिक जोर दिया—'यह हैडमास्टर स्साला बदमाश है, बिना मतलब परेशान करता है, बाकी जगह खराब नही है, लेकिन आप तो 'लोकल' हो, आपका क्या बिगाड सकता है ? साला इतना गन्दा है कि इसने एक गुट बना रखा है। उसे कुछ नही कहता, हम छोटे है न, हमे परेशान करता है।'

क्या शिक्षा-क्षेत्र मे भी इतनी संकीर्ण मनोवृत्तियां है ? मुझे कुछ धक्का-सा लगा। मैं उसकी बात कान लगा कर सुनता रहा और पीता रहा। मैंने अपने हृदय मे इस धन्धे की पावन पृष्ठभूमि सजो रखी थी, उसमें कुछ ठेस-सी लगी।

रास्ते में कुछ दूर तक मैं अकेला पड़ गया। कुन्दन सेठ रामकुमार की हवेली के आगे खड़ा था। यह वही हवेली है जिसकी छत पर कभी चांद उगता था और रात होने से पूर्व ही छिप जाता था, कुछ देर तक उसकी स्मृति गुदगुदाती रही। आजकल चाद नही उगता, वह अपनी ससुराल गई थी। उसकी शादी हो गई थी।

कुन्दन ने एक बच्चे को गोद मे ले रखा था, गोरा, चिट्टा। मैंने पूछा—'यह किसका बच्चा है गोद मे ?'

—सेठ का पोता है, कुन्दन ने बताया।

—अच्छा !

और मैं घर आने लगा। रास्ते में सोचता-सोचता आया कि कुन्दन ने इसे गोद मे क्यों लिया, इसलिए कि कुन्दन सेठ का नौकर है, ।

रात को कुन्दन घर आया ही। मुझे यह बात याद ।
किया—'तूने सेठ के बच्चे को गोद मे क्यों ले रखा था ?'

—भइया, तेरी तरह राज की नौकरी नहीं, सेठ और सेठानी दोनों का गुलाम हू ।

—तो तुझे यह गुलामी अच्छी लगती है न ।

—अच्छी तो नहीं लगती, लेकिन जोर भी नहीं है, कुन्दन अब समझदारी भाषा में बोलने लगा ।

—खेती तू कर नहीं सकता ।

—खेती में तो इसके कपड़े मैले हो जाते है, मैंने जवाब दे दिया ।

—पिताजी को भी कुछ सुख हो जाये न, मगनी ने पड़ते ही कहा ।

—मैं खेती नहीं कर सकता, नहीं कर सकता, कुन्दन में कुछ गर्मी आ गई ।

—मैं कहता हू तू खेती कर, मैंने अपनी राय दी, तू और कुछ नहीं कर सकता क्या ?

—राज की नौकरी तो मिल नहीं सकती, कुन्दन बोला ।

—दुकान ? मेरा एक प्रश्न था ।

—दुकान, कैसी दुकान ? कुन्दन का दूसरा प्रश्न था ।

—चाय की दुकान ?

—हां, कर सकता हू, लेकिन पैसा ?

—पैसे की व्यवस्था मैं करूंगा ।

सभी को नये सिरे से सोचने का मौका मिला । इस विषय पर काफी विचार-मंथन हुआ । कुछ देर बाद एक निर्णय हुआ—कुन्दन अब दुकान के विचार को लेकर सोचे, व्यवस्था होने तक बनिये को जवाब न दे ।

दुकान बनने से पहले सारे माहौल में ही दुकान की बात थी, सोते, उठते, बैठते केवल एक ही विषय में चर्चा रहती । स्थान का निर्णय हुआ और अब सामान की । 'टैक्नीक्' कोई विशेष नहीं थी, जिसके लिए कुन्दन को ट्रैनिंग दिलानी हो ।

एक दिन बस स्टैंड पर कुन्दन की दुकान बनी, मकान बना—सेठ रामकुमार का । सेठ ने कुन्दन को सहयोग दिया ।

घर की सारी स्थिति का जायजा लेने पर पता चला है कि घर पर लगभग दो हजार का कर्जा था । यह कर्जा क्यों हुआ ? यह प्रश्न मेरे सामने

उभर कर खड़ा हो गया। मेरे होश सम्भालने के बाद घर में न तो कोई नई ईंट लगी और न कही लकडी। उसी जूने मकान को मा के हाथो ने गोबर-मिट्टी के सहारे जिन्दा रखा था, वरना वह कभी का धराशायी हो जाता। वह बेचारी हर दीवाली, हर होली पर दिन-रात लगकर उसको मन्दिर-सा बनाकर दिखा देती। मा, बाप ने कभी मनचाहा कपड़ा नही पहना और न मनभाया खाना खाया। सस्ती-से-सस्ती 'डोवटी' बाप के नसीब मे रही और सस्ती से सस्ती 'छीट' मा ने छाटकर पहनी। वह भी तब पहनी जब मां ने देखा कि कपडो के छेद अब कमीनी हरकत करने लग गए है और बाप ने देखा कि कपड़ो की 'कारी' भी फटने को तैयार हो गई है। इतने पर भी किसी ने कमाने मे कोई कसर नही रखी। गम्भीरता से सोचने पर मुझे एक बात पकड मे आई। हम लोग बनिये से उधार न लाया करें। उधार मे बनिया ग्राहक को जचा कर पीटता है। मनमाने भाव लगाता है, मरजी आए वैसे तोलता है और फिर सारी रकम पर शुरू से ब्याज लगाता है।

पिताजी ने मेरा सुझाव तो सुन लिया लेकिन वह पूरी तरह सहमत नही हुए। बोले—'तू देख लेना, बिना उधार पार नही पड़ेगी।' मैंने कहा—'मेरी तनखा आती है, कुन्दन की दुकान से भी कुछ आयेगा।'

—अच्छा भई, तुम लोग जैसा ठीक समझते हो करो, अब तुम जवान हो, समझदार हो, घर सम्भालो, पिताजी ऐसा कहकर ऐसे बन गए जैसे कि सारी जिम्मेदारी हमारे ही ऊपर डाल रहे हों।

इस बार मैं घर के बारे मे पूरा जागरूक बन गया। मैंने साफ कह दिया—'मैं देखता हूं, घर का कर्ज कैसे नही उतरता?'

घर से स्कूल की ओर चलते ही मैं 'नमस्ते' लेता चलता, यह 'नमस्ते' छात्रों की ओर से होती जो मुझे रास्ते मे मिलते। मुझे इससे गर्व का एहसास होता। स्कूल पहुंचते ही 'रूटीन' की एक प्रार्थना होती जिसमे सब मिलकर भगवान् से अनगिनत गुण मागते, राष्ट्र का उत्सर्ग होने की कामना करते, दीन-हीन की रक्षा करने का वचन लेते। हैडमास्टर सबके सामने दोनों हाथ इकट्ठे करके खड़ा होता और उसी पंक्ति मे अध्यापक। विलम्ब से आने वाले अध्यापक पर हैडमास्टर की त्योरी चढ जाती। मन-ही-मन

बुलबुलाता, लेकिन कुछ नही कहता। छात्र देरी से आते उन पर डडे बरसाता, अध्यापक कक्षा मे जाते, उस समय एक 'राउण्ड' लेता और फिर चिक लगाये अपने कमरे मे घुसता और बाबूजी को बुला लेता। मै 'सातवी' कक्षा का अध्यापक बनाया गया।

अध्यापकों के लिए एक अध्यापक-कक्ष था जिसमे हम अपने खाली घटों मे गप्प-शप्प करते। हैडमास्टर का आदेश था कि खाली घंटो मे अध्यापक अपना लिखित कार्य जांचे, किन्तु शायद ही कोई अध्यापक ऐसा करता था। सभी अध्यापक इस खाली घटे के बेहद शौकीन होते। इस खाली घंटे को यदि हैडमास्टर के आदेश से किसी अनुपस्थित अध्यापक के घंटे मे जाना पडता तो ऐसा महसूस होता मानो घर मे किसी की हत्या कर दी गई हो। अध्यापक दो-चार गाली हैडमास्टर को निकाल ही देते। खाली घटे की गप्पशप्प का तात्पर्य कुछ राजनीतिक चर्चा थी जो देश मे लोक-तन्त्रीय जागरुकता का परिचायक थी, किन्तु इसमे अधिक अंश हैडमास्टर की आलोचना ही होती थी। सभी अध्यापकों मे दो व्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण थे। एक थे श्री चन्द्रकान्त और दूसरे बृजकिशोर। चन्द्रकान्त बैठे-बैठे बीडी चूसते थे, उसके दात शायद बीड़ी से काले हो गये थे, वे बातो मे इतने लट्टू हो जाते कि उनके कानो तक घटी का स्वर नही पहुंचता और हैडमास्टर की ही ड्यूटी थी कि वह उन्हे आकर ही याद दिलाता—'चन्द्रकान्त जी, आपका पीरियड है आठवी मे, क्लास शोर कर रही है।'

चन्द्रकान्त अपना चश्मा एक बार उतारता, फिर उसे पोछता, फिर बूटों को पैरो मे डालता, फिर तसमे बाधता और फिर एक अच्छी गाली हैडमास्टर को निकालता—'मर गया स्साला, एक घड़ी भी चैन से न बैठता है, न बैठने देता है, हरामी पिल्ला।'

'पिल्ला' शायद वह इसलिए कहता होगा कि हैडमास्टर शरीर से कुछ मोटा था। चन्द्रकान्त क्लास मे जाकर कुछ देर मे इसलिए वापिस आ जाता कि हैडमास्टर दूसरी बार नहीं आएगा। उसे मालूम था। आते ही वह फिर बीडी लगाता और उसे चूसता रहता और झूमने-झूमते तमल्ली से बातें करता।

बृजकिशोर मे एक ही विशेषता थी कि वह विलम्ब से आने मे नियमित

अध्यापक का मिलेगा जो शिक्षक-संघ का नेता भी था। इसलिए उससे ही हंस-हंसकर बातें करते थे —यानी मन की बातें। इसलिए उससे हर तरह की छूट थी—वह चाहे कक्षा में पढ़ाये या न पढ़ाये। वह कभी भी, कहीं भी बिना आदेश प्राप्त जा भी सकता था। कोई भी सरकारी काम का बहाना बनाकर सरकारी यात्रा का बिल भी बना सकता था। उसे सभी अध्यापक, बाबू, चपरासी, आधा हेडमास्टर मानते थे। कुछ लोग उसे हेड-मास्टर की पूछ कहकर मजाक करते थे। बृजकिशोर जैसे मास्टर तो हेडमास्टर को उसकी पूछ कह जाते थे। चन्द्रकान्त तो हेडमास्टर के साथ उसे भी गाली दे दिया करता था। इस सारे माहौल को पूरा पढ़ने के बाद मुझे इस वातावरण में घुटन महसूस होने लगी। कभी-कभी तो इतनी नफरत हो जाती कि अच्छा होता, मैं इस गांव में ही नहीं आता। केवल गांव का मोह मुझे खींच लाया। कभी सोचता, यह विभाग ही गलत पकड़ बैठा। छात्र ढाबे के आसपास बीड़ी का धुआं फेंकते और मास्टरों को गालियां देते। मास्टर इसी धुन में रहता कि वह ट्यूशन के नाम पर किस छोकरे के बाप की जेब काटे। मास्टर यहां तक कि वह छोकरे से बीड़ी मांग कर पीने में नहीं झिझकता। इन्सान पैदा करने वाली सारी मशीन ही बिगड़ गई थी। मैं अपने पुराने स्कूल को दूर से बैठा देख रहा था, मुझे लगा कि स्कूल की इमारत धरती में धसी जा रही थी।

मैंने यह बात एक दिन चन्द्रकान्त से कही—'चन्द्रकान्त जी, हमें अपने स्कूल को सुधारना चाहिए।' चन्द्रकान्त ने बौखलाकर दो गाली हेडमास्टर को निकाल दी और एक बीड़ी सुलगा ली और फिर गम्भीर होकर बोला, 'मित्र, तुम नये-नये आए हो। तुम्हारे में अभी नया खून है। कुछ दिनों में हेडमास्टर और ये छोकरे मिलकर तुम्हारा खून चूस लेंगे, तब तुम भी हमारे में मिल जाओगे और फिर मेरी तरह बहकने लग जाओगे। हम मास्टर हैं ही नहीं, सच पूछो तो। हम घंटे पर चलने वाले नई किस्म के गुलाम हैं, कैदी हैं। यहां तुम काम करोगे, एक दिन टी० बी० के बीमार होकर निकलोगे। हम अपनी ठठरी लिए हुए घूम तो रहे हैं, तुम्हारे पास यह ठठरी भी नहीं रहेगी।'

मुझे चन्द्रकान्त की बात से सन्तोष नहीं हुआ। मैंने कहा—'हम तो ;

शिक्षक हैं, चन्द्रकान्त जी, हमें समाज के सामने आदर्श इन्सान बनकर उपस्थित होना चाहिए, इन्सान बनाने का दायित्व हमारे ऊपर है।'

—वाह रे, आया है, आदर्श बनाने वाला, चन्द्रकान्त अपनी बुझी बीडी सुलगाते हुए कहने लगा, समाज का आदर्श यही कहता है क्योंकि इन इन्सान बनाने वाले इन्सानों का समाज खून पीता रहे और इन सूखी हड्डियों को भट्टी के नीचे तपाकर इनसे समाज के लिए वज्र बनाये जिससे असुरों का संहार हो, यही कहना चाहते हो, सम्पन्! तुम्हें मालूम है कि हम कक्षा के कमरे में घुसने के बाद एक कैदी से गए बीते हैं, हमें पेशाब करने की छूट नहीं, बीडी पीने की छूट नहीं।

लगता था, चन्द्रकान्त अपने पेशे के प्रति विक्षुब्ध था। मैं उसके सफेद बालों के प्रति श्रद्धालु था, किन्तु उसके पिचके शरीर के प्रति दया उमडती थी।

बृजकिशोर से यह प्रसग आया, तब उसने बडी मजेदार बात कही—'अरे यार, सभी लोग आदर्श स्थापित करने लगेंगे तो सभी आदर्श हो जायेंगे, तब कोई आदर्श नहीं रहेंगे। मौज करो, मित्र। आदर्श-वादर्श के चक्कर में मत पड जाना, समझे।'

एक दिन आत्मस्वरूप से भी बात कही। उसने अपने नेतृत्व का स्वर ही दोहराया—'समाज शिक्षक से काम लेना ही नहीं चाहता। आज समाज में उसका क्या सम्मान है, उसकी आर्थिक स्थिति पर कभी किसी ने सोचा! जितना सरकार दे रही है, उतना हम भी दे रहे हैं।' फिर उसने मन्त्री, निदेशक, निरीक्षक सभी से अपनी मुलाकातों का प्रसग दिया। मुझे इस व्यक्ति का दोहरा व्यक्तित्व नजर आया। आदर्श के लिबास में अपना खोखला स्वरूप छिपाने की कोशिश करता था। नजदीक वाला आदमी कभी न कभी उसका छिपा रूप सहज ही देख सकता था।

मैंने कभी अध्ययन और अध्यापन की उपेक्षा नहीं की और धीरे-धीरे मैं छात्रों में लोकप्रिय हुआ और अध्यापक-साथियों में अलोकप्रिय। विरोधाभास समझ में नहीं आया। सभी लोग मेरे से रुष्ट होने लगे। कभी उनकी बातें सुनने को मिल ही जाती थी—'यह जल्दी ही बी० ए० पास करा देगा।—अजी, अभी नया है, ठहरो, जल्दी ही ठी

जायेगा—अरे, ट्यूशन करने के यही तो तरीके है, ट्यूशनें आई और ठंडा पडा—आदि, आदि। मेरे सामने यह कठिनाई थी कि मैं इन दोनों बिन्दुओं मे कैसे तालमेल बैठाऊं।

एक दिन गाव का ओवरसियर मेरे घर आया। बैठते ही उसने बात छेड दी, 'मम्पत् जी मैंने आपकी तारीफ सुनी है। आप अच्छा पढाते है, सभी छात्र यही चर्चा करते हैं। मेरा लडका आपके यहा सातवीं मे पढता है, वह तो, पूछो मत आपकी ही बात करता है।

--आप ही की कृपा है, मैंने कहा।

—ऐसा नही है, मास्टर साहब, जो बात है, छिपी थोडी रहती है, मास्टर और भी तो हैं।

—कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हू ? मैंने बीच मे ही बात काट कर कही।

ऐसा है कि लडकी पिछली साल आठवी पास कर गई, लेकिन यहा का वातावरण देखकर मैंने उसे उठा लिया। हमारी जाति बिरादरी में ऐसा ही नियम है कि बिना पढी-लिखी लडकी को अच्छा घर नही मिलता, इसलिए आप एक घटा उसे जरूर दें, चाहे शाम को, चाहे सुबह को जो आपको ठीक जचे।'

मैं फिर चिन्ता मे पड गया। चिन्ता इसलिए नही थी कि मेरे पास समय नही था, इसलिए भी नही कि मै पढाने मे असमर्थ था। चिन्ता यह थी कि मैं पुरानी उलझनों से विमुख होकर आया ही था, कही कोई नई बीमारी मेरे पीछे न लग जाये।

ओवरसियर ने फिर हाथ जोडकर कहा। एक बुजुर्ग व्यक्ति की समस्या समझ मे आ गई और मैंने अपनी स्वीकृति दे दी।

रात को जब सोने लगा, श्यामो और सावित्री की आकृतिया मेरे चारों ओर चक्कर काटने लगी। मैं अपने विगत जीवन कि स्मृतियां बटोरने लगा, भीतर ही भीतर एक गुदगुदी हुई। घटनाएं निकल जाती हैं, किन्तु उनकी यादों में भी एक अपनी तरह का रस होता है और रस किसी भी विटामिन से कम नही जो जीवन को टिकाये रख सकता है। वे न जाने कहां होंगी, किन्तु उनकी सजीव तसवीरें मेरे इर्द-गिर्द घूम रही थी—ऐन निकट।

ओवरसियर के घर मुझे शहरी रंग नजर आया। उसका बिल्कुल नये डिजायन का क्वार्टर, बैठक अलग जिसमें वही शहरी निवास—सोफासेट, नीचे दरी बिछी हुई, खिड़कियों पर एक ही रंग के लटके हुये परदे, एक ओर दो कुर्सियां और मेज। कहीं धूल का नामोनिशान नहीं। बैठक में प्रवेश करते ही मैं एकदम दंग रह गया जैसे कि इस उज्जड़ गांव में शहर का एक टुकड़ा टूट कर यहां आ गया। मैं इस सजी बैठक को अपनी चकाचौंध आंखों से देख रहा था कि एक ट्रे में मेरे लिये चाय आ गई। एक छोटी केतली, एक कप, एक प्लेट में चार बिस्कुट। टी-सैट भी कम कीमती नहीं था। एक गुदगुदाने वाली कल्पना मेरे भीतर उपजी कि इसी तरह की एक बैठक बनाई जाये और उसमें इतनी सारी साज-सज्जा हो, शायद एक सफल जीवन की सीमा को आंकने लगा था मैं।

चाय समाप्त होते ही एक लड़की सामने आकर बैठ गई। इतनी सारी लड़कियां आकर बैठी थीं, उसमें यह एक और जुड़ गई।

—क्या नाम है तुम्हारा? जैसे यहीं से सारी भूमिका शुरू होती हो।

—मनोरमा, आखें नीचे किए उसने बताया। शायद सभी लड़कियां एक ही सांचे में ढली हों।

मनोरमा को मैंने देखा तो लगा, यह अब तक सम्पर्क में आई लड़कियों में स्वामी के अधिक निकट थी।

मनोरमा को हरेक विषय पढ़ाना था, क्योंकि यह तो शुद्ध रूप से प्राइवेट छात्रा थी।

मनोरमा का मूल्यांकन करने में देर नहीं लगी। वह साधारण ... थी। साधारण परिश्रम ही इसके लिए पर्याप्त था। अंग्रेजी प्रायः ... मांगती है, परन्तु मनोरमा की अंग्रेजी लगभग ठीक थी। मनोरमा ... लड़की थी, इसलिए उसका पहनावा भी पंजाबी था।

एक दिन मां ने फिर प्रसंग छेड़ा—'बेटा ... करनी ही होगी।'

—अब क्या हो गया है?

—देख, अब मैं बूढ़ी हो गयी हूं। अब तक

चल जाता था। अब मेरे से कुछ नही होगा।

--मा शादी के लिए मैं इन्कार नहीं करता। लेकिन एक ही शर्त है कि लडकी सुन्दर हो और पढी-लिखी हो।

—मगनी की ससुराल में एक लडकी है। लडकी सुन्दर है, पढी लिखी तो नही है। भई पूछ ले मगनी से। मगनी—ओ—मगनी।

मगनी आ गई थी।

—क्यो, मगनी, लडकी बता रही थी न तू।

—हा हा, मगनी बोली, बडी खूबसूरत लड़की है, भैया मैंने देखी है। वे मुझे ही देने को कहते है।

—तू रोज बताती है, वही तो।

—हा, वही, मगनी बोली।

—पढ़ी-लिखी तो नहीं है, मैंने कहा।

—अरे पढा लेना, भई, मा ने कहा, और सभी क्या पढी-लिखी होती हैं। लडकी मे तो गुण चाहिए।

—अनपढ लडकी मुझे कतई पसन्द नहीं है, मैंने कहा।

दरअसल, मेरे दिमाग का नक्शा तो श्यामी, सावित्री, विमला तीनों मिलकर बदल चुकी थी। अब मै कतई इस बात के लिए तैयार नहीं था कि कोई अनगढन्त ठूठ मेरे घर मे आए।

मा मेरी बात से एकदम निराश हो गई।

—तो कैसे करें, मा बोली, तू कुवारा रहे तो कुन्दन की शादी करनी ठीक नही।

—अरे मा, मैंने कहा, यह ठीक रहेगा, उस लडकी से कुन्दन की शादी कर दे। देख एक बात और बताऊं, मैं हूं राज की नौकरी में। मेरे भरोसे तू बहू से काम ले भी नही सकेगी। मेरा क्या, आज यहाँ, कल वहां। मैं गया, वह भी गई।

—बेटा, फिर भी मा-बाप का धरम है, अपने औलाद को ब्याहना।

—मैं तो देखकर शादी करूगा, मैंने बताया, मेरी चिन्ता मत कर।

मैं अपना निर्णय देकर स्कूल के लिए तैयारी करने लगा। तैयार होकर स्कूल चला गया।

लौटते समय मैं सेठ रामकुमार की दुकान पर बैठ गया। ठाकुर ओमसिंह बैठे थे। सेठ के मुनीम ठाकर वामण ने चाय मँगवा ली। ठाकुर साहब पुलिस मे डी० एस० पी० थे और अब रिटायर हो गए थे। हम सभी उनकी लच्छेदार बातें सुनने लगे थे। वे एक स्वर में सरकार को गाली निकालते और दूसरे स्वर में अपनी बहादुरी की बात सुनाते। चाय के बाद उन्होंने सिगरेट सुलगाई और एक सिगरेट मैंने भी ले ली। मैं कभी-कभी शौकिया सिगरेट पी लिया करता था।

सिगरेट के साथ ठाकुर साहब ने फिर अपनी कहानियां शुरू कर दी। दरअसल, ठाकुर साहब ने अपने नौकरी-काल मे कुछ सराहनीय कार्य किया, किन्तु सरकार ने उसका ठीक-ठीक मूल्याकन नहीं किया। उनके विचार से सरकार भ्रष्टाचारी और भाई-भतीजे वाली है। ईमानदार व्यक्तियो का सरकार की दृष्टि मे कोई मूल्य नही। वे इस समय उन डाकुओं की कथा सुना रहे थे जिनके गिरफ्तार करने मे उनका योगदान था। ठाकर वामण सेठ का सामान भी तोल रहा था और ठाकुर साहब की बातो का रस भी ले रहा था। दो-तीन ग्राहक भी उनकी बातो का मजा ले रहे थे।

मैं ठाकुर साहब के साथ ही अपने घर की ओर चल पड़ा। ठाकुर साहब ने रास्ते मे बताया कि जल्दी ही चौधरी दलपतराम जी भी रिटायर होकर आने वाले थे। दलपतराम उस समय पुलिस मे इन्सपैक्टर थे।

एक दिन सेठ रामकुमार के मुनीम ठाकर वामण ने अपना चोला बदल लिया। उसने खद्दर के कपड़े पहन लिए और अपनी एक नई दुकान भी कर ली। मैंने इसका कारण पूछा, तब उसने सेठ को पाच-सात गालिया निकाली और उसको शोषक घोषित किया। मुझे लगा कि ठाकर वामण एक नई क्रान्ति करने वाला था। इस परिवर्तन के साथ ठाकुर साहब ने भी परिवर्तन कर लिया। वे सेठ के यहा न बैठकर ठाकर वामण की दुकान पर बैठने लगे। दोनो के विचारो में आग तो धधकती थी, किन्तु दोनों की आग भिन्न-भिन्न प्रकार की थी। दोनो गालिया निकालने मे भी [illegible]
एक सेठ को गालिया निकालता था, तथा दूसरा सरकार [illegible]
तो ऐसा लगता था कि दोनों गालियो की प्रतियोगिताओं [illegible]

वैसे दोनो ही भीड जुटाने मे माहिर थे। मैंने गालियों की महफिल मे इकट्ठी होने वाली भीड इसी जगह देखी थी।

ठाकर बामण का चरित्र उभरता गया और ठाकुर साहब दिन पर दिन नीचे गिरने लगे। ठाकर दुकान के बाहर निकल गया और खद्दर के नाम पर गाव के थाने में पहुच गया। थाने मे पहुचते-पहुंचते थानेदार के कान के पास पहुच गया। उसकी गाली महत्वपूर्ण हो गई। वह दो गाली पहले अपने को निकालता, फिर सामने वाले को और एक दिन ऐसा भी आ गया कि उसने थानेदार को भी गाली निकालनी शुरू कर दी। थानेदार उसकी गाली हँसकर सुनता और नीबू के रस की तरह पी जाता। क्योंकि वह पचाने वाला रस था। ऐसा लगता कि ठाकुर के दिलाए हुए पैसों को पचाने के लिए यह नीबू का रस जरूरी था। धीरे-धीरे ठाकर बड़ी कचहरियो मे पहुच गया। तहसीलदार, नाजिम भी उसकी गाली का रस पीने लगे। ठाकुर साहब धीरे-धीरे जनानखाने मे पहुच गए। अब वे अपने बच्चों को, मुर्गियों को, बकरियो को, कुत्तो को गाली निकालने लगे। उनकी बैठक सूनी रहने लगी। इन्सान का भी एक समय होता है। वह समय निकल जाता है, तब उन्ही हड्डियो की बनी और उसी चमडी से आकृत देह भी महत्त्वहीन हो जाती है। एक दिन था, ठाकुर साहब का डका कोसो मील सुनाई देता था, अब वही पुरुष घर में ही शून्य होकर रह गया। अपनी इस स्थिति को समझकर ठाकुर साहब लम्बी सास खीचते थे। उनकी नौकरी-काल की बातें आवृत्तिया पाकर जन-मानस पर प्रभाव शून्य हो गई। तब उन्हे अपने व्यक्तित्व की शून्यता का एहसास हो गया था। गाव वाले यह आशा लगाये बैठे थे कि गाव के नव-निर्माण मे सेवा-निवृत्त लोगों का भारी योगदान होगा। उन्हे भी निराशा हुई। मुझे ऐसा लगने लगा कि समूचा गांव ठहर गया है। और हर ठहरी हुई चीज भी ठहरे हुए पानी की तरह होती है जिसमे सडाध जन्म लेती है। शायद इस गाव मे भी अब सडाध ही जन्म लेगी। जिस गाव की सभा मे जीवन को नई दिशा देने वाले मार्ग-दर्शन देते थे, उसी चौक मे लोग आराम से बैठकर मुकदमो की दफाओं को दोहराने लग गए।

फूलकी चमारी बहुत दिनो बाद घर पर आई। मां ने अपनी आदत के

अनुसार उसे उपालम्भ भी दिया—'बहुत दिनो से आई तू।'

—क्या करू, घर का काम निवटे, तब आई न।

—घर मे बहू आ गई, फिर भी काम बना ही रहता है।

—काम एक थोड़ा ही है, बहू, पूछ मत, फुरसत मिलती ही नही।

फूलकी चमारी बहुत बूढी थी, इसलिए मा को वह बहू ही कहती थी। फूलकी अपनी मन की बातें करने मा के पास आ जाती थी। उसने प्रसगवश बताया कि बेटे को एम. एल. ए. की टिकट दे रहे है। मां भी अब एम. एल. ए. की परिभाषा समझने लगी थी। उसके अनुसार एम. एल. ए. का एक ही अर्थ था—राजा। मा ने पहले से ही आश्वासन दे दिया कि वह उसको वोट जरूर देगी। फूलकी का बेटा गणेश आठवी मे दो बार फेल हो गया, तब स्कूल छोड़ दिया था। बाद मे कुछ बडा होते ही कांग्रेस के दफ्तर मे जाने लग गया था। आजकल वह ठाकर ब्राह्मण से दोस्ती करने लगा था।

बात का यह सिलसिला समाप्त होने को ही था कि बनारसी की मां और जोरा सुनार की बहू आ गई। उसे देखते ही बनारसी की मा की बात याद आ गई। उसने बतलाया था कि जोरा इसे उडाकर लाया था और इसका पति अभी जीवित है। जोरे की बहू घर पर शायद ही आती है, इसलिए मा ने उसका विशेष स्वागत किया। मां ने उसे बैठने के लिए 'पीढा' दिया। वह जमकर बैठ गई। उसने देशी पोशाक पहन रखी थी—बैंगनी रग का घाघरा और लाल, पीले रग का ओढना। उसकी गोरी पिंडलियों पर घाघरा बडा फबता था। उसने फूलकी की बात का बड़ी तसल्ली से साथ दिया। उसने सुनी सुनाई राजनीति की बातों का, अधकचरे ज्ञान का बडे ढग से फैलाव किया और समर्थन मे मुझे साथ घसीट लिया। मैं उसके चेहरे-मोहरे को देखता रहा और साथ मे उसकी बात करने शैली को देखकर कोई भी व्यक्ति यह सहज ही समझ सकता है कि भी घाट-घाट का पानी पिया है।

फिर वह अपनी बात पर आ गई—'मै तो एक से आई तुमने मेरे से कहा।

—मैं आपसे पढना चाहती हूँ।

—पढ लो, मैं उसे और क्या कहता।

उसने सारी बात अपनी ओर से समझाकर बताई—'बात यह है कि अपने गाव मे लड़कियो का स्कूल खुलने वाला है। उसमे मास्टरनी की जरूरत होगी।

— हा, मैंने कहा।

—मैं पाच क्लास तक तो पढी हू ही, आगे आप पढा दो।

— ठीक है।

—यह नही भी होगा तो मैं एम. एल. ए. की टिकट की कोशिश करूगा।

—यह भी ठीक है।

मैं उससे अधिक तर्क-वितर्क मैं नही उलझना चाहता था। इसलिए लगभग समर्थन देता रहा। उसने जो कुछ कहा, उसे 'ठीक' कहकर बात को समाप्त करना चाहता था। यद्यपि वह प्रौढ होने जा रही थी, फिर भी वह प्रौढता को कुशलता से छिपाए हुए थी। उसका शरीर भी इतना सुघड और गठीला था कि उसकी प्रौढता स्वयं ही छिपना चाहती थी।

उसके जाने के बाद बनारसी की मां ने उसके सबध मे तरह-तरह की बातें सुनाई जिसमे लगता था कि जोरा के साथ रहकर भी वह एकता मे विभिन्नता और विभिन्नता मे एकता के सिद्धान्त को स्वीकारती है। इस प्रसग मे वह मुझे भी सलाह दे गई—'बेटा तू मत जाना, इस राड के घर।' बनारसी की मा ने 'राड' का प्रयोग जानबूझकर किया था और इस शब्द पर पर्याप्त जोर भी दिया था। जोरा की बहू का चेहरा अब भी मेरे माथे मे चक्कर लगा रहा था। मैंने उसके गोरे हाथ पर उसका नाम भी खुदा हुआ देखा था—माया।

एक दिन मैं माया की गली मे से निकल रहा था। पता नही, माया ने मुझे कहा से देख लिया। उसने अपने घर के बाहर आकर मुझे आवाज दी। और मुझे उसकी ओर मुड़ना पड़ा। उसने अपने पलग पर सफेद चादर डाली हुई थी। उसने मुझे बैठने को कहा। वह अपनी रसोई मे चली गई थी। थोड़ी देर बाद वह चाय लेकर आई। मुझे चाय पीनी पड़ी, यद्यपि मेरी इच्छा वहा बैठने की कतई नही थी। इस अर्से मे वह कुछ पुस्तक

भी ले आई थी। मुझे वे पुस्तकें भी देखनी पड़ीं। वहा मेरे और उसके अतिरिक्त कोई नही था। जोरा पता नही, कहां था। कोई यहा आ जाए तो क्या सोचेगा वह? फिर बनारसी की मा जो कुछ उसके बारे में कह रही थी, उससे मेरी झिझक अधिक बढ गई थी। फिर भी मैं उसकी पुस्तकें देखता रहा। उसने पुस्तकें पढनी भी शुरू कर दी। इस बीच दो आदमी दूर से आकर वापिस मुड गए। इससे मेरी घबराहट और भी बढ गई। लेकिन वह मेरे से सटकर बैठी हुई एकटक अपनी आखें पुस्तक पर गड़ाये हुए थी और अटक-अटक कर पढे जा रही थी। उसे यह कतई झिझक नही थी कि उसके अग-प्रत्यग मुझसे छू रहे हैं या नही, किन्तु मेरे भीतर तो सिहरन-सी दौडने लगी थी। तभी उसकी आखें एकदम पुस्तक से हट-कर मेरे चेहरे पर आकर ठहर गई। उसका गौर वर्ण का मोटा शरीर बहुत विशाल दिखाई देने लगा। कुछ ही क्षणों में उसने मुझसे एक सवाल किया —क्यो, मैं पढ सकूगी क्या?

मैंने कम्पित स्वर मे कहा—हा।

—अब रोज आओगे न।

मैंने फिर कह दिया—हा।

और मैं डरते-डरते बाहर निकला। मैंने चारो ओर देख लिया कि किसी ने मुझे देखा तो नही। पता नही, मुझे चोर कहलाने का क्यो डर लग रहा था, जबकि मैंने चोरी नही की थी और न ही चोरी करने का इरादा था।

मनोरमा की बैठक में प्रवेश करते ही सदा की भाँति मैंने मनोरमा को आवाज दे दी। मेज पर पडी उसकी कॉपी को टटोलने लगा और मेरी नजर उसकी कॉपी मे दबे एक पत्र पर पड गई—प्राणप्यारी मनोरमा—और नीचे हस्ताक्षर—आत्मस्वरूप। पहले तो मैं विश्वास नही कर सका। किन्तु उसके अक्षर मैं पहचानता था, पत्र को दो-तीन बार पढने मे मुझे देर नहीं लगी। फिर मनोरमा के आने से पूर्व ही मैंने पत्र अपनी जेब मे डाल लिया।

मनोरमा ने आते ही उसी कॉपी के पन्ने पलटे जो मेरे सामने पडी थी,

फिर उसने दूसरी कॉपी टटोलनी शुरू की। मैंने पूछा—क्या खो गया है? उनका चेहरा धीरे-धीरे फीका पड़ता जा रहा था।

क्या कोई निजी पत्र था? मैंने जानबूझकर यह प्रश्न किया। वह परेशान-सी होने लगी।

मैंने फिर कहा—छोड़ो, फिर मिल जाएगा। मेरी इच्छा हुई थी कि वह उसके पत्र का भण्डाफोड़ करके और उसके सफेद चेहरे पर दो चपत लगा कर उसे लाल बना दे, किन्तु मैंने कुछ भी नहीं कहा और उसे पढ़ाने में व्यस्त हो गया। मनोरमा ने समय निकाला तो सही, किन्तु उसकी स्थिति कतई सतुलित नहीं थी।

स्कूल मे मैंने चन्द्रकान्त से पूछा—एक बात पूछू, आप बात अपने तक रखो तो।

—अरे यार, यह कोई बात है, किन्तु ठहरो मैं बीडी का बडल मगवा लू। साली, सुबह से बीडी नहीं है। एक-दो भी कहीं से माग कर पी है।

उसने एक पेशाब करने जाने वाले को आवाज दी—'अबे ओ, इधर आ।'

उसने बीस पैसे देकर ढाबे से बीडी का बडल लाने का आदेश दे दिया।

—अब बोलो, उसने कहा।

—ठहरो चन्द्रकान्तजी, पहले आपकी बीडी आ जाए, तब नशे में नशा मिलेगा। मेरी बात भी नशे से कम नहीं है।

—तब ठीक है, मुझे भी बीडी की तलब अधिक है, और उसने दीवार के ऊपर से झाकना शुरू किया—'आ रहा है क्या?'

थोडी देर बाद लडका आता नजर आया, तब उसे तसल्ली हुई।

उसने बीडी सुलगाई, एक कश लिया और फिर कहा—'अब तसल्ली से बताओ, अब बनी न बात, उसने फिर जमाकर बीडी का कश खींचा, हल्की-सी खासी आई और फिर चन्द्रकान्त जमकर बैठ गया।

—बात यह है, चन्द्रकान्त जी, आपका इस आत्मस्वरूप के बारे में क्या विचार है?

—हैडमास्टर का 'चमचा' है और क्या?

—नहीं, क्या मनोरमा से इसका कोई सबध था?

—धीरे बोलो, मित्र, चन्द्रकान्त ने कहा, यही तो बात थी कि ओवरसियर ने इस लड़की को पढ़ने से हटाया। यह स्साला नेता बना फिरता है। यह उस छोकरी के चक्कर मे था। यह बात तो सही है ही। पढाने के बहाने यह उसे अपने कमरे मे भी ले गया, राम जाने कहा तक ठीक है। ओवरसियर समझदारी से लडकी को हटा ले गया।

—बात यो है।

—बात यो क्या है, चन्द्रकान्त ने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा, पिछली साल इसने घर बुलाकर इसका पेपर करवाया था, स्साला, अव्वल नम्बर का कमीना है। ऊपर से तो यह शिक्षक-संघ का नेता बना फिरता है। इन्सपैक्टर पर भी रौब जमाए रखता है। हैडमास्टर को कमीशन बना देता है, वैसे उस पर रौब है। अपने लोग जाये तो जायें कहां।

—इसका भडाफोड करना होगा, मैंने कहा, मेरे पास इसका पत्र है, मुझे हाथ लगा है।

—लेकिन भाई, चन्द्रकान्त बोला, बच के चलना, तुम नये आदमी हो। यह स्साला, तुम्हें खराब कर देगा, हम तो बूढ़े खटीस है। इनके नीबू निचोड दे, तुम्हारी अभी नौकरी भी क्या है? फिर सिफारिशी जमाना है या हुल्लडबाजी का। कभी बात तुम्हारे ही कंठ पकड ले।

—आप जैसे बुजुर्ग मेरे साथ है तो क्या डर है, मैंने कहा। मैं आपको पत्र दिखाऊंगा।

हम दोनो अपनी-अपनी कुर्सी पर बैठे चुपचाप एक ही बात को चबा रहे थे।

दो-तीन दिन के अन्तराल से हैडमास्टर ने मुझे बुलाया, सामने आत्मस्वरूप बैठा था। हैडमास्टर ने पूछा—'आप ओवरसियर के यहा ट्यूशन करते है?'

—जी हा, मैंने बेझिझक स्वीकार किया।

—आपको मेरे से स्वीकृति लेनी चाहिए थी।

—क्या ट्यूशन की भी स्वीकृति लेनी होती है।

—बिल्कुल, आत्मस्वरूप ने कहा।

मुझे कुछ सन्नाटा आया, खासतौर पर आत्मस्वरूप पर जिससे मुझे

जरूरत से ज्यादा घृणा हो गई थी। मैंने पूछा—क्या आपके सभी अध्यापक ट्यूशन की स्वीकृति लेते है ?

--मुझे पूछकर ही ट्यूशन लेते है, हैडमास्टर बोला।

— लो जी, अब पूछ लेता हू, मुझे तो इस नियम का ज्ञान नहीं था, मैंने बात समाप्त करनी चाही।

-- मेरा मतलब कुछ और है, हैडमास्टर शुरू से ही तसल्ली मे बात कर रहा था, यह तो बात मैंने 'बाई दी वे' आपसे कह दी, दरअसल, हमें जरूरत है लकडियो की। अभी आत्मस्वरूप जी भी यही चर्चा कर रहे थे। पहले इनका उधर आना-जाना था। ओवरसियर साहब को भी शायद कोई नाराजगी है हममे, राम जाने। वे इधर आते है तो भी नही मिलते। खैर ! इनका मतलब है कि आप उनकी ओर जाते ही हो। उनसे कहना कि एक गड्डा लकडी हमारे यहा और एक गड्डा आत्मस्वरूपजी के यहा डाल दें।

मैं कुछ बोलने ही वाला था कि हैडमास्टर ने आत्मस्वरूप से ही कहा—आत्मस्वरूप जी, आप खुद ही ओवरसियर साहब की तरफ चले जाओ न। आपसे भी उनकी खूब पटती है।

—अजी, क्या बताऊ—आत्मस्वरूप बोला, मुझे आजकल काम भी तो बहुत रहता है। कल शिक्षक-संघ की मीटिंग है। मुझे चुनाव करवाना है। एक धरने का मामला भी है। कल मैं जाना चाहूंगा। आपसे तो पूछ ही लिया। कोई सरकारी काम भी निकाल लेना। आपका इन्सपैक्टर भी बेकार आदमी है, एक नोटिस भी दिलवाना है। शिक्षा-मंत्री भी शायद आ जायें।

क्या पता, वह कितने प्रसग, कितने काम एक ही बार मे कह गया, हैडमास्टर उसके मुह की ओर बैठा देख रहा था। आत्मस्वरूप के चेहरे की विभिन्न मुद्राओं की परछाइया हैडमास्टर के चेहरे के शीशे मे आराम से देखी जा सकती थी। बात शायद अनिर्णीत रही। घटा बजने पर मैं वहा से उठकर आ गया। मेरे भीतर-ही-भीतर एक झुझलाहट उठी थी और दबकर रह गई।

इस गाव की गलिया कभी सूनी नही रहतीं। हर गली के किसी न किसी चबूतरे पर गाव के बडे बडेरे और कुछ बेकार आदमी हरदम बैठे

ही मिलते है। खास तौर पर बडी गली तो हरदम भरी-भरी रहती है। गाव की छोटी-छोटी गलिया सभी इस बडी गली में आकर मिल जाती हैं। गांव के सारे पशु इसी गली से गाव के बड़े तालाब या कुए पर पानी पीने जाते हैं। गाव की सभी औरतें इस गली से कुए या तालाब मे पानी लाती हैं। स्कूल की सारी भीड़ इसी बडी गली मे आकर प्रवेश करती है। स्कूल बन्द होते ही यह गली पूरी तरह भर जाती है—बच्चो से, औरतो से और पशुओ से। बडी मुश्किल से निकलने को स्थान बनाना होता है। इस समय इस गली के चबूतरे भी बूढे-बडेरो से भरे रहते हैं। कोई हुक्का पी रहा है तो कही चिलम चल रही है, प्राय: बीडी फूकते रहते है। कभी-कभी ताश या चौपड जमी मिलती है। दिन मे कई बार गांव की चर्चा भी शुरू हो ही जाती है—कभी पचायत की बात, कभी थाने की, कभी औषधालय की। स्कूल की भी चर्चा होती रहती है। इतने बडे गांव मे चर्चाओ की क्या कमी? कभी-कभी कोई बात बडी जोर पकड़ जाती है, तब सभी हिस्सेदार जोर-जोर से बोलते है जैसे ससद मे बहस हो रही हो। निर्णय कभी नही होता है, लेकिन चर्चाएं सुनने लायक अवश्य होती है। ये चर्चायें सरकारी कर्मचारियो के लिए भयावह भी होती हैं। यही स्थान है जहां पर हर विशेष व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्याकन भी होता है। उसी दिन मैं स्कूल से आ रहा था। बड़े चबूतरे पर स्कूल की चर्चा गरमागरम थी। एक व्यक्ति ने मुझे भी ठहरने को कहा। मैं ठहर गया।

—क्यो मास्टरजी, वह आदमी बोला, इस हैडमास्टर के बारे मे आपका क्या विचार है?

इस प्रश्न के सामने आते ही छात्र भी वहा इकट्ठे हो गए।

—अजी, इनको क्या पूछ रहे हो, ये खुद उनके नौकर है, ये कैसे बतायेंगे, उसी भीड मे किसी ने कहा।

—इन्हे क्या डर लगता है? ये भी राज के नौकर और वह भी राज का नौकर, कोई और बोला।

—डर कैसे नही है, हैडमास्टर इनका अफसर होता है। किसी ने यह बात कह दी।

—इनके ओंठ तो बन्द रहते है भाई, कोई कह गया।

—अपनी कमाई खाते हैं, आज के जमाने में कौन किसी से डरता है, एक और बोल गया।

फिर ऐसा लगा कि सारी भीड़ ही बोल रही थी और उस बौखलाहट का एक ही अर्थ था कि भीड़ में हैडमास्टर के प्रति आक्रोश था, असन्तोष था।

मैंने मुस्कराकर उस भीड़ से मुक्ति का आदेश ले लिया। दो-चार मेरे साथ चल रहे थे। मैंने पूछा—बात क्या है? एक लड़के ने बात बताई—आपको मालूम नहीं क्या।

—नहीं तो, मैंने कहा।

उस लड़के ने बताया—आज हैडमास्टर ने एक नवीं क्लास के लड़के को निकाल दिया, उसने फीस नहीं दी थी। उस बात को लेकर यहां बात चल पड़ी।

—अच्छा, मैंने कहा, फिर कहा होगा, स्कूल में पढ़ाई ही नहीं होती। फीस किस बात की।

—फिर ट्यूशनों पर बात आ गई और फिर हैडमास्टर की, उस लड़के ने बताया।

—अच्छा, अच्छा, बात मेरी समझ में आ गई थी, गांव वाले भी बड़े अजीब हैं।

अपनी गली में जाते ही मैं अकेला पड़ गया था। मैं मन-ही-मन एक ही निर्णय पर पहुंचा कि स्कूल से गांव वाले सतुष्ट तो नहीं हैं, चाहे बात कुछ भी हो।

घर में घुसा तो माया बैठी दिखाई दी। मां, मगनी और माया, तीनों किसी गोपनीय बात में जुटी थीं। माया मुझे देखते ही मुस्कराई और बोली— तुम्हारी ही बात कर रहे हैं, आ जाओ।

मैं भी उस महफिल में शामिल हो गया। मगनी उठकर चली गई। मां किसी के बारे में कह रही थी और माया सुन रही थी। मैंने भी उठकर अपने कपड़े बदले। शायद किसी घर की चर्चा थी, हो सकता है तायाजी के घर की हो।

कपड़े बदलकर मैं अपने कमरे में जा ही रहा था कि मां ने आवाज दी।

मैं उनके पास नीचे ही बैठ गया। माय मेरी तरफ एकटक देख रही थी।

मां ने कहा—'क्या कहती है जोरा की बहू।'

—क्या कहती है ? मैंने माया की तरफ देखा।

—यह तेरी चाची लगती है रे।

—ना, ना, माया ने बीच में टोका, सम्पत तो मेरा देवर है।

शायद माया उस सबंध को स्वीकार करना नहीं चाहती थी।

—अच्छा, भाभी ही सही, मैंने फिर माया की तरफ देखा, उसके चेहरे पर उल्लास की रेखायें उभर आई थी।

मा ने कहा, तेरी भाभी तेरे से पढना चाहती है, पढा दिया कर।

—मैं कब 'ना' करता हू, आ जाया करे, भाभी तो बन ही गई।

—नही, सम्पत, हर इतवार को तुम मुझे एक घंटा दे दिया करो, माया ने कहा,

—ठीक है, आ जाऊगा, मैंने जैसे उसे स्वीकृति दे दी।

माया सतुष्ट हो गई थी और वह फिर मा के साथ बातो में उलझ गई।

लेकिन मैं अगले इतवार को सुबह-सुबह अपने खेत की ओर चल पडा। रास्ते भर मे गाव नजर आ रहा था। कुछ छोटी लड़कियां अपने पशु लेकर खेत की ओर जा रही थी। लडके ऊंट पर चढे तेजी से बढ रहे थे। हर खेत में कोई न कोई खडा था, अपने-अपने काम मे व्यस्त। कातिक का महीना था। हाडी अपने बचपन मे धरती पर हरियाली बिखेर रही थी। जवान लड़किया मेरे आगे-आगे चल रही थी। जिनके सिर पर रोटियां बंधी थी और मेरे पीछे एक युवती घूघट निकाले चपल गति से बढी आ रही थी। उसने भी शायद रोटिया ही बाध रखी थी। सामने चल रही दोनो युवा लड़किया अपनी मस्ती में थी। वे आपस में मजाक करती, इठलाती, मचलती चल रही थी और बार-बार पीछे देख रही थी। मैं कुछ देर तक उन्हीं मे उलझा रहा। फिर पीछे की युवती ने उन्हे पकड़ लिया। अब वे तीनों अट्ठखेलियो मे रास्ते की 'बोरियत' को दूर करती रही, मैं अपने खेत की ओर मुड़ गया, किन्तु उन्हे और आगे जाना था।

मुझे लगा, गाव को घरों की सीमा तक आंकना गलत है। वह तो दूर तक फैला है जहा तक दूसरे गाव का खेत न आ जाये। इस प्रकार एक गाव में दूसरा गाव तहदिल से जुडा है जैसे शरीर के एक अग से दूसरा अंग—कितना मानवीय सानिध्य है !

खेत में घुसते ही पिताजी दिखाई दिए, बिल्कुल एकाकी। मुझे महसूस हुआ कि पिताजी का 'पिता' रूप कितना बेमानी है। मैं और सुन्दर दोनों ही इनके लिए बेमतलब हैं। वे सदा की तरह अब भी सूरज की पहली किरण खेत में देखते है और सूरज की आखिरी किरण भी खेत में। मुझे देख कर वे हर्ष से गद्गद् हो गए। उन्होंने मुझे अपनी हाड़ी की फसल दिखाई—चने, सरसो, और एक हिस्से का गेहू। फसल खडी-खड़ी मुस्करा रही थी। पिताजी उसे देखकर आत्मविभोर हो रहे थे। पिताजी ने इस फसल को जन्म दिया था। एक दिन यही युवा होगी और फिर इसमें फूल लगेंगे और एक दिन फल। इसी आशा में पिताजी इसके साथ दिन-रात जुड़े रहते हैं, कम सोते हैं, अधिक जागते है। इसकी पीड़ा इनकी अपनी पीड़ा है। यह फसल ही इनका जीवन है, प्राण है।

मैंने एक दाती लेकर सूखी बाजरी को काटने का प्रयास किया। उन्होंने टोकते हुए कहा—'अरे' क्या कर रहा है तू, रहने दे, लग जायेगी। बैठकर आराम कर, थक गया होगा।' और उन्होंने मेरे हाथ से दाती छीन ली और खुद लग गए।

पिताजी को कितनी चिन्ता थी मेरी। 'थक गया होगा', 'लग जायेगी।' लेकिन पिताजी को भी तो लग सकती है, वे भी तो थकते हैं, उनके लगने की और थकने की किसी को भी चिन्ता नही होती। मा ने कहा था कि एक दिन इन्हें खेत में साप खा गया था और ये अपने घाव पर मिट्टी डालकर काम पर लगे रहे और शाम को घर आ गये। मां ने बताया इन्हें 'गोगाजी' का इष्ट है, इसलिए साप का इन पर कभी असर नहीं होता। पिताजी अपने इसी एकाकी जीवन से सतुष्ट हैं और इसी में मस्त हैं। आज तक इन्होंने इस पीड़ा की शिकायत नही की, शायद इन्हें इसका एहसास ही नहीं होता होगा।

खेत से लौटते समय मैं कुन्दन की दुकान पर कुछ देर तक ठहर गया।

उसने मुझे एक कप चाय का पिलाया। वह मस्ती से अपने ग्राहकों के साथ जुटा हुआ था। बातों के लहजों में वह वैसे ही माहिर था, फिर इस दुकान पर तो हर वर्ग से उसका सम्पर्क रहता है। इसलिए वह कुशल व्यावहारिक होता जा रहा था। चाय के साथ-साथ जीवन से छिटके हुए रंग-बिरंगे व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करता था जिनमें अपनी ही किस्म का रस टपकता था। ग्राहक चाय के साथ उस रस को भी पीते और विभोर हो जाते। मैं कुन्दन का अभिनय देखकर गद्‌गद् हो गया। ग्राहक से पैसे ऐंठना उसने सीख लिया था। मैं मन ही मन सोचने लगा कि उसकी स्थिति को देखते हुए उसकी कमाई ठीक है, किन्तु घर वालों को थोड़ा बहुत देकर टरका देता है। कुन्दन में कोई ऐब भी नहीं लगता, फिर पैसा जाता कहां है? शायद इसने कहीं और यह गांठ छिपा रखी है। मुझे कुन्दन भीतर का खोटा लगा।

घर की ओर प्रस्थान करते ही मुझे माया से वायदा याद आ गया। रास्ते में एक गली में ही उसका मकान था। द्वार भीतर से बन्द था, इस लिए मैंने दरवाजे पर दस्तक दी। माया ने स्वयं आकर द्वार खोला और मुस्कराकर मेरा स्वागत किया। उसने फिर द्वार बन्द कर दिया। मैं उसके कमरे में उसके बिछे हुए पलंग पर बैठ गया। माया मेरे पीछे-पीछे आ रही थी। उसने आते ही कहा—'तो मैं याद आ गई तुम्हें। चाय तो पीओगे ही।'

—चाय तो मैं पीकर आया हूं, भाभी।

—अरे कहां? झूठ बोलते हो।

—कुन्दन की दुकान पर।

—दुकान की भी कोई चाय होती है, कहकर वह चाय बनाने चली गई।

मैं कमरे में अकेला पड़ गया। मैंने कमरे में दुकानों पर टंगे कलैण्डरों की ओर झांकने लगा। कई अर्धनग्न फोटो टंगी थीं। क्या रुझान है माया का? माया अब युवा नहीं रही, और सारे शोक में जवानी की रवानी भरी है। पढ़ना चाहती है, राजनीति की भी बात करती है और मेरा भी आना यहां जचता नहीं। फिर भीतर कुछ घबराहट-सी हुई। जोरा आ जाए तो

क्या समझेगा ? वह तो बेचारा खेत में रहता है। वैसे जोरा भी नम्बर एक का रसिया है, तभी तो माया उसके पीछे लट्टू होकर भाग आई। जोरा खेत में न जाए तो खाए क्या ? मैंने सुना था कि जोरा इसके घर में दस दिन रहा। वहां उसने खातों का काम किया था। वहीं जोरा की पटरी बैठ गई। जोरा की पत्नी मर चुकी थी और वह इसे रातोंरात भगा लाया।

माया चाय लेकर आ गई थी। उसने एक कप में मुझे चाय दी और एक कप में वह स्वयं पीने लगी। इतनी देर में उसने देश की राजनीति पर अधकचरी बात कर गई। फिर उसने मेरे विवाह का प्रसंग छेड़ दिया और अपना सुझाव दिया कि—'लाओ तो ऐसी लड़की लाना कि उसके गले में से पानी नजर आए।' और झट से उसने घुटने के ऊपर के हिस्से पर अपना हाथ मार दिया, फिर बोली—'देवर, औरत का मजा तो औरत में होता है, अभी देखा ही क्या है ?'

इतना कहकर वह चाय के बर्तन रखने के लिए रसोई में चली गई।

मुझे माया का आज का बर्ताव अजीब-सा लगा। मैंने समझा, सम्भव, आज हूं चंगुल में फंस गया। वैसे माया एक मुंहफट औरत है, उसके स्वभाव में ही ऐसी बातें हैं, यह सोचकर कुछ ढाढ़स भी बंधा।

माया एक पुस्तक लेकर आ गई थी।

माया मेरे से बिल्कुल सटकर बैठ गई थी और पुस्तक पढ़ने लगी। मेरे और उसके जिस्म का कोई दराज नहीं थी, इसलिए मैंने कुछ अलगाव बनाने की चेष्टा की तो उसने फिर अलगाव दूर कर दिया और बोली—मेरे से डरते हो क्या देवर।

—नहीं तो, मैंने कहा 'लेकिन चेहरे में हल्का-सा पसीना आ गया था।

—मर्द होकर डरते हो, उसने कहा और मेरे गालों पर एक चिउंटी भर ली।

फिर उसने मेरी आखों में आखें डालनी शुरू की। मेरी आखों में एक दम झुक गई थी। मुझे लगा कि अब मैं औरत हू और वह मर्द।

उसने मर्दानगी स्वर में कहा—'देखो, तुम अभी बच्चे हो। कुछ सीखा नहीं है तुमने। शादी से पहले बहुत-सी बातें सीखने की होती है।'

उस समय उसके ओठों मे थोड़ा कम्पन आ गया था। उसने एक बच्चे की तरह मुझे गोद मे ले लिया और मेरे गालों को सहलाने लगी और फिर भूखी कुतिया की तरह चाटने लगी। द्वार बन्द करने के बाद उसने सभी कार्यवाही अपने आप की। मुझे किसी प्रकार की कठिनाई नही आई। कहती गई—'तुम्हे सारी ट्रेनिंग दे दूगी।' वह सारी ट्रेनिंग देती गई। बीच-बीच मे मुझे समझाती गई। वह कभी जोर से आखें खोलती, मुझे मुस्कराकर चूमती। फिर एक दम आखें बन्द कर मुझे अपने से चिपका लेती। उसका गुदगुदा शरीर मेरे दोनो बाहों मे था। उसके खुले स्तन मेरे सीने से चिपके थे। उसकी गोरी नगी टागें मुझे पूरी तरह जकड़ी हुई थी।

उसने मुझे मुक्त करते हुए कहा—'देखा, तुम कोई गलती नहीं करोगे।' शायद उसने मुझे सिखाने के लिए ही किया हो।

मैं एक झटके से कमरे से बाहर होना चाहता था। इस भरी दोपहरी मे मैंने यह क्या भूल की, किसी ने देख लिया तो मुझे क्या कहेगा। मैंने अपने कपड़े ठीक तरह से सम्भाले और सचमुच हुआ भी यही। मै बाहर निकला तो मुझे आत्म-स्वरूप मिल गया।

—तुम यहा कैसे ? आत्मस्वरूप ने पूछ ही लिया।

और मैंने चोर की भाति आखें छिपाई और चोर की तरह ही झूठ बोला—'जोरा से मिलने गया था।'

—अरे, यह उस औरत का घर नही क्या जो यहा आते ही नामी हो गई है।

—हमे क्या ? मैंने कहा।

—हा, हमे क्या, वह भी कह गया।

थोड़ी देर बाद आत्मस्वरूप तो मेरे से अलग हो गया, किन्तु माया के जिस्म की महक मेरे शरीर से चिपकी रही। वह महक अब बदबू मे बदल गई थी। किस किस्म की है यह माया। यह भी कोई औरत है, स्साली जूठन कहीं की। इच्छा हुई थी उसके चेहरे पर थूक दू—बेशरम।

शाम को माया एक लोटे में दूध लाई और मा के पास आकर बोली—'देवर को पैसे तो दे नही सकती दूध लाई हू। कभी देवर नाराज न हो जाए। मेरी ट्यूशन की कीमत तो यही है।' मैं अपने पलग पर बैठा

हुआ था। उसने मेरी ओर तिरछी नजर से देखा जैसे कि उसकी भूख स्थायी है और कभी शान्त होने वाली नहीं। उसकी भाव-भंगिमा देखकर मुझे नफरत हुई लेकिन मैंने उसे दबाने की असफल चेष्टा की। शायद मेरी नजर पहचानने में माया सफल हो गई थी। इसलिए वह अपने मुंहफट स्वभाव के अनुसार बोली—'क्यों नाराज हो गए हो क्या? दूध लाई हूं दूध, घी डालकर।'

उसने मुझे अपना दूध पिलाकर ही मेरा पिंड छोड़ा।

आत्मस्वरूप चार दिन तक लगातार शिक्षक-संघ के चुनावों में व्यस्त रहने के बाद स्कूल आया और चार दिन का 'कार्य-अवकाश' स्कूल के रजिस्टर में चेप दिया। चन्द्रकांत ने मेरे से चर्चा की और धीरे-धीरे यह चर्चा कानों ही कानों स्कूल के स्टाफ में फैल गई। वृजकिशोर इस पर सख्त नाराज हुआ, लेकिन उसने आत्मस्वरूप या हैडमास्टर से इस विषय में बातचीत नहीं की। आत्मस्वरूप ने अर्द्धावकाश में स्टाफ के सामने अपनी सफलता और असफलता की डींगें शुरू कीं। उस समय वृजकिशोर भी मौजूद था। वृजकिशोर से नहीं रहा गया, उसने प्रत्यक्ष रूप में आत्मस्वरूप पर सीधा ताना मारा—'अरे आत्मस्वरूप जो व्यक्ति शिक्षक ही नहीं है, वह शिक्षक-संघ का नेता होने का दावा करे, यह आश्चर्य की बात है।'

—आपने यह बात कैसे कही, आत्मस्वरूप के बात चुभ गई।

—इसलिए कही कि भाई, तेरी पांचों घी में है, चुनाव भी कराता है और सरकार से टी. ए., डी. ए. भी ऐंठता है, ऐसा मौका कहां मिलता है? नेताओं में यही गुण होते हैं।

—अच्छा, यह बात है, आत्मस्वरूप गरम हो गया था, उसकी मूंछें ओठों के साथ ही कांपने लगी थीं, तू भी बोलता है यार, छाज बोले सो बोले, छलनी भी बोले जिसमें सैंकड़ों छेद होते हैं। स्कूल में आता है, किसी से रोटियां मंगवाकर, नींद लेकर पार बोलता है, कभी पढ़ाया है क्या किसी क्लास को?

बोलने में वृजकिशोर किसी से कम नहीं था। उसने तुरंत उत्तर दिया

—ऐसे वाहियात स्कूल में मैं पढ़ाऊं, जिसमें जैन जैसा चूतिया हैडमास्टर हो और तेरे जैसा सलाहकार। हम लोगों की सरकार आई तो तेरे जैसों को फांसी पर लटकवा दूंगा।

बृजकिशोर भी अपने आप को राजनीतिक मानता था। वह प्राय: कम्युनिस्टों का पक्षधर था, वह भी कम्युनिस्ट वामपंथी। उसने आत्मस्वरूप को जनसंघी की संज्ञा दे रखी थी।

इस पर आत्मस्वरूप हिल गया। वह खड़ा हो गया और बौखलाने लगा—'अबे रहने दो, मैं जानता हूं तू नक्सलपंथी है। मैं तुझे अभी ठीक कर सकता हूं।'

बृजकिशोर शरीर मे आत्मस्वरूप से तगड़ा पड़ता था। वह खडा होने ही वाला था कि हैडमास्टर आ गया और भावावेशों को चिड़ियायें फर्र से उड़ गईं। उसने आते ही कहा—'आप बहस में जुटे हैं और घंटी बज गई।'

सचमुच घंटी बज गई थी और छात्र कक्षाओं मे लौट गए थे। चन्द्रकांत जो अब तक बातों और बीड़ी का मजा ले रहा था उठ खड़ा हुआ। हम सभी उठकर कक्षाओं की ओर चल पड़े।

क्लास में पहुंचते ही क्लास खड़ी हुई और मेरे बैठते ही बैठ गई। मैंने छात्रों की आंखों से आंखें मिलाईं और छात्रों की चिड़ियों की तरह की चहचहाहट शान्त हो गई। किन्तु मेरे मस्तिष्क में अभी तक विवाद का झंझावात चक्कर लगा रहा था और मैं पढाने के 'मूड' में नहीं था। मैंने उन्हें अपने आप पढने को कहा और मैं स्वयं मन ही मन तर्क-वितर्क के जालों में अपनेआप को उलझाता और सुलझाता रहा। इस अवधि मे मैंने आत्मस्वरूप के व्यक्तित्व के संदर्भ मे मनोरमा के चेहरे को भी तोलने लगा। इसी बीच श्यामी और सावित्री के चेहरे भी मेरे इर्द-गिर्द घूमने लगे और मैं उनकी स्मृतियों से रस के छलकते प्याले पीता रहा।

घंटा बजने के बाद मैंने देखा कि आत्मस्वरूप और बृजकिशोर एक दूसरे से कटे-कटे घूम रहे थे। चन्द्रकांत ने मेरे पास आकर कहा आज दो चोरों मे लड़ाई हो गई। स्साले दोनो अपने आप को नेता कहते हैं और दोनों पहले नम्बर के बदमाश हैं। तुमने इस दोनों की असलियत

बतलाऊंगा।

अगला घंटा हम दोनों का खाली था। चन्द्रकान्त ने भूमिका में बीड़ी सुलगाई और फिर एकान्त का लाभ उठाकर बात बतानी शुरू की—तुम्हें मालूम है, यह आत्मस्वरूप प्राइमरी स्कूल के मास्टर शिशुपाल के घर बहुत आता जाता था?'

—मुझे मालूम नहीं।

—अरे, तुम सीधे भोंदू हो।

—इन दोनों में बड़ी यारी थी। उसके पास है पोस्ट-आफिस। पोस्ट-कार्ड लिफाफे के नाम पर उसके घर चला जाता है। फिर उसके पास बैठने लगा।

—हां, हां।

—यार, तुम किसी को बताना मत। बात बड़ी गोपनीय है। मैंने किसी को नहीं बताई है। शिशुपाल की औरत खूबसूरत है। उसकी लार टपकने लगी। स्साली वह औरत भी बड़ी खुली तबियत की है, हर एक से बोल लेती है। तीनों घंटों बैठे गप-शप करते थे। यह अपने नेतापने का रौब गांठकर, कभी उसकी तरक्की की बातें करता, कभी उसे मेडिकल दिलवाता। इसको वहम हो गया कि औरत पट गई। शिशुपाल हो गया बीमार। इसने शिशुपाल को अस्पताल में भर्ती करवा दिया। इसको विश्वास था कि औरत मना करेगी ही नहीं। इसने घर पर उसे अकेली जानकर छेड़ लिया और औरत ने इसके पीठ-पीछे एक चीमटा जमा दिया। यहां तक तो बात छिपी रही। शिशुपाल को मालूम होना ही था। उसने आत्मस्वरूप को चुनौती दी कि वह या तो आत्मस्वरूप को पिटवा देगा या उस पर कोर्ट-केस करेगा। हेडमास्टर ने बीच में पड़कर बात खत्म करवाई। यह है तुम्हारा शिक्षक-नेता।

—स्साला, कमीन है।

—कमीन क्या है। बहुत गंदा है यह। इससे डर यो लगता है कि यह इन्स्पेक्टर के क्लर्कों से मिला रहता है, ट्रेजरी वालों से मिला रहता है। स्साला, कहीं खराब न करदे, बस इसीलिए इससे जैराम जी की बनाये रखते हैं।

चन्द्रकान्त ने फिर दूसरी बीडी सुलगा ली।

मुझे मन ही मन बडी हँसी आयी। मेरी इच्छा हुई कि मै जोर से हँसूं और मेरी समस्त हँसी शिक्षा-जगत मे गूंज उठे।

चन्द्रकान्त ने बीडी का अच्छा-सा कस लेकर दूसरी वार्ता चालू की।

उसने कहा—अब बृजकिशोर—वार्ता प्रारम्भः। सुनो, बृजकिशोर जी कुछ दिन शराब पीकर झुग्गियो मे चले गये और वहा उन्होंने भाषण देना प्रारम्भ किया। वह कई बार किसी टोह मे वहां घूमा करता था। झुग्गियों वाले भी इसकी टोह मे थे। इसने शायद वहा कोई खुरापात कर ली थी। उन्होने इसे पकड़कर पहले तो जँचाकर पीटा और फिर उसे थाने मे ले गए। थाने वालो ने पहले तो इसकी शराब उतारी, फिर उसे जेल मे डाल दिया। उन्हे सुबह मालूम हुआ कि ये तो मास्टरजी हैं। उन्होने इसे छोड़ दिया।

मैंने और चन्द्रकान्त ने मिलकर एक अट्टहास किया। स्टाफ रूम की दीवारें कापने लगी।

चन्द्रकान्त बाहर पेशाब करने चला गया था। मैंने अपने मन मे सोचा कि हर आदमी नगा होता है। किसी का नगापन किसी कारणवश सामने आ जाता है और कुछ उस नगेपन को छिपाने मे सफल हो जाते है। मुझे भीतर ही भीतर आपने नगेपन का एहसास होने लगा।

ठाकर बामण गिने दिनो मे इतनी तरक्की कर गया कि वह बहु-चर्चित व्यक्ति बन गया। कुछ तो उसकी तरक्की से इतने जलने लगे कि उसे बद-नाम करने के लिए उसकी चर्चा करने लगे। उसमें एक खासियत भी थी। वह यदि किसी को लडा सकता था तो मिला भी सकता था। मिलाने की नियत से ही वह लडाता था। लडाने का वह कुछ भी नही मागता था, किन्तु मिलाने का मूल्य दोनो को चुकाना पडता था। घेटू चमार और मूले खाती को उसने मिलाया। दीपो जाट और दौला वनिया उसकी वजह से मिले। सोहन बामण और दूल्हा नायक दोनो उसी की मेहरबानी से एक घाट पानी पीने लगे। यहा तक कि पुलिस ओर कचहरी वाले भी उसकी धाक मान गए। इन दिनो उसने मोटी के स्थान पर महीन खद्दर धारण कर ली।

यह मुझे जाते समय रास्ते में मिल गया था। मुझे देखते ही वह ठहर गया। उसके ठहरने का भी कारण था। उसने ठहरते ही बात चालू कर दी—'देख भाई, तू है गांव का मास्टर, तुझे हमारे बच्चों का फिकर ज्यादा करना चाहिए।'

मैंने कहा—'हुक्म करो।'

फिर उसने हैडमास्टर और उसकी व्यवस्था को जमा कर चार खुश करने वाली गालियां निकाली। बाद में उसने प्रस्ताव रखा—'मेरे बच्चे को घर पर पढाना है।'

—किसी के पास इन्तजाम कर देंगे।

'किसी' के नाम पर फिर उसने दो गालियां दोहरायी—'पढ़ाना है तो तू ही पढा, मैं और किसी को नही जानता। जो लेना है सो ले लेना।'

ठाकर के पास ठहरने को समय कहां था? किसी ने आवाज दे दी—'पंडित ठाकरदत्त जी।'

दरअसल, तरक्की में एक बात यह भी थी कि वह सामने 'ठाकर' से 'ठाकरदत्त जी' होकर पंडित शब्द से सुसज्जित हो गया था, पीठ पीछे 'ठाकर बामण' शब्द ही अस्तित्व बनाए हुए थे, यद्यपि निकट वाले अब भी 'ठाकर' कहकर सम्बोधित कर जाते थे। 'ठाकर' इन शब्दों की कभी चिन्ता नहीं करता था।

इन दिनों गांव में एक नई किस्म का व्यापार चालू हो गया। इसकी देन का श्रेय भी ठाकुर बामण को ही मिलना चाहिए। जरूरत तो सभी को होती है, किन्तु किसान की जरूरत अपनी ही किस्म की होती है। किसान के पैसा साल भर में दो बार में आता है, किसी स्थान पर एक ही बार। किन्तु इस स्थान पर दो बार आ सकता था—सावणी की फसल और हाडी की फसल। पैसा ही एक ऐसी चीज है जिसकी जरूरत आदमी को हर वक्त होती रहती है। छोटी-मोटी जरूरत तो किसान को बनिये की दुकान से ही मेटनी पड़ती है, चाहे कोई कितनी ही अक्ल दौड़ाले, कभी-कभी बडी जरूरत किसान को पसीना ला देती है। नये ठाकर को अपनी लडकी की शादी करनी थी। घर-घर घूम आया, पैसे नहीं बने। आखिर [illegible] के पास आया।

ठाकर ने कहा—'पैसे ले ले जितनी मर्जी आए, लेकिन ऐसे नही। अपनी जमीन रख दे, ब्याज पर या आध पर, यह तेरी छूट है।'

नये ठाकर को आध पर जमीन रखनी पडी, बेटी का ब्याह बीच मे थोडे ही रख देता।

घड़सी कुम्हार के दो लड़कों की एक साथ शादी तय हो गई, ठाकर बामण ने काम निकाला, लेकिन आधी जमीन उसकी भी गई।

बूधा नाई मुकदमा जीत गया, ठाकर बामण की वजह से जीत हुई। बूधा नाई को खेत जाने की जरूरत नही। सारी जमीन ठाकर को सम्हालनी पड़ी। वह गाव के चौक में लोगों को कांच दिखाकर उस्तरा चलाता है।

बूढ़े आदमी धरती को मां मानते हैं और कहते हैं—'धरती कभी इन्कार नही करेगी, मां इंकार शायद कर भी देवे। धरती बेचते हो तो मा बेचते हो। धरती को गिरवी रख दो या मा को गिरवी रख दो, एक बराबर है।'

ठाकर का दर्शन नई पीढी का दर्शन है। अग्रेजों की नीति तो फूट से राज करने मे थी, किन्तु ठाकर फूट करो, मिलाओ और राज करो। इस नीति में ठाकरदत्त सफल भी था। गांव वाले उसकी आलोचना भी करते थे, किन्तु काम पड़ने पर उसी के पास जाते थे। पच, सरपच भी अपने अस्तित्व को बचाने मे कठिनाई महसूस करने लगे थे और बौखला गए थे। क्योंकि गांव में उनकी कदर कम होने लगी थी। दरअसल, आलोचना भी उसी की होती है जो समाज में अपना महत्व स्थापित करले और इस आलोचना से ठाकर अपनी सफलता ही मानता था। उसके लम्बे-दुबले पतले शरीर पर खद्दर का चोला भद्दा ही लगता था, किन्तु उसको पहन कर ठाकर निकलता था, तभी वह पहचाना जाता था। गाव का एकमात्र कानून विशेषज्ञ पडित ठाकरदत्त अपना अस्तित्व बना चुका था जिसे समाप्त करना अब आसान नही था।

एक दिन मां ने एक खबर सुनाई जो उसकी दृष्टि में खुशखबरी थी। खबर थी—'सम्पत् तेरे ताया ने अपनी ग्यारह किले जमीन बेच दी।'

—जमीन बेच दी, मुझे सुनकर आश्चर्य हुआ, किसे बेच दी मा?

—क्यो बेच दी, मैंने फिर पूछा।

—तुझे पता नही, मा ने बताया, तेरे ताया के पूरा पांच हजार कर्जा है।

—कर्जा तो है मुझे पता है।

—फिर क्या करते, जमीन बेच दी, पांच हजार का ब्याज भी बढ़ रहा था। ब्याज रात को सोता नही, वह चलता रहता है, बढ़ता रहता है। फिर जुगल की शादी भी तो करनी है। कितना बड़ा हो गया है, पूरे पैंतीस साल का है। इसे कौन ब्याहता। किसी को दे लेकर ब्याहेंगे।

—जमीन नही बेचनी चाहिये, क्यों मा ?

—बिल्कुल नही बेचनी चाहिए, मां ने कहा, जमीन बिकी, इज्जत बिकी। पगले, जमीन है, सब कुछ है। जमीन जवाब नही देती, बेटा जवाब दे देता है। यह पैरों नीचे है तो आदमी बादशाह है। पैसा क्या है, आज है कल नही।

मैंने मा की बात स्वीकार की।

मैंने मा से कहा—'मा' इस गाव के कुछ आदमी ऐसे हो गए हैं जो इस गाव को उजाड़ कर छोड़ेंगे। गाव के अस्सी फीसदी आदमी कर्जदार हैं और सौ में पन्द्रह गुजारा करते हैं, लेकिन पांच ऐसे है जो गाव को लूटने पर तुले हैं। पता नहीं, यह काफिर कहा से पैदा हो गया ? यह लोगो को उजाड़ कर छोड़ेगा। तायाजी ने अच्छा नही किया।

—याद है तुझे, मा बोली, एक दिन तेरे ताया ने ताना मारा था जब अपनी जमीन गिरवी पर थी और आज तेरे ताया का वह गरब कहां गया ?

दरअसल, मां तो वह पुरानी गांठ बांधे थी और आज उसे खोलने का अवसर मिला।

मां यह कहकर उठ खड़ी हुई और काम में लग गई। उसका शरीर अब दिन पर दिन धनुषनुमा होता जा रहा था। उसकी पेट की चमड़ी लटकने लगी थी। किन्तु मा की कार्यनिष्ठा मे अब भी कोई अन्तर नही आया था।

परीक्षा निकट आने लगी और अध्यापकों के घरो में भीड बढ़ने लगी छात्रों की भीड़, ट्यूशन की भीड़, भीतर ही भीतर एक नारा—

'ट्यूशन करो, पास होवो।' छात्रों के संरक्षकों में एक आतंक—ट्यूशन नहीं करेंगे तो एक साल का खतरा। क्या हर्ज है, रुपया मत्थे मारो, गारंटी तो हो गई। वकील भी तो पैसों से ही पैरवी करता है—एक पैरवी मात्र, वरना पढाने को तो स्कूल में भी पढाई होती है। कभी भिन्न-भिन्न क्लासों के लड़के एक जगह एकत्रित कितनी पढ़ाई करते है? गरज बड़ी चीज है, गरज है तो भेजो। कुछ लोगों के दिमाग की आवाज—एक नया शोषकवर्ग। लेकिन इलाज क्या? पटवारी पैसे ले लेता है—खुले आम। ओवरसियर पैसे लेता है—दिन दहाडे। पुलिस वाले—राम रे राम, पीटते भी हैं, पैसे भी लेते है। मास्टर बेचारा कुछ तो पढाता है। मास्टर ही तो है—बेचारा मास्टर, गरीब मास्टर—इसकी भी तो मजबूरी है, बच्चो को पालता है यह भी—सूखे-सूखे चेहरे—एक गहन सहानुभूति। भीड बढती रहती है। एक दिन पूरा घर भर जाता है—किलबिल, किलबिल। मास्टर पूछता है—अरे, अपने बाप से पैसे नही लाया, कल जरूर ले आना भला।

—लाऊंगा जी, बैठ जाता है।

छात्र खड़े होने, हाथ जोड़ने और 'जी' कहने तक का अभ्यास कर चुका है—झूठ, सच, कोई अन्तर नही पडता।

—तेरे पांच रुपये बाकी रह गए,

—कल ले आऊंगा जी।

—आज का कहा था तूने?

—पिता जी घर पर नही थे जी

—अरे, तू।

—नही लाया जी।

—अरे घी ला दे।

—अच्छा जी।

—तुम चार लडके जाओ, पानी लाओ।

चलो, जेल से तो पिंड छूटा। इससे पानी लाना अच्छा। मास्टर के लिए करकराहट कम हो गई। भीतर से आवाज आई—लकड़ियां खत्म हो गई हैं, रोटी कैसे बनेगी?

—अरे, तुम दो जाओ, चौधरी मोमन के घर। मैंने कह रखा है, एक

भारा थेपड़ी ले आओ।

अच्छा जी, दोनों का खड़े होकर स्वीकृति का मिश्रित स्वर।

—सुनो तो, भीतर से फिर आवाज।

—क्या है ? पढ़ाने देगी या नहीं, इम्तिहान सिर पर आ रहा है।

—आटा तो मंगवाया ही नहीं, खाओगे क्या ?

—कल याद नहीं दिलवाया ?

—कल तो पिसने ही नहीं गया।

—अच्छा तुम जाओ, चक्की से आटा ले आओ।

इतने काम एक साथ करवाने का सामर्थ्य केवल मास्टर के पास है। फिर भी गरीब मास्टर ? एक दर्रा पड़ गया है कहने का और कहलवाने का। एक गरिमा घट कर 'गरीब' शब्द पर इतनी बुरी तरह अटक गई है कि इसे इस कटीली टहनी से निकालना दुष्कर हो गया है। दरअसल, हर नजर पर स्वार्थ का चश्मा है और इस कौम का स्वार्थ से सीधा संबंध नहीं। फिर 'प्रणाम' और 'जी' की सदाबहार में झेंप की शुष्कता लिये घूमे तो उसका इलाज भी क्या ? नसीब को साथ लिए घूमे और नसीब को नहीं स्वीकारे तो नसीब देने वाला भी नाराज हो जाता है। फिर सम्मान बेचारा करे भी क्या ? बट-बटकर छोटा भी तो हो जाता है।

शाम को कुन्दन की ओर चला गया था। गर्म भट्टी के पास बैठा चाय बना रहा था। सामने एक खासी भीड़ को लिए बैठा था—ठाकर बामण। ठाकर ने एक खास अदा से दस कप बनाने का 'आर्डर' दिया। उसके चेहरे पर एक अजीब किस्म की मस्ती थी और एक मदभरा सहजा था।

इस समय कुन्दन और ठाकर की आंखें मिल गई थी और एक पल मे तार से तार जुड़े थे, आंखें मुस्कराई थी और एकदम कुछ कहकर हट गई थी। दोनों ने समझने मे देरी नहीं की। फिर ठाकर ने आदेश दिया—अरे, क्या समझता है कुन्दन ? आज मैं ऐरों गैरों के साथ नहीं। ये चौधरी है चौधरी—चार गांव के चौधरी।

—हां, पंडित जी, हुक्म तो करो। आपका हुक्म और मैं मानू नहीं।

इतने में ही गांव का पटवारी आ गया—रामकिशन।

—पंडित जी, राम राम।

—राम राम जी, राम राम, पंडित जी ने जवाब दिया।

—अरे, कुन्दन, एक कप चाय और।

—अच्छा पंडित जी,

—अरे, कुन्दन, ठाकर ने कहा, वह पुलिस वाला भी मर रहा है, हरामी, इधर ही आ रहा है, जमादार है स्साला ?

—आइये, आइये, जमादार साहब, बड़ी उम्र है आपकी, ठाकर ने हाथ हिलाते कहा।

—अरे, कुन्दन एक कप और।

—मीठा कितना बताया, पंडित जी, कुन्दन ने फिर मौका ताककर कहा।

—अरे, आधा किलो तोल दे। तू क्या समझेगा कि ठाकर तेरी दुकान पर आया था।

—अरे, बस तो नहीं आ जायेगी, पटवारी ने बीच में टोकते हुए कहा।

—बस आ जायेगी तो जमादार साहब किस लिये हैं ? कुन्दन ने सैल्यूट मारते हुए कहा।

—परवाह क्यों करता है ? जमादार ने कहा, मीठा और मुजिरा दोनों आने दे।

—यह बनी न बात, कुन्दन ने सन्तोष के स्वर में कहा।

चाय बनने लगी। साथ में बातों की फुलझड़ियाँ जगमगाने लगी। पटवारी, जमादार और ठाकर देश की बात करने लगे, राज की बात करने लगे। साथ में बैठे कुछ चौधरी घुटन का थूक निगल रहे थे। कुन्दन ने एक कप और कुछ मीठा मेरी ओर सरका दिया। चाय पीते-पीते बस भी आ गई थी। एक चौधरी ने आकर कुन्दन का हिसाब कर दिया। थोड़ी देर बाद बस के साथ एक भीड़ छट गई और दूसरी भीड़ शुरू होने को थी। इससे पूर्व कुन्दन और मैं अकेले थे। पता नहीं, मैंने क्यों कह .
'कितने बदमाश हैं ये लोग ?'

—'अपने लिए सब ठीक हैं।' कुन्दन ने जैसे मेरी ·
किया। उसका तात्पर्य शायद यह था—'मैं भले से क्या ·'

यही कुछ देकर जाते है। इसी भीड से मुझे लाभ है ? बदमाश होंगे किसी के लिए, मेरे लिए तो यही सज्जन हैं।'

कुन्दन की इस छोटी-सी दूकान पर फिर भीड बनने लगी—नई बस के इन्तजार मे, आदमी और औरत। कंदन फिर अपने काम में व्यस्त हो गया। मैं घर की ओर रवाना हो गया। रास्ते में पानी लाती हुई औरतें मिली, अपने घूघट पट में अपना मुखडा छिपाए। गाव की वहू या बेटी का अतर घूघट ही तो था। घूघट वाली बहू और बिना घूंघट वाली बेटी। घूघट भी अपना महत्व रखता है। पूर्ण घूघट का आवरण सौन्दर्य का एक रहस्य छिपाए रखता है। कब घूघट हटे और कब सौंदर्य का पान किया जाये। घूघट तो हटता ही नही और वह रहस्य बना रह जाता है। दूसरे प्रकार का घूघट सौंदर्य का भीना-भीना प्रदर्शन करता है। सुन्दरी पनिहारी अपनी दोनो हाथो की अगुलियो से पट के दोनों कोनों को पकड़ कर घूघट को—कभी इधर कभी उधर का नाच-सा करवाती है—लुक-छिप का-सा एक खेल—जैसे गली मे गुलाबी सौंदर्य की पंखुड़ियां बिखरती हुई चलती हैं। आंखो के ऊपर तक के घूघट मे कभी-कभी आंखें और ओठ दोनों मुस्करा देते है—उस समय ढेर-सी मादकता समूचे वातावरण को गुदगुदा देती है। मैं इसी प्रकार के मोहक माहौल को चीरता इठलाता घर पहुच जाता हू।

घर का वातावरण कुछ गुनगुना-सा था। मां किसी बात से नाराज थी। नाराजगी का कारण भी थोडी देर में सामने आ गया—पिताजी ऊंट बेचने की तैयारी मे थे और वह भी सस्ते भाव से।

मैंने पूछा—ऐसी क्या बात हो गई ?

मा ने कहा—अरे, वह किराड है न, दोलिया।

—हां, हां।

—वह अपने पैसे मागता है, दिन तो बहुत हो गये होंगे। घर पर आकर उसने शोर किया। कहने लगा दावा कर दूगा।

—अच्छा।

—तेरे पिता जी को गुस्सा आ गया। कहने लगे, ऊंट बेच दूंगा और क्या है मेरे पास ?

—कहा है वह किराड़ ?

—गया होगा अपनी हाट पर।

—मैं देखता हूं उस साले को। बड़े कमीन होते हैं ये लोग। गरज होती है तब स्साले ठाकुर साहब, चौधरी जी चौधरी जी, करते रहते है और पैसे माँगते समय सारे सबंध कागज की तरह फाड़ कर फेंक देते है। बाद मे, आओ, ठाकुर साहब, भूल हो गई। मैं देखता हू उस हरामजादे को।

मैं उन्ही पैरों से चलने लगा।

मा ने कहा—अरे ठहर तो। कहाँ जाता है ? तेरे पिता जी को आने दे। पता नही, वह क्या करने गये है। उनकी भी तो अक्कल मारी गई। एक हजार का ऊंट पाच सौ मे फेंक देंगे। कोई पैसा मांगने आता है, इनको गुस्सा आ जाता है। मांगने वाला तो पैसा मागेगा ही, इसमें गुस्सा किस बात का ? उसने भी चीज दी है, मुफ्त में तो नही मागता।

मां ने अपनी धनुषाकार कमर सीधी की और बात को ऐसा मोड़ दिया कि संतुलन बिगड़ते-बिगड़ते बच गया। मेरा इच्छा हुई कि स्साले बनिये की गर्दन पकड़ ले।

इतने मे ही पिता जी आ गए। मां को डर था कि कही ये कबाड़ा न कर आएं। कबाडा यही ऊंट बेचने का। मां ने सहमे-सहमे पूछा क्या कर आये ?

—कुछ नही, पिता जी ने कहा।

—ऊंट तो नही बेच आये।

—मैं तो नोहरे मे था।

—गये थे न।

—बनिए को धमकी दी थी, चला गया स्साला। पैसे तो समय आने पर ही बनते हैं।

मा के चेहरे पर जो क्रोध के अंगार उछल आए थे, वे इस शीतलता से बुझ गए। एक संकट जो आने को था, टल गया।

मैंने पूछा कितने रुपये है ?

—होंगे सौ-सवा सौ, पिता जी ने बताया।

—सौ सवा सौ तो पिछले साल ही थे, मां ने कहा, व्याज नहीं बढ़ा

क्या ?

—होगा कुछ ब्याज ब्यूज भी, पिता जी ने लापरवाही से जवाब दिया।

मैंने मन ही मन सोचा यह कर्ज तो द्रोपदी का चीर बन गया, कभी इसका अन्त ही नही होगा। मैं अपना पूरा का पूरा वेतन इस आग मे झोंक देता हूं, फिर भी समुरी बुझती ही नही और जल उठती है। कुन्दन को इसकी चिन्ता ही नही। वह अविवाहित है, फिर भी अभी से अपने घर का व्यवस्था में जुटा है। वह थोड़ा-सा फेंक कर टरका देता है।

मैंने मा से पूछा—कुन्दन कुछ देता है या नही।

—क्या देता है ?

—कमाई तो उसकी अच्छी है। खर्च भी उसका कुछ नही।

—उसके पेट मे छुरी है।

—इस हालत मे ही छुरी है तो शादी के बाद क्या होगा ?

—शादी के बाद वह मौज करेगा, और होगा क्या, पिता जी बोले।

—हो सकता है उसने कही ब्याज पर दे रखे हों, मैंने सशय प्रकट किया।

—आजकल के छोकरे भी इतने तेज हो गये ? मा विस्मय की भाषा मे बोली।

हवा का एक तेज झोका आया और सबको धूल से भर गया। सभी उस मायूसी के वातावरण से अलग हो गये एक ही घुटन के पाले हुए।

स्कूल की परीक्षा चालू हो गई। पर्चे बटने लगे, पर्चे किए जाने लगे और अध्यापक परीक्षक बन गया। कॉपियो के गट्ठर घर पहुंचने लगे। परीक्षक के हाथ में लाल पेन्सिल थी, छोकरों की तकदीर का फैसला किया जा रहा था। हर परीक्षक के पास हर अध्यापक से एक सूची मिल जाती —रोल नम्बरो की सूची जिन्हे जरूरी पास करना था। यह सूची निश्चय की सूची थी कि अमुक अध्यापक के पास इतनी ट्यूशनें हैं। मेरे पास भी कॉपिया आईं और सूचियां भी। जो पहले कटे-कटे थे और अब सटे-सटे रहने लगे।

मैंने कापियां सम्भाली और लाल पेन्सिल। कॉपियां देखी और फिर सूचियों से मिलान किया—सब के सब फेल। फिर कोशिश की कि किसी ढंग से निकले और कुछ निकले भी। एक प्रयत्न और किया, कुछ और निकले। अब रह गये सो रह गये। अब दूसरा बंडल, वही प्रक्रिया। उसमें भी कुछ रह गए। इसी प्रकार तीसरा, चोथा, पांचवां यानि सभी बंडल।

शायद चन्द्रकात और मैं दो ही व्यक्ति ऐसे थे जिनके पास ट्यूशनें नहीं थी। मेरे पास फिर भी मनोरमा की ट्यूशन थी जिसका स्कूल से तो कोई संबंध नहीं था, किन्तु चन्द्रकात के पास ट्यूशन कतई नहीं थी। उसका कारण यह नहीं था कि चन्द्रकांत ट्यूशन करना नहीं चाहता था, किन्तु इसलिए कि वह केवल संस्कृत और हिन्दी का अध्यापक था जिनमें छात्र प्रायः फेल नहीं किये जाते। मैं जानबूझकर ट्यूशन टालता रहा। टालने का कारण यह रहा था कि मुझे पैसे की चाह नहीं थी। दरअसल, जो भी विद्यार्थी मेरे पास ट्यूशन के लिए आया, वह इतना कमजोर था कि ट्यूशन से भी पास नहीं हो सकता था। चन्द्रकात ने भी मुझे इस क्षेत्र में हतोत्साहित करने की चेष्टा की। दरअसल, उसे तो इस पेशे से ही चिढ थी। अब पास करने के दांव-पेच प्रारम्भ हुए, तब मैंने उससे राय लेनी चाही—'चन्द्रकांत जी' लड़के तो पास नहीं हो रहे है, क्या करू ?'

—कितने रह रहे हैं ? उसके प्रौढ़ चेहरे ने गम्भीरता धारण कर ली थी।

—रह तो काफी रहे थे, किन्तु मैंने निकालने की कोशिश की, फिर भी रह रहे हैं।

—तो भी कितने ?

—ऐसा है कि मुझे हर अध्यापक की एक सूची मिली और हर सूची में दो-दो तीन तीन रह ही गए, मैंने कहा।

चन्द्रकांत बोला—'वास्तव मे ये मास्टर भी ज्यादती करते है। लालच की भी हद होती है। तुम मानोगे नहीं, सारा स्कूल ही ट्यूशन पर है। ट्यूशन करने वाला पास होना चाहता है। सब आपस में मिलकर पास-वास तो कर देते हैं, लेकिन वह कमजोरी फिर अगली क्लास में बनी रहती

है। पढाते ये है नहीं। रहते हैं तो रहने दो, मभी का कोई ठेका थोड़ा ही है।

—एक बात और है। मैंने कहा।

—क्या ?

—ठाकर बामण का छोकरा भी रह रहा है। करूं भी क्या ? कोरी कॉपी में कैसे नम्बर दिए जाए ?

—रहने दो स्साले को, चोर-उचक्का कहीं का ? लेकिन एक बात है यार वह शोर करेगा।

—लेकिन मैं क्या करू ?

—अच्छा, देखा जाएगा।

एक दिन आत्मस्वरूप घर पर आ गया। उसने एक सिद्धांत की पृष्ठभूमि पर आधारित बात प्रारम्भ की—'सम्पत् तुम अभी बच्चे हो। जिंदगी का तुम्हें अनुभव नही। मैंने प्रयत्न किया कि तुम भी ट्यूशन करो। तुम्हारा घर मेरे से छिपा नहीं। मैंने कई लडके तुम्हारे पास भेजे, तुम इन्कार करते रहे। हम मास्टर हैं और मास्टर की स्थिति किसी से छिपी नही। हमारी दुर्गति का एक कारण यह भी है कि हमारे में फूट है। तुम गाड़ी में जाओ, किसी भी रेलवे के पास टिकट नही होगी। तुम तहसील मे जाओ, सब मिलकर खाते है। पुलिस मे रिश्वत खूब है, कभी कोई लड़ता देखा है। सिंचाई का महकमा—खूब रिश्वत है यहा, लेकिन सब एक। दरअसल, हम एक नही, तभी यह गड़बड़ है। इज्जत हर एक को प्यारी है। कोई किसी का लड़का फेल हो जाए, हमारी साख गिरती है। कौन ट्यूशन करेगा हमारे पास ? मैं तो शिक्षक का हितैषी हू। शिक्षक प्रतिष्ठा बढ़े, उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो, उसे समाज मे मान मिले। आज अर्थ ही मान-सम्मान का माप-दड है, इसलिए मैं शिक्षक को प्रेरित करता हूं, खूब ट्यूशन करो और हैडमास्टर को भी पैसा दिलाता हू। वह भी तो अपना भाई है। यही दुनियादारी है, सम्पत्। हमारा एक भी लडका फेल हो जाये, हमारी इज्जत जायेगी, ट्यूशन की साख गिरेगी। और ये छोकरे, क्या करना है इन्हे पढकर ? इन्हे तो हल चलाना है। मां-बाप खुश हो जायेंगे कि मेरा लडका पास हो गया। छोकरा खुश कि मैं पास हो गया।

हैडमास्टर भी सतुष्ट कि उसका रिजल्ट अच्छा रह गया और मास्टर के पैसे पक्के। तुम बचपना मत कर देना। और एक बात और—तुम चाहो तो तुम्हे भी कुछ दिलवा दूं—बोलो।

मैं असमजस मे पड गया कि मैं इस शिक्षक-नेता को क्या जवाब दू। मैं टुकर-टुकर आत्मस्वरूप की ओर देखता रहा, उसकी एक-एक बात निगलता रहा। जीवन के नये सिद्धांत जो अब तक किसी पोथी मे नही पढ़े थे, उन्हे सुनता रहा।

—अच्छा, तो मैं चलूं, शायद आत्मस्वरूप ने सोचा कि उसके हथियार काम कर गए।

मास्टर रामकिशन इन सबमे समझदार लगा। उसके सभी छोकरे पास हो रहे थे, फिर उसने मेरे से सम्पर्क साधा। उसने साफ-साफ कहा—'देख भई, सम्पत्, अपने तो सारी बात जानते हैं और समझते हैं। लडकों को स्कूल मे पढाते है और घर पर भी नही पढाते। पास न होने वाले लडके को पकड़ते भी नही। फिर भी उससे गारंटी की बात नही करते। पैसे लेते है तो मेहनत के। ठेका तो है नही। तुम देखोगे, मेरे लडके कमजोर नही हैं। लेकिन एक बात जरूर है कि कोई चिढकर मेरे लडके पर छुरी न चला दे। बस इतनी प्रार्थना जरूर करता हू।'

परीक्षा परिणामों की चर्चा भी चुनाव-परिणामो से कम महत्वपूर्ण नही होती। बातें भीतर ही भीतर सभी कानो तक पहुंचने लगी थी। एक दिन मनोरमा ने भी बात छेड दी। वह बोली—'मैंने सुना है कि आप बहुत लडको को फेल कर रहे हो।'

—कौन कह रहा था ?

—विनोद से सुना था मैंने तो।

—बुलाओ तो विनोद को।

विनोद को मनोरमा ने आवाज दी और विनोद आ धमका।

मैंने पूछा, 'विनोद, तुम्हे कौन कह रहा था कि मैं लडकों को फेल कर रहा हूं।'

—'मैं आत्मस्वरूप जी के यहा बैठा था, उस समय लड़कों मे बात चल रही थी।'

—अच्छा, जाओ।

विनोद चला गया।

मैंने अब तक मनोरमा के सामने आत्मस्वरूप की बात नहीं की थी। आज स्वतः चर्चा आ ही गई, मुझे कुछ कहना पड़ा। शायद नहीं भी कहता, लेकिन विनोद ने इस प्रकार नाम लिया कि मुझे उसके नाम पर थूकने की इच्छा हुई। मैंने पूछा—'मनोरमा, एक बात पूछूं, तुम्हारा इस आत्मस्वरूप से क्या सम्बन्ध है ?'

—कुछ भी नहीं, इतना उसने कहा तो सही, किन्तु उसका चेहरा लज्जा से एकदम लाल हो गया। उसकी आंखें झुक गईं।

मैंने कहा—'मैंने सुना है कि आत्मस्वरूप तुम्हें पत्र लिखता रहा है।'

उस समय मनोरमा ने अपने चेहरे पर गुस्सा उतार लिया और फड़फड़ाते हुए ओठों से बोली—'कौन है वह नीच जो मेरे बारे में ऐसी बात बनाता है। मैं स्साले की गर्दन मरोड़ दूं।'

मैंने फिर कहा—'मैंने आत्मस्वरूप का पत्र तुम्हारी कॉपी से पकड़ा था।'

मनोरमा की लालिमा चेहरे से उतर गई और वह सफेदी में बदल गई। प्रयास करने पर भी उसकी आंखें ऊपर नहीं उठ सकीं।

मुझे उपदेशक का रूप धारण करना पड़ा। मैंने सच्चरित्रता पर एक भाषण-सा दे दिया। वह मेज पर कई देर तक अंगुली चलाती रही। थोड़ा-सा निशान भी उस स्थान पर उभर आया था। अन्त में मैंने इतना ही कहा—'बात मेरे तक है, पत्र भी मेरे पास है। मुझे तुम्हारे जीवन का ध्यान है—एक कुमारी का जीवन। लेकिन जीवन में बचपना नहीं करना चाहिए।'

मैंने उठते समय पहली बार मनोरमा के कपोलों पर हल्की-सी थपथपी दी। उसके चेहरे पर फिर से लालिमा लौट आई। मेरा शरीर रोमांचित हो गया और हृदय स्पंदनशील। लौटते समय रास्ते भर मैं श्यामी और सावित्री की स्मृतियों को चबाता रहा। एक मादक रस मेरे भीतर पैठने लगा—एक हल्का-सा नशा जो जीवन के लिए जरूरी-सा होता है। अब [illegible] का नया चेहरा मेरे सामने उभर कर आ रहा था।

शायद दूसरे ही दिन ठाकर वामण मेरे घर पर आ धमका था। वह पहले तो स्कूल की अव्यवस्था मेरे सामने प्रस्तुत कर मेरी सहानुभूति जीतना चाहता था। इस संदर्भ में उसने चार-पांच गालियां हैडमास्टर को निकाली और एक दो गाली आत्मस्वरूप को निकाली। उसने आश्वासन दिया कि वह दोनों के तबादले का प्रयत्न करेगा। इस प्रसंग में उसने ऊपर के नेताओं के नाम भी गिनाए और उस पंक्ति में उसने मुख्य-मंत्री तक का नाम ले लिया। अन्त में अपने-अपने लड़कों को पास करने का आश्वासन मांगा। उसकी बांह इतनी भारी थी कि मैं उसके बोझ से दबने लगा, किन्तु उसने जल्दी ही इस बोरियत से मुक्त कर दिया। उसके जाने के बाद मुझे इस बात पर आश्चर्य हुआ कि जो कुछ मैंने किया है उसका जनता में भी इतनी द्रुतगति से क्यों प्रचार हो गया। मुझे महसूस होने लगा कि मेरे विरुद्ध कोई षड्यन्त्र रचा जा रहा था।

भोर के मीठे सपने ने मुझे जल्दी जगा दिया। सपना सपना न होकर वास्तविकता-सी लगी। श्यामी मेरे गले लगकर रोई थी। मैंने उसके आंसुओं को पोंछा था, उसके गालों को सहलाया था। मेरे भीतर एक चाह जागी थी कि मैं उसके गालों को चूम लूं और वह कच्चा धागा तोड़ दूं जो उसने कभी बांधा था। मैं कहने जा रहा था—'श्यामी, वह गलती थी जो तूने एक बार कर ली थी, परीक्षा में सफल होने के लिए। वास्तव में श्यामी, मैं तुझसे प्यार करता हूं—प्यार।' श्यामी वस्तुतः एक प्रेम थी। तभी सावित्री खिलखिला कर हँस पड़ी। श्यामी एक झटके से अलग खड़ी हो गई और सपना टूट गया। मेरी इच्छा हुई थी कि मैं एक बार फिर सोऊं और ऐसा ही मीठा सपना फिर मुझे रस-विभोर कर दे। वास्तविक जीवन कितना भोंडा और खुरदरा है। आदमी कितने सपने संजोता है और यह धरती कितनी चिकनी है कि हर सपना फिसलकर टूट जाता है। दरअसल, धरती आदमी के साथ उपहास करती है। उसके लिए खिलौने बनाती है और उन्हें तोड़कर उसके सामने ही उसका कब्रिस्तान बना देती है। कितने जीवन मेरे साथ जुड़े, विमला, श्यामो, सावित्री और चांद सभी ने अपने जिस्मों का रस मुझे किसी न किसी रूप में चखाया।

जैसी औरत ने मेरे जिस्म का रस चखा। सभी एक-एक कर न मालूम कहां खिसक गई। माया अब भी मेरे चारों ओर मंडरा रही है। यह क्या है सब कुछ। आदमी अपने भीतर से कितना नंगा है ? उसे अपने नंगेपन से झेंप है। वह अपने नंगेपन का स्वयं ही देखना पसन्द नहीं करता, इसलिए वह अंधेरे का हामी है। मैं कब से इस नंगेपन को छिपाए घूम रहा हूं। एक दिन इसी नंगेपन को लेकर मैं उस तलैया से घर तक भागा आया था, उसी दिन से मुझे इसका एहसास होने लगा था।

चिड़िया बोलने लगी थी, सूर्य रश्मियां अभी धरती पर बिखरने वाली हैं। इस रात के अंधेरे में न मालूम कितनों की कल्पनाओं के सपने सजीव हुए, कितनों में सपने सजीव होकर जगमगाए। रात की ही रोशनी सुहावनी और प्यारी लगती है।

तभी मैंने अपना ट्रांजिस्टर खोल लिया। कोई गा रहा था—'अव्वल अल्ला नूर उपाया, एक नूर से सब जग उपज्या।' मैं इस गीत के साथ ही दार्शनिक बन गया था। इस गीत के बाद दूसरा गीत आया—'भाई मोहे प्रियतम दो ही मिलाई।' ये दोनों ही गीत भक्ति गीत थे। मैं अपनी भावनाओं का इन्हीं गीतों से तारतम्य बैठाता जा रहा था जैसे एक तार था मेरी अंगुलियों में और उसी में सभी को पिरो रहा था—वे सब मेरे साथ एक-एक कर जुड़ी और वे अब भी जैसे मेरे साथ ही हैं—एकात्म हो कर। समय भी उन्हें मार नहीं सका। इन दिनों चांद भी आई हुई थी। चांद की चांदनी अब फीकी पड़ गई। वह एक बच्चा अपने गोद में लिए घूमती—एक सलौना बच्चा। उसने अपना नूर बच्चे को दे दिया और वह शायद इसलिए खुश है कि उसकी गोद भरी हुई है। उधर माया की गोद खाली है और उसका सौन्दर्य जिन्दा है जिसे वह खुले आम बांट रही है। उस दिन न मालूम क्यों उदासी मेरे पर हावी हो गई थी। स्कूल में कोई धन्धा था ही नहीं। गलियां भी लगभग सूनी थीं। सभी शायद खेतों में चले गए थे। गांव भी कभी-कभी बहुत उदास-सा हो जाता है—सूना और वीरान-सा। उस समय गांव खेतों में चला जाता होगा। उस समय बूढ़े कहीं-कहीं हुक्का पीते, मक्खी उड़ाते, कहीं-कहीं भले ही नजर आए। मां भी घर पर नहीं थी। वह भी खेत चली गई थी। ऊष्माभरी दोपहरी कुछ देर

सोकर गुजार दी। दीवार के पास थोड़ी-सी छांव आकर लेट गई थी। इतने में माया कहीं से आ टपकी।

—तुम्हारी मां कहां है ? माया बोली।

—खेत गई है, मैंने उत्तर दिया।

—और तुम

—मैं तो यहीं हूं।

वह मेरे पलंग पर आकर बैठ गई। अब मुझे उससे डर नहीं लगता था। शर्म और सकोच की दीवारें तो वह स्वय ही तोड़ चुकी थी। बाहर आंखों को चकाचौंध करने वाली नंगी धूप लेटी हुई थी।

—आजकल तुम मेरी तरफ आते ही नहीं हो। उसने पूछा।

—क्या करूं, भाभी समय ही नहीं मिलता, मैं उसी स्थिति में बैठे-बैठे जवाब देता रहा।

—उदास कैसे हो रहे हो ? चेहरा बड़ा पीला हो रहा है, उसने ठिठोली की।

—अभी सोकर उठा हूं, गर्मी बड़ी तेज है, कोई काम आई हो क्या ?

—तुम्हारी मां के पास आई और साथ में तुम्हें भी देखने कि कोई गड़बड़ तो नहीं हो गई देवर के कि वह आता ही नहीं।

—नहीं, गड़बड़ क्या है, मैंने कहा, आजकल इम्तिहान चल रहा था न, इसलिए आया ही नहीं गया।

—अच्छा तो चलूं मैं, कहकर वह खड़ी हो गई।

—बैठो, अभी क्या जा रही हो, पता नहीं मैंने क्यों ऐसा कह दिया।

—नहीं, नहीं, सम्पत् जाऊंगी, घर सूना पड़ा है, तुम्हारे भाई खेत गए हैं, वह खड़ी-खड़ी ऐसा कहती रही।

बाहर का दरवाजा खुला पड़ा था।

—जाऊंगी, सम्पत्, तुम तो कभी आते ही नहीं हो, ऐसा कहकर वह चल पड़ी और फिर चली गई।

कुछ देर तक वहीं बैठे-बैठे सोचता रहा कि माया आई और चली गई और मेरे लिए वही सूना माहौल जो पहले था और गहन होकर घिर गया। फिर पता नहीं क्यों मैं सोचने लगा कि माया ने शायद मुझे बुलावा तो

नही दिया। आज वह दूसरे प्रकार की ही औरत बन गई। औरत एक जादू है और जादूगरनी भी। कितनी तहे वह ऊपर लपेटे रख सकती है और जब वह नगी होती है, आदमी सोचता है कि वह कितनी आसान है। वास्तव मे वह जो कुछ है—वह स्वय है। सरलता से न उसे उघाड़ा जा सकता है और न ढका ही।

थोड़ी देर बाद ही मा आ गई। मां के आते ही थोड़ी ही देर में आगन फिर भर गया—भाभी, चाची, मासी, ताई सभी अपने-अपने सवाल, उत्तर लेकर आ धमकी। घर की चहल-पहल शुरू हो गई थोड़ी देर मे गायें आ गई और मा का काम शुरू हो गया। मा कभी गुस्से में आती है, कभी हँसती है, कभी चीख जाती है तो कभी गीत शुरू होते है। मैंने कहा—'मा, तू नहीं आई थी तो घर सूना-सूना लगता था। सच, तू जाया ही न कर।'

—'अरे, पगले, मा बोली, औरत के बिना घर भूतों की बस्ती होती है। बस, अब तेरी शादी कर दू तो जी मे जी आए।'

शाम उतरने को थी और मैं बाहर निकल पडा।

दूसरे दिन स्कूल मे 'पास-फेल' का नाटक प्रारम्भ हो गया। हैडमास्टर के पास सारी कापिया आ गई थी। अब उसे अपने निर्णय लेने थे। सभी को उपस्थित रहने के आदेश थे। एक-एक को बुलाया जा रहा था। पर्दे के भीतर जोड-तोड हो रहा था जो केवल हैडमास्टर तक ही सीमित था। सभी को सख्त आदेश थे कि सभी बातें गोपनीय रखी जायें। छोकरों के झुड बाहर इस फिराक मे घूम रहे थे कि कही से कोई सुराख मिल जाये। आत्मस्वरूप इधर-उधर घूमता नजर आ रहा था। वह कभी बाहर जाता, कभी किसी अध्यापक से नाक लगाकर बात करता, कभी भीतर पर्दे मे चला जाता। लगता था कि इस नाटक मे वह कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। मास्टरो के चेहरे कुछ फीके थे। सम्भवतः कुछ चिन्ताएं अभी उनके चेहरो पर सिमटी थी। पर निर्णायक घड़ी थी, सभी के परिणाम निकट थे। उन्हे भय था कि उनके लडके पास नही हुए तो परिणाम अच्छे नही होगे।

कुछ ही क्षणो मे वह खिसक-खिसक कर मेरे पास आ गए—'सम्पत् जी, कृपा करना यार, दो चार नम्बर हैडमास्टर बढ़वाये तो बढ़ा देना।'

इतने में आत्मस्वरूप भी आ धमका उसने आते ही कहा—'सम्पत् जी रिजल्ट तो ठीक ही जा रहा था। आपकी वजह से लुटिया डूब रही है।'

मैंने कहा—'कैसे ?'

—आपने बेड़ा ही गर्क कर दिया।

—क्यों ?

—बहुत लड़के फेल किये हैं आपने।

—मैं तो फेल को फेल और पास को पास करता तो बेडा साफ हो जाता। मैंने खीचा है, भाई।

खैर ! अभी देख लेना।

पता नहीं, क्या समस्या आ धमकी थी कि हैडमास्टर ने आत्मस्वरूप को बुलाया।

उसके बाद आत्मस्वरूप ने अध्यापकों से कहा—'अभी एक अध्यापकों की मीटिंग होगी। उसमें कुछ विचार करना है। एक समस्या खड़ी हो गई है।'

प्रधानाध्यापक की अध्यक्षता मे मीटिंग चालू हुई। अध्यापक हैडमास्टर के मुह की ओर प्यासी नजर से देख रहे थे।

हैडमास्टर सभी कक्षाओ की रिजल्ट-शीटें मेज पर बिछाए बैठा एक गहरी नजर से उन्हें निहार रहा था। उसके चेहरे पर एक थकी हुई गम्भीरता थी और जरूरत से ज्यादा चिन्ता। उसने फिर बोलना शुरू किया—'प्रिय बन्धुवर, मेरे सामने इस समय स्कूल का पूरा रिजल्ट है। इस वर्ष जो स्थिति मेरे सामने है, वह सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। मैं चाहता था कि स्कूल का रिजल्ट अच्छा रहे, किन्तु प्रयास करने पर भी अच्छा नहीं रहा। अड़चन केवल एक ही है कि कुछ अध्यापकों ने रिजल्ट अच्छे नहीं दिए, खासतौर पर श्री सम्पत् जी ने। यदि ये चाहें तो रिजल्ट अब भी सुधर सकता है।'

मेरा नाम सीधा आने पर सभी की प्यासी नजरें मेरी ओर मुड़ गईं। उस नजर में प्यास के साथ-साथ घृणा की भावना थी। पता नहीं क्यों, मुझे गुस्सा आ गया। मैंने कहा—श्रीमान् जी, मैंने अपनी ओर अच्छा से अच्छा रिजल्ट देने की कोशिश की है। फिर भी आप चाहे तो जहां गुजा-

यश हो वहां दो-चार नम्बर बढा सकता हूं।'

फिर हैडमास्टर ने कुछ कहना चाहा और वे सभी नजरें हैडमास्टर की ओर मुड़ गईं, केवल चन्द्रकांत और बृजकिशोर मेरी ओर निहार रहे थे। उनके चेहरे पर छिपी हुई मुस्कानें थीं। हैडमास्टर कुछ देर चुप रहा, शायद स्थिति को टटोल रहा। उसने फिर संयत स्वर में कहा—'देखिए एक लड़के को आपकी जाची हुई कापी में 20 नम्बर की जरूरत है, एक में सत्तर, एक में पन्द्रह, तीन मे चौदह, चार मे आठ, पाच सात वाली सख्या तो दस के लगभग है। दो चार आप बढ़ा ही देंगे, तो यह शायद बीस हो सकती है।

'वढा दो यार, बच्चों का उद्धार हो जाएगा', आत्मस्वरूप ने भिखारी के स्वर मे कहा।

शायद इन्ही स्वरो को सबने दोहराया और कमरा एकदम गंजने लगा।

मैंने देखा, कुछ नजरें दूर से इस कार्यवाही को देख रही थी।

उस प्रकार चन्द्रकांत ने बीड़ी सुलगा ली थी और बृजकिशोर ने सिगरेट।

मैं एक बार घबरा-सा गया।

मैंने खड़े होकर साहस बटोरते हुए कहा—'मेरे मन मे अब भी एक बात स्पष्ट नही है। आप लोग कमजोर लड़के को आगे क्लास में धकेलना चाह रहे हैं। हैडमास्टर साहब पर आप लोग ही यह दोष मढते रहते हैं कि हम क्या पढाए, लड़के कुछ समझते ही नही। हैडमास्टर कमजोरों को आगे धकेलता रहता है। आज इस समय आप फिर कमजोरों को पास करने के पक्ष में है।'

इस पर आत्मस्वरूप फिर बोला—'हमें तो हवा के साथ चलना पड़ता है। फिर मास्टर तो सदा उदार होता है।'

उसके उपदेश पर मुझे गुस्सा आ गया। मैंने कहा—'इसके पीछे एक ही दृष्टिकोण है कि इसमे ट्यूशन वाले लड़के फेल हो रहे हैं और आप लोग अपने पैसों के लिए मुझे बाध्य कर रहे हो।'

इस पर आत्मस्वरूप भी जरा तेजी में आ गया, शायद यह एक प्रहार

था जिसकी प्रतिक्रिया होनी ही थी—'ट्यूशन की क्या बात है इसमें। यह तो सभी की बदनामी है। आपकी बदनामी अधिक है कि आप फेल कर रहे हो।'

मैं कुछ और गर्म हो गया—'श्रीमान् जी, बदनामी उनकी है जिन्होंने पैसे लिए और पढ़ाया नहीं। मेरी बदनामी कैसे है, मैंने तो वैसे ही नम्बर दिए हैं जैसे लड़कों ने किया है।' फिर एक बार स्टाफ में खलबली मची और कानाफूसी शुरू हो गई।

हैडमास्टर ने शान्त होने को कहा और उसने फिर दो शब्द कहे—'सम्पत् जी, आपका हित इसी में है कि आप नम्बर बढा दें। मैं आपको व्यक्तिगत राय देता हूं।'

पता नहीं, मुझे क्या हो गया था कि मैंने यह कह दिया—'श्रीमान् जी आप भी इसीलिए कह रहे हैं कि आपका भी इसमें बारह फी-सदी बधा हुआ है।'

हैडमास्टर कुछ शांत और संयत था, एकदम उखड़ गया—'क्या कह रहे हैं आप? आपने मेरे सम्मान को खुली चुनौती दे दी, सम्पत् जी। आप को नौकरी नहीं करनी क्या?'

—आपने मुझे नौकरी न तो दी और न छीन सकते हैं, हैडमास्टर साहब, मेरा पारा छत को छूने लगा।

—मैं जानता हूं, आप किसके बल पर कूद रहे हैं।

और फिर नहीं, क्या क्या आदान-प्रदान हुआ। सभा का अनुशासन टूट चुका था। आत्मस्वरूप अनुशासन को बनाए रखने में तत्पर था। रिजल्ट की बात गौल हो गई। अध्यापक भी बौखला गए। हाथापाई से बचने के लिए मैं बाहर भाग आया। चन्द्रकांत और वृजकिशोर भी मेरे साथ ही निकल आए। शोर अब भी कमरे में विद्यमान था। मैं अब भी बाहर खड़ा आत्मस्वरूप और हैडमास्टर को बुरा-भला कह रहा था।

और भीतर मेरे बारे में कुछ कहा जा रहा था—'पागल है,···बुद्धू है ···नया नया जो ठहरा·······नया क्या, मूर्ख है' और इसी प्रकार की सज्ञाएं दी जा रही थीं।

चन्द्रकांत ने कहा—'बहुत ज्यादा बहक गए। इतना ठीक नहीं

रहता।

मैंने कहा—'चन्द्रकांत जी, सिद्धांत भी कोई चीज होती है। ये लोग शिक्षा को भी नहीं बख्सते। सब जगह भ्रष्टाचार।'

वृजकिशोर बोला—'गुंडों का रोल है यह और शिक्षक बनने का दावा करते हैं। ठीक किया आपने।'

मैं वृजकिशोर के साथ घर की ओर चल पड़ा। उसने रास्ते में मुझे छोड़ दिया। मैं अकेला रास्ते भर गालियों को चबाता रहता, लेकिन वे इतनी कड़वी और कठोर थीं कि निगली नहीं जा रही थीं। मेरे दांत अब भी बज रहे थे, हृदय में था एक झझावात। सोचा घर जाकर ही रोऊंगा। घर गया—मां नहीं थी। फिर घर से निकल गया। सूनी गली को चीरता हुआ माया की गली की ओर निकल गया। माया शायद घर पर ही होगी। मैं घर में निस्संकोच घुस गया। मुंह में अब भी कड़वाहट थी, आंखों में भीतर की पीड़ा उफन कर आ रही थी, ओंठ सूखते जा रहे थे।

माया अपने पलंग पर चुपचाप लेटी थी। मुझे देखते ही बोली—'आज देवर के पैर इधर कैसे उठ गए, रास्ता भूल गए क्या?'

—भाभी, पूछ मत, आवेश भरे शब्दों में कहा, आज तो दिल भर रोने की इच्छा हो रही है।

—अरे, बैठ, क्यों? क्या हो गया? अरे, कांप रहा है, सर्दी लग रही है।

—सर्दी क्या, शरीर जल रहा है, बुरी तरह, सोचता हूं, काई के समुद्र में जाकर गिर जाऊं।

—अरे उसने मेरे माथे पर हाथ रखते हुए कहा, माथा गर्म है, आ, लेट जा, बुखार तो नहीं।

उसने मुझे अपने लिहाफ में लेटा लिया। मैं उसकी छाती में मुंह ढक कर रोने लगा।

—हो क्या गया तुझे, रो रहा है। उसने मेरे आंसू पोंछे।

मैंने उसके नंगे उभारों के बीच में मुंह डाल लिया। एक भीनी-भीनी सुगन्ध मेरे दर्द को सहलाने लगी। उसने मुझे अपने और निकट खींच लिया। सभ्य आवरण को उधेड़कर उसकी अंगुलियां मेरे पौरुष को जगाने

लगी—'अरे, मर्द हो, मर्द कभी रोता नहीं।' मेरी अंगुलियां उसके औरत रूप पर चली गईं। उसने मेरी आंखों के ढलकते आंसुओं को कपोलों से अलग किया, फिर दोनों हथेलियों से दोनों गालों से ऊपर खींचकर चूम लिया—'अब ठीक हो जाओ, पगले कहीं के।'

यही शब्द तो सुनकर ही यहां आया था। फिर बोली—'बुद्धू' आदमी कभी रोता है क्या? क्या अन्तर है इन शब्दों में, वही तो हैं। फिर······। मैं उसके शरीर पर लुढकने लगा एक बच्चे की तरह। मलहम की तरह वह मुलायम शरीर मेरे घावों को शीतल करता जा रहा था। आज मेरी ओर से पहल थी और उसका मेरे पर भारी एहसान था।

वह चाय बना कर ला रही थी। उस समय मैं मुझे एहसास हुआ कि औरत कितनी कीमती और कितनी जरूरी है। माया अब मुझे माया से ऊपर उठी नजर आई। 'औरत' अपने भीतर कितना कुछ समाये हुए है, यह आज समझ सका। वह बहुत देर तक पूरी बात सुनकर हँसती रही। 'नॉरमल' होकर मुझे भी सकोच सताने लगा।

शाम को मनोरमा ने भी चाय पिलाई। उसने मुझे पहले तो विनोद का रिजल्ट पूछा। मैंने खुलकर उसके सामने सुबह की घटना का वर्णन कर दिया। विनोद ने ऐसा ही कुछ उसे पहले भी बता दिया था। इसलिए उसने कहा—'इतना तो मैं सुन चुकी।'

फिर उसने भी उदारता का उपदेश दिया।

रात को चन्द्रकात घर पर आ गया था। उसने बताया कि सुबह की घटना का गाव भर में प्रचार हो गया और उसकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं हुई। उसने मुझे कुछ झुकने को कहा।

दूसरा समूचा दिन 'रिजल्ट' को सुधारने में लगा। फिर भी 'रिजल्ट' जैसा चाहा गया वैसा नहीं सुधरा। अध्यापकों के चेहरे उतरे हुए थे। सभी शायद मुझे ही गालियां दे रहे थे। हैडमास्टर का मुंह उलझा हुआ था। 'रिजल्ट' के बाद सभी एक 'चाय पार्टी' किया करते थे, किन्तु इस बार नहीं हुई। दूसरे दिन 'रिजल्ट' की घोषणा होते ही पता लगा कि गाव के विशिष्ट व्यक्तियों के लड़के फेल हो गये। उसमें ठाकर बामण का

भी लडका था। आत्मस्वरूप के ट्यूशन के कई लडके लुढक गए। दरअसल मेरा दृष्टिकोण चन्द्रकात से भिन्न था। मेरे विचार में छात्रों के अभिभावक उनके विरुद्ध होने चाहिए जिन्होंने पढ़ाया और पास नही करवा सके। किन्तु प्रचार मेरे विरुद्ध इस ढग से किया गया कि जनता मेरे विरोध मे आ गई। प्रचार यह था—'सम्पत् ने जानबूझकर लडको को फेल किया।' इसके साथ ही कई घटनाएं घटी—एक साथ। दो लडके मेरे पीछे लाठी लेकर भागे और मैं बाल-बाल बचा। ठाकर बामण ने एक सभा का आयोजन किया जिसमे मेरी निन्दा की और प्रस्ताव पास किया कि 'लोकल टीचर' को स्कूल मे नही रहने दिया जाये और तीसरे दिन सेठ रामकुमार ने कुन्दन को अल्टीमेटम दे दिया कि वह दुकान खाली कर दे और चौथे दिन सेठ ने पिताजी से पैसे मांगे, वरना दावा कर दिया जायेगा। एक साथ इतनी विपत्तियां। इसके साथ मेरे विरुद्ध यह प्रचार भी हुआ कि इसका चरित्र अच्छा नही। मनोरमा और माया से मेरे सम्बन्ध अच्छे नही बताये गए। चन्द्रकात ने बताया कि यह सब कुछ आत्मस्वरूप के कारण से है और हैडमास्टर इसके पीछे है।

घर पर भी बडी लताड़ पडी। पिताजी ने नाराज होकर कहा—'तुझे नौकरी भी नही करनी आती। वह नौकर ही क्या जिससे अफसर नाराज हो जाये।'

मा बुरी तरह बोखला गई—'तुझे जरूरत क्या थी फेल करने की। जब हैडमास्टर पास करने को कहता है, तू फेल करे भी क्यो?'

मैंने बात समझाने की असफल चेष्टा की।

कुन्दन भी बुरी तरह नाराज था—'होटल पर लोग बात कर रहे थे।' वे सब तुम्हारी निन्दा कर रहे थे।'

सतुष्ट थी तो एक मात्र मनोरमा जिसका भाई विनोद पास हो गया। उसने जलपान करवाया। वह मेरी बात को भी समझती थी। मैं चाह रहा था कि मैं गाव के एक-एक आदमी से मिलूं और समझाऊ कि तुम लोग व्यर्थ मे पैसा गंवाते हो। यह लोग तुम्हारे बच्चो को पढाते नही, तुम्हारा शोषण करते है, किन्तु मुझे यह सख्त हिदायत थी कि गाव में यदि निकल गए तो कोई पीट सकता है। धीरे-धीरे वातावरण शात हो ही जायेगा।

चन्द्रकांत ने एक दिन आकर बहुत-सी बातें मुझे बताईं। उसने यह भी बताया कि कुछ लोग हैडमास्टर से डेपुटेशन के रूप में मिले, उनमें ठाकर बामण प्रमुख था। हैडमास्टर ने उनसे एक अर्जी ली और उन्हें आश्वासन दिया कि वह सारी जांच करेगा और तुम्हारे पर कार्यवाही करेगा। हैड-मास्टर ने यह भी सलाह दी कि एक 'डेपुटेशन' इन्सपेक्टर से जाकर मिले। मैंने साफ़-साफ कहा—'डेपुटेशन' की ऐसी की तैसी, नियम से मुझे कोई मात नहीं दे सकता। 'मनोरमा' एक कुमारी लडकी का मामला है, अन्यथा मैं इस कमीने का भन्डाफोड़ कर देता। मेरे पास 'आत्मस्वरूप' का लिखित पत्र है जो मनोरमा के नाम पर है।'

चन्द्रकांत के भी आग लग गई। उसने कहा—'कारनामे तो सारे आत्मस्वरूप के हैं। मौका आने पर तुम हैडमास्टर और इन्सपेक्टर को तो दिखा सकते हो।'

—समय आने पर मैं सब कुछ करूंगा। ये कमीने मेरे खिलाफ उल्टी बातें करते हैं। स्साले, ढेले के आदमी हैं, चोर उचक्के, गांव को लूटकर खा गए और प्रस्ताव पास करवाते हैं मेरे खिलाफ, जलूस निकलवाते हैं।

मुझे गुस्सा आ गया था।

—गांव वाले भी तो भोंदू ही हैं, सम्पत्। ये बात भी तो नहीं समझते हैं।

—बात नहीं समझते हैं, तभी तो दुनिया इन्हें लूटती है और खाती है। कितने पलते हैं इनमें—पटवारी, सिपाही, मुंशी, थानेदार, तहसीलदार, मास्टर और हैडमास्टर दरअसल, ये हैं इन्हीं के लायक।

इतने में एक समाचार आया कि कुन्दन ने ठाकर बामण और आत्म-स्वरूप को पीट दिया।

—अरे, बात कैसे हुई, मैंने और चन्द्रकांत ने उस हांफते हुए लड़के से पूछा जो समाचार लाया था।

—बात ऐसे हुई कि कुन्दन भाई [illegible] बैठे हुए थे। ठाकर बामण और आत्मस्वरूप आपके खिलाफ बात कर रहे थे। फिर कुन्दन ने कहा—मेरे होस्टल पर बात करने की जरूरत नहीं। उस [illegible] ने यह भी कहा कि पास वाले पास होंगे, फेल वाले फेल। [illegible]

की क्या जरूरत है ?

—किसी ने ऐसा भी कहा क्या ?

—हां, हां, कहा गणेश चमार ने। वह भी वहां था।

—फिर।

—लिखमा चौधरी ने भी यही कहा।

—अच्छा, लोग समझते तो हैं।

—फिर वे दोनों कुन्दन भाई साहब को भी उल्टी-सीधी कहने लगे।

—फिर क्या, कुन्दन ने खड़े होकर पहले तो ठाकर बामण को उठाकर पटका और ऊपर बैठ गया। आत्मस्वरूप जी उसे छुड़वाने के लिए आए, कुन्दन भाई साहब ने दो लगाई उसके कि वह भी अलग लुढ़क कर गिरा।

मां भी यह घटना सुनने वहां आ गई। हम एक बार तो खुश हुए लेकिन इस घटना के दुष्परिणामों के संबंध में भारी चिन्ता हो गई।

—अरे, अब कहां हैं, मास्टर जी और ठाकर बामण।

—लोग कह रहे थे कि थाने में गए।

—यह तो बुरा हुआ, चन्द्रकांत ने कहा, बात और बढ़ेगी।

मां ने आग्रह किया—'तुम लोग जल्दी जाकर देखो तो सही, बात क्या है ?' थाने के नाम से वह घबरा गई थी।

हम उसी समय उठकर अड्डे पर चले गए। वहां जाकर देखा कि कुन्दन शान्त स्थिति में अपने काम में लगा हुआ था। चार चाय पीने वाले उसके सामने बैठे थे। हमने उसे देखा तो कुछ चिन्ता मिटी, शायद कुछ हुआ ही नहीं था। मैंने जाते ही पूछा—'क्या बात हो गई ?'

—खबर पहुंच गई तुम्हारे पास, कुन्दन ने पूछा।

—तो खबर सच है ? मैंने कहा।

—ऐसी बात झूठी हो सकती है, उसने गर्व से कहा जैसे उसे घटना की कोई चिन्ता ही नहीं थी।

—बात कैसे हुई ? मैंने फिर पूछा।

—बात क्या थी, तुम जानते हो इन नेताओं को, बिना मतलब की अकड़, आदमी को आदमी ही नहीं समझते, कुन्दन कह रहा था—ठाकर बिना मतलब की गाली निकाल रहा था। उसका छोकरा फेल हो गया न।

मैंने कहा, तुम इसकी शिकायत करो, शोर करने की जरूरत नहीं, लेकिन वह गाली के सिवाय बोलता ही नही। आत्मस्वरूप तो है न, तुम्हारा नेता। वह भी ऊलजलूल बोलता रहा। कुछ भी कहो, मुझसे रहा नहीं गया। लोगो ने छुडा दिया, वरना उस ठाकर की तो हड्डी तोड देता। इस मिट्टी के शेर की आज मौत थी।

सामने बैठे लोग बात का मजा ले रहे थे और हँस रहे थे।

मैंने कहा —'बात बुरी हुई'।

—अरे, तुम्हे पता नहीं। ये लोग जूत के आगे चलते हैं। हम धन्धा करते है, इज्जत तो नही बेची। अब वह सेठ भी अकडा फिरता है। कहता है—दुकान खाली कर दो। यह सब तुम्हारे शेर की करतूत है। दो-एक झपट्टे उसके भी लगे हैं आज। गणेशा और लिखमा बीच मे पड गए, वरना नेतागिरी कोई और ही करता। इस गाव के ये दो गुडे है।

पास बैठे लोगों ने बात का समर्थन किया।

मैंने पूछा —'सुना है, वे थाने में गए है।'

—जाने दो थाने मे, मैंने सारे कानून पढ रखे है। थाने वाले भी इन्ही कुर्सियों पर बैठकर चाय पीते हैं। विलायत से थोड़े ही आए हैं।

कुन्दन के मनोबल में कोई अन्तर नही था, किन्तु मैं मन ही मन चिन्तित हो रहा था। ये थाने वाले इज्जत बिगाड़ने मे देर नही लगाते।

रात को कुन्दन देर मे आया। जब कभी कुन्दन देर से आता, मा को चिन्ता हो जाती थी। वह बार-बार कहती—'पता लगाओ रे उसका, वह आया क्यो नहीं ?' दरअसल, मा की चिन्ता का कारण भी होता था। कुन्दन कभी भी कोई उत्पात खडा कर सकता था। आज मा बहुत देर से कह रही थी —'पता लगाओ रे, वह आज क्यो नहीं ?' आज बात विशेष भी थी, अतः उसकी चिन्ता भी युक्तिसंगत थी। मैं जाने को तैयार सा ही था कि वह आ गया। चेहरे पर हल्की-सी गम्भीरता तो थी, किन्तु चिन्ता विशेष नही थी। उसने खाना खाया, तब तक हमने बात नही छेड़ी थी। उसके बाद मां ने पूछ ही लिया—'कहां चला गया था, बहुत देर कर दी।'

—गया था किसी काम से ही, वह बोला, ठाकुर भीमसिंह के गया था।

मैंने कहा—'क्या बताया उन्होंने, हो तो गया कबाड़ा ही। वे थाने मे गए थे न।'

—उसी का इन्तजाम किया है। थाने वालों का कोई भरोसा नही। ये साले किसी के नही होते।

—ठाकुर साहब तो पहुचे हुए आदमी हैं। मैंने कहा।

—तभी तो उनके पास गया था, कुन्दन बोला, यह थानेदार इन्ही का चेला है। जरूरत पड़ी तो मदद कर देंगे।

—तो बस ठीक है, मा बोली जैसे उसकी चिन्ता मिटी।

फिर हम ठाकुर भीमसिंह की बात करने लगे। उनकी प्रशसा की एक लम्बी चर्चा की।

बहुत तड़के कुन्दन का एक मित्र घर पर आया और उसने थाने का एक समाचार दिया। उसने बताया कि उन लोगो ने थाने में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की कि कुन्दन ने ठाकर बामण को पीटा और पाच सौ रुपये छीन लिए। उसके साथ आत्मस्वरूप भी था और सेठ रामकुमार भी। थानेदार ने कहते हैं अभी रिपोर्ट ली नही। उसे यह मालूम हो गया कि पांच सौ रुपये वाली बात झूठी है। उस समय मां ने पूछा—सेठ रामकुमार के क्या बीमारी है?

—उसका भी तो लड़का फेल हुआ है, मैंने बताया।

—मैं सबको ठीक कर दूगा, कुन्दन ने कहा, इनको मैं ऐसा तुड़वाऊगा कि याद रखेंगे।

कुन्दन ने मित्र के आगे बात जोड़ी—उन्हे तड़छाना भी तो है, लेकिन सडक पर। इन्होने गाव का खून चूस लिया है। स्साला इस सड़क का ठेकेदार है, रो-रो कर पैसे देता है। गरीब इसके पीछे रोते फिरते हैं। सारे गांव की जमीन पर कब्जा कर रखा है। यह कम काला नही है। इसने कई गरीबों के घर उजाड़े हैं। पता है, इसने बाहर जो चक्की लगाई है, बेचारे एक नायक का घर था, इसने मार भगाया। इस कजर ठाकर ने वह कार्य-वाही करवाई। ये बड़े लुटेरे हैं। हिम्मत थी, कुन्दन की, इसने यह काम किया। गांव भर मे इसके सामने बोलने वाला नही।

फिर उसने मा को सम्बोधित करते हुए कहा—ताई, चिन्ता मत

करना। हम बीस ऐसे हैं जो कुन्दन के साथ हैं। इसे आँच नही आने देंगे। फिर सम्पत् भाई साहब हैं—पढे लिखे। ये कलम चलायेंगे और हमारे हाथ में लट्ठ हैं।

दरअसल, कुन्दन की मित्र-मण्डली बड़ी सशक्त थी। वह उस मण्डली का नेता था। इस मण्डली में जान की बाजी खेलने वाले आदमी थे, इस लिए उसे भय नही था। इनके मार्ग-दर्शन हैं ठाकुर भीमसिंह।

हर स्थिति मे निबटने के लिए दूसरे दिन मुझे दिन भर दुकान पर कुन्दन के पास बैठे रहना पडा। उस दिन यह तो पता चल ही गया था कि वे कुन्दन पर मुकद्दमा मढ़ने के लिए भरसक चेष्टा मे थे। थानेदार ने कहा बताते हैं—आप गवाह दीजिए कि पांच सौ रुपये छीने गए।' बीच ही मे गणेश चमार और लिखमा चघरी पहुंच गए। उन्होने थानेदार को साफ-साफ कह दिया—रुपयो की बात झूठी है। बात इतनी सही है कि ठाकर ने गाली निकाली और कुन्दन ने उसको धक्का दिया। ठाकर का फुलझडी शरीर गिर पड़ा और कुन्दन उसके ऊपर बैठ गया।' यह भी सुना कि इस बात का थानेदार ने बडा मजा लिया। ठाकुर साहब का संकेत भी थानेदार के पास पहुंच गया बताया। शाम को किसी ने एक मजेदार बात बताई कि थानेदार इस घटना से कुन्दन पर बहुत सतुष्ट है कि कुन्दन ने एक सभ्य गुण्डे का नशा उतार दिया। इसने नाक मे दम कर रखा था। कुल मिला कर शाम तक कुन्दन की दुकान पर शान्ति रही। समाचारों के अतिरिक्त कोई घटना नही घटी।

रात को पता नही माया हसारी घर की महफिल मे कहां से आ टपकी। माया के सम्मिलित होने से महफिल की रौनक और भी बढ़ गई। महफिल में रौनक इसलिए थी कि आने वाले सकट की आशंका कम हो गई थी और खुशियाँ बँट रही थी। इसी खुशी में माया ने अपनी फुलझडियों की रोशनी बिखेर दी। माया ने आते ही कहा—'मैं तो कुन्दन को धन्यवाद देने आई हू कि उसने एक गुडे का दिमाग टीक कर दिया। इस गुंडे ने गाव में बडा उत्पात मचा रखा था।'

मा इस बात से बडी खुश हुई थी। कुन्दन की बाहें फूली जा रही थी।

माया ने आगे कहा—'देख रे कुन्दन, 'जरूरत पड़े तो मुझे बुला लेना।'

—तू क्या करेगी, 'भाभी' मैंने पूछा।

—मैं वह काम करूँगी जो तुम कोई कर ही नही सकते।

—फिर भी बताओ तो सही, मैंने फिर पूछा।

—मैं कहूंगी कि ये दो गुडे—ठाकर और आत्मस्वरूप मेरे घर में घुस गए और मेरी इज्जत लेने की कोशिश की।

हम सभी की हँसी फूट पडी।

मैंने कहा—'तुम यह कह दोगी, भाभी।'

—मुझे क्या शर्म आती है? तुम औरत को क्या पहचानो? यह बहुत बडी ताकत है। यह बडी से बड़ी ताकत को डिगा सकती है। माया गर्व के साथ कह रही थी।

—नही भाभी, शायद तुम्हारी जरूरत ही नहीं पड़ेगी, कुन्दन ने बताया।

—फिर तो अच्छी बात है, माया बोली, जरूरत पड़े तो हाजिर हू। मैंने सुना है, वे कहते हैं कि हमारे पाँच सौ रुपये निकाल लिए।

—कहते तो है, कुन्दन ने कहा।

—फिर वे रुपये कहां रखे?

—घर मे पड़े है मा ने मजाक किया।

—देखो, उनकी ऊत गई, लडाई लड़ते हो तो रास्ते मे लडो, सालो, बेतुकी लड़ाई कैसी?

—उन्हे तो लडाई लडनी है भाभी, चाहे उसमे तुक हो या बेतुकी हो, लड़ाई के सिर-पैर थोड़े ही होते है, मैंने कहा।

—मैंने यह भी सुना है, भाभी बोली, कोई कहता था कि कुन्दन माया के यहा जाता है।

—देखो, उनकी बुद्धि मारी गई है।

माया ने निस्सकोच भाव से कहना शुरू कर दिया—'कुन्दन मेरे घर जाता है, मैं कहती हू, कोई है माई का लाल रोकने वाला। साला, मैं क्या तुम्हारी मा लगती हू? अपना घर सम्भालो, मैं सब जानती हूं जैसे ये हैं।

उस ठाकर को भी जानती हूं और इस आत्मस्वरूप को भी। अब की बार कोई मीटिंग हो, तब मुझे बताना। मैं सुनाऊंगी उन्हें खरी-खरी। साले, आए हैं साहूकार के बच्चे।'

और हुआ भी यही, दूसरे दिन उन्होंने फिर मीटिंग की। यह मीटिंग पुलिस के विरुद्ध थी कि इस केस में पुलिस ने कोई कार्यवाही नहीं की। माया भरपूर मीटिंग में खड़ी हो गई। वह उस समय खड़ी हुई जब आत्मस्वरूप बोल रहा था। आत्मस्वरूप पुलिस के खिलाफ बोलकर कुन्दन और मेरे पर व्यक्तिगत आ गया था। उसने खुले लफ्ज़ों में उससे कहा अरे रहने दे, साहूकार के सपूत, तू और ठाकर अपने चोले तो सम्भालो—जो दुनियां भर के दागों से भरे हैं।' इतना कहना था कि मीटिंग में भगदड़ मच गई और लोगों ने आत्मस्वरूप को बोलने नहीं दिया। लोग कहने लगे—'बैठे आए हैं नेतागिरी करने।' उसमें कुछ आदमी कुन्दन के थे। उन्होंने—हल्ला करके मीटिंग खराब कर दी और लोग बीच में खड़े हो गए। कुन्दन के आदमियों को वक्त मिल गया। उन्होंने नारे लगा दिए—'ठाकुर मुर्दाबाद, आत्मस्वरूप मुर्दाबाद।'

माया दूसरे दिन फिर घर पर आई। गर्व से उसकी छाती तनी हुई थी। उसने कहा—'देखा, इसे कहते हैं, नहले पै दहला। कत का गुरु जूता होता है, सम्पत्। इनकी पढ़ाई इतनी ही है।' उसने फिर वेश्या से जुड़ती हुई एक अश्लील कहावत सुनाई जिससे मेरा और मां दोनों का मुंह शर्म से झुक गया। उसने निस्संकोच कह सुनाई। उसका तात्पर्य यह था कि उनसे कोई रास्ता छिपा नहीं था।

उस समय बनारसी की मां आ गई थी। माया ने अब ठाकर और आत्मस्वरूप की कई कहानियां सुनाईं जो बहुत ही गन्दी और भौंडी थीं। बनारसी की मां उसका समर्थन करती रही। उसके यह स्वीकारने में कोई शर्म नहीं थी कि उसका और मेरा संबंध अश्लील था। उसे नंगी भाषा प्रयोग करने में कतई झिझक नहीं थी। मुझे उठकर अलग होना पड़ा। मैं शर्म के मारे गड़ा जा रहा था। मां उसे बार-बार टोक रही थी। बनारसी की मां हंस रही थी और वह अपने उसी लहजे में कही जा रही थी जैसे माया एक खुला कोक-शास्त्र हो।

माया के जाने के बाद मेरी इच्छा उससे एकान्त में मिलने की हो गई और मैं दोपहर के बाद उसके घर चला गया। वह खाना खाकर बर्तन साफ कर रही थी। मैंने जाते ही पूछा—'भाभी, आज बड़ी देर से खाना खाया।'

—आज व्रत था न, सम्पत्।

—तुम व्रत भी करती हो, भाभी।

—मैं कोई व्रत नहीं छोड़ती, देवर।

मुझे माया की गतिविधि समझ में नहीं आई।

उसने फिर बैठते हुए कहा—'दुनिया के लोग गंदे काम को पाप कहते हैं और लोग पाप छिपकर करते हैं। लेकिन भगवान् सब जगह है, फिर छिपना क्या? दुनिया में दूसरे की आत्मा को दुखाना सबसे बड़ा पाप है। लोग ऊपर से सफेद और भीतर के मैले होते हैं। जो लोगों को लूट-लूटकर खाते हैं उन्हें लोग साहूकार कहते हैं, धर्मात्मा कहते हैं। ये तिलक लगाने वाले सारे बदमाश हैं। मैं तो भगवान् से प्रेम करती हूं और भगवान् जो चाहता है, वही करती हूं। मेरा भगवान् मेरे भीतर है। उसने कह दिया वह मैंने कर लिया। अगर यही पाप है, तो धर्म कोई है ही नहीं। उसके बाद मैं दुनिया की चिन्ता नहीं करती। बोल, तू पढ़ा-लिखा है, तू बता।'

मैं भाभी के दर्शन के आगे मौन रह गया। मैं उसे उपालम्भ देने आया था कि तू हरेक के आगे ऊलजलूल मत बक दिया कर। लेकिन जो कुछ वह कह गई थी, वह तो भगवान् के आस-पास की बात थी। मैं कुछ भी कहने में असमर्थ था।

बाद में वह बोली—'बोल, चाय पीयेगा, बना दूं।'

—नहीं भाभी, मैं तो आज…।

—क्या, कुछ कहो, आये हो या करने।

—नहीं, कुछ नहीं, मुझे कहने में संकोच हुआ।

—ले तो, देवर-भाभी चाय पीयें।

उसने कुछ ही क्षणों में चाय बना ली। तभी जोरा आ गया था। उसने मेरी उपस्थिति पर हर्ष व्यक्त किया। माया ने हल्का-सा घूंघट आंखों पर डाल लिया। हम तीनों ने चाय पी। उस समय उसने अपने चेहरे पर औरत

सुलभ लज्जा ओढ ली थी और वह अधिक लुभावनी लगी थी। उसने चाय के साथ जोरा से मेरे वाली कहानी कहनी शुरू कर दी। जोरा ने एक ही बात कही—'आजकल की दुनिया बहुत तरक्की कर गई है। वह अपने स्वार्थ के लिए नये-नये हथकडे ढूढ रही है। हमें तो ये बातें समझ मे नही आती। पता नही, क्या-क्या नाटक रचते है। हम तो भई, इन हाथो से कमाना जानते हैं। फिर भई, अपना-अपना धर्म-कर्म अपने साथ है। जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा।'

गर्मियों की छुट्टियो के साथ गर्मी तेज होने लगी और घटनाएं ठंडी। आत्मस्वरूप कही बाहर चला गया और ठाकर किसी और उलझन में उलझ गया। सोचा—एक बार इन्सपैक्टर के पास हो आऊ।

इन्सपैक्टर के दफ्तर में प्रवेश करते ही इन्सपैक्टर ने मेरे मुंह की तरफ देखा और बैठने को कहा। वे मौन मुद्रा में कागजो को पढकर हस्ताक्षर कर रहे थे। कुछ देर मैं भी मौनव्रत धारण किए बैठा रहा। उस कार्य से निवृत्त होते ही उन्होने पहला वाक्य कहा—'तो तुम अब भी बच्चे के बच्चे ही रहे।'

—कैसे, गुरुजी?

—तेरे विरुद्ध ढेर सारी शिकायतें है।

—मेरे विरुद्ध?

—हां, तेरे विरुद्ध।

मुझे आश्चर्य नही हुआ, क्योकि इतना बवण्डर जो उठा था, उसमे शिकायतें तो नगण्य हैं।

इन्सपैक्टर साहब ने मुझे मौन मुद्रा में देखकर फिर जबान खोली—'तुम्हे नौकरी नही करनी क्या?'

—नौकरी तो करनी है, मैंने कहा।

—फिर इतनी शिकायतें कैसे?

—मैंने कोई गलती नही की।

—मैं गलती की बात नही करता, शिकायतें क्यों आई?

—शिकायतें करवाई गई हैं, मैंने कहा।

—शिकायतें तो करवाई जाती हैं, वे बोले।

—आप जाच कर लीजिए।

—यहां जांच का प्रश्न नहीं, प्रश्न 'एडजस्टमेंट' का है। वे कहते गए तुम सौ गुनाह करो, सब माफ हैं, और एक गुनाह भी माफ नहीं होता सवाल यही है कि तुम अपने आपको ऐसा ढालो कि सौ गुनाहों में एक भी गुनाह सामने नहीं आए। तुम्हारा हैडमास्टर तुम्हारे खिलाफ बोल रहा है पब्लिक तुम्हारे खिलाफ है। मैं जानता हूं कि तुमने कोई गलती नहीं की, किन्तु कार्यवाही करनी होगी।

—इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है, मैंने उदास भाव से कहा, आत्मस्वरूप एक अध्यापक है, उसके लड़के फेल हो गए, एक ठाकर बामण है, एक नेता। उन दोनों ने ऐसा करवाया।

—बात ठीक है, वे बोले, मैं आत्मस्वरूप को भी जानता हूं और ठाकर बामण को भी। दोनों बदमाश हैं यह भी जानता हूं, किन्तु हम क्या हैं, केवल शून्य। तुम समझते हो, मैं केवल 'जीरो' हूं और इस कुर्सी से जुड़ा हुआ हूं, इसलिए इस 'जीरो' का भी महत्त्व है। आदमी का अस्तित्व भी क्या है? कुछ भी तो नहीं है। जितने भी बड़े आदमी बने बैठे हैं, सभी गुब्बारे हैं, खोखले, बिल्कुल खोखले। इनमें केवल हवा भरी हुई है। इन्हें खुला छोड़ दो, ये सभी हवा में उड़ जायेंगे। इन्हें तो कुर्सी ने बांधा है, तभी ये फूलेहुए नजर आते हैं, कुर्सी के बिना ये मूल्यहीन होते हैं। ये सभी फूटकर धरती पर गिर सकते हैं। आत्मस्वरूप और ठाकर क्या हैं? ये तूफान हैं। इनके हर झोंके से हम हिल सकते हैं, हमारी रस्सियां टूट सकती हैं। हम इन्हें समझते हैं और इनके झोंकों से बचते हैं। तुम तो बिल्कुल ही खोखला आदर्शवाद लिए घूमते हो, वह तो कतई नहीं टिक सकता।

—तो मैं क्या करूं? मैंने भाव-विह्वल होकर कहा।

—देखो, ये लोग बदमाश हैं। ये शिकायतें ऊपर तक गई हैं। यदि मैंने कुछ भी नहीं किया, तो निश्चय ही ऊपर से जोर पड़ेगा और तुम्हारे और मेरे जो संबंध हैं, उनको उछाला जायेगा और फिर मुझे विवश होकर कुछ करना पड़ेगा, इससे अच्छा मैं पहले से ही कुछ कर दूं।

—हां, बात तो ठीक है, मैंने उनकी बात स्वीकारते हुए कहा।

—लेकिन तुम मुझे एक बात बताओ, फिर उन्होंने कहा, एक गलती तुमने यह की कि पास को पास और फेल को फेल किया।

—हां जी, मुझे उनकी बात से तसल्ली हुई कि वे अब ठोस बात पर आ रहे थे।

—फिर तुम मुझे यह बताओ कि यह माया और मनोरमा का क्या मामला है?

—कुछ भी नहीं, साहब, मैंने झिझकते हुए कहा, मनोरमा को मैं पढ़ाता हूं और माया से मेरा कोई सबंध नहीं।

—ठीक, देखो, इन लड़कियों-वड़कियों के चक्कर में मत पड़ो यह सब बचपना है और तुम बचपना कर जाते हो। समझे, मैं अधिक कहना नहीं चाहूंगा।

मैं कुछ भी कहने में असमर्थ था और मैं वहां से उठकर धर्मशाला में आ गया और एक कोने मे दुबककर बैठ गया। दरअसल, क्या गलती थी मेरी? मैंने अपनी पूरी जिन्दगी की स्मृतियों को बटोरकर एक साथ अपने सामने रख ली और एक-एक को लेकर अपने सामने विश्लेषण करने लगा। मुझे इन्सपेक्टर की एक भी बात नही जची और न जमी। मेरे विचार में मैंने कहीं भी गलती नही की। मैंने विमला से प्रेम किया, सावित्री से प्रेम किया, श्यामी से प्रेम किया और फिर माया ने मेरे से प्रेम किया। क्या इस समाज मे इतना भी करने का मुझे अधिकार नही था। क्या समाज का तम्बू सारा का सारा इन डोरियों से बधा हुआ है जो हल्के-से झोंके भी सहन नहीं कर सकता। जो वास्तव में गुनहगार है, उन्हें कोई दण्ड नहीं। मैंने पास को पास और फेल को फेल काम करके भी गलती की। इसका मतलब तो यही हुआ कि समाज की सारी मशीनरी भी अन्याय और अत्याचारों की डोरियों से बधी हुई है जिसे 'एडजस्टमेंट' कहा जा रहा है, फिर इन पोथियों को जमा रखना, इन्हें पढाना भी सब बेमानी और बेमतलब है।

मैं दूसरे दिन विक्षिप्त-सा शहर की गलियों में अकेला ही घूमता रहा। मैं घूमते-घूमते सावित्री के मकान पर चला गया जिस पर लिखा हुआ था डा० रामानद। शायद सावित्री का परिवार इसे खाली कर . '
पड़ोसी से उनके बारे में पूछा। वे बोले—उन्हे तो गये दो
फिर श्यामी की घर की ओर निकल गया। घर की दीवारों
लॉन मे कोई जोड़ा बैठा गप्प-शप्प कर रहा था। श्यामी

छोड गई। इधर-उधर घूमते मैंने वह दिन ऐसे ही खो दिया। मैंने अपने चेहरे को टटोला। पाच-सात दिन दाढ़ी भी नही बनाई। फिर मैंने अपने कपडो पर दृष्टि डाली, वे भी अस्त-व्यस्त थे। पेंट की क्रीच गायब हो चुकी थी, बुश-शर्ट काफी मैली होती जा रही थी। दो दिन से स्नान भी नही किया था।

घुटन भरे घोल को बेबसी से निगलता हुआ मैं इन्सपैक्टर साहब के घर की ओर चल पड़ा। मैंने उसी मैले वेश में बैठे कुछ देर तक उनका इन्तजार किया। उनके आने पर मैंने ही अपना प्रश्न रखा—'गुरुवर, तो बात यही रही कि सही को सही और गलत को गलत कहना पाप है, जुर्म है।

—हा, उतना ही बडा जुर्म है जितना कि हम किसी गुण्डे को गुण्डा कहे और फिर उसकी गुण्डागर्दी का सामना करने के लिए तैयार रहे। यह जिन्दगी को जीने की कला नही है।

—फिर क्या समाज इन्ही धूर्तों के बल पर टिका रहेगा?

—नहीं, सम्पत्, ऐसा नही है। समाज मे जो अपने आप को बडा मानते है, वे सभी खोखले हैं। ठोस है तो समाज का वह तबका जिन्हे छोटा और ओछा समझा जाता है। समाज की सारी शक्ति उसी तबके में निहित है। जिस दिन यह तबका अपनी असलियत को समझ जायेगा उसी दिन ये धूर्त हवा में उड जायेंगे।

उसी समय मुझे कुन्दन का स्मरण हो आया, उनकी बात का अर्थ कुन्दन के साथ घटी घटना के सदर्भ मे समझा जा सकता था। मुझे उस समय कुन्दन का विराट रूप नजर आया। इन्सपैक्टर साहब उस समय किसी विशेष पत्र में उलझ गये थे।

मेरे थोड़ी देर बाद ही मेज पर चाय आ गई और चाय लाने वाली थी—विमला। विमला को देखते ही मेरे दिल मे एक विभिन्न प्रकार का तूफान आया। उसने हल्की गुलाबी साड़ी पहन रखी थी। उसकी माँग मे सिन्दूर था और उसके माथे पर गोल टीका। उसने मुझे देखा, आखें झुकायी और एक झटके से बाहर निकल गई।

मन मे गहरी प्रतिक्रिया हुई कि विमला मेरे से बोली तक नहीं,

उसने जी भरकर देखा तक नहीं। इतनी बदल कैसे गई विमला? या उसका यह बदलाव ही इन्सपैक्टर साहब के दर्शन से जुड़ा हुआ था। मैंने निराशा का [illegible]रे-से अपने हलक से उतारा और फिर इन्सपैक्टर साहब की ओर एकटक देखता रहा। उसके बाद ही मैंने अपने चेहरे के बढ़े हुए बालों पर [illegible]।

इन्सपैक्टर साहब और मैंने बैठकर चाय पी। मैंने इसी समय अपनी बात पूछ ली—'गुरुजी, अब मुझे क्या दण्ड मिलेगा?'

—दण्ड, दण्ड क्या मिलेगा, यही कि तुम्हारा तबादला कर देंगे, बोलो।

—मैं सहमत हूं।

—बस तो, मुझे यही उम्मीद थी।

मैं धर्मशाला मे आकर इन्सपैक्टर साहब के निर्णय पर बहुत देर तक विचार करता रहा और आश्चर्य करता रहा कि अपने आपको बड़ा बताने वाले कितने कमजोर और विवेकहीन हैं। हो सकता है, हैडमास्टर भी इस कमजोरी का कायल हो। दरअसल, ये लोग इसीलिए कमजोरों का गला घोटने मे सिद्धहस्त हैं। फिर मैंने विमला के व्यवहार पर अफ़सोस जाहिर किया। क्या उसे सम्पत् से बोलने का भी हक नहीं था? माना कि उसकी शादी हो गई, फिर भी हर व्यक्ति के चाहे पुरुष हो या नारी मानवीय संबंध तो होते ही हैं। इससे तो चलते-फिरते राहगीर के संबंध ही अच्छे जो क्षण-भर ठहरकर दुख-सुख की पूछ तो लेता है। मैंने श्यामी और सावित्री के संबंधों को भी इसी कड़ी मे जोड़ने की चेष्टा की। अच्छा हो यदि वे कभी मिले ही नहीं। विमला का आज तक जो सजीव चित्र मेरे दिल पर खिंचा हुआ था वह धुंधला-सा गया। विमला की वास्तविकता से उसकी तस्वीर ही जिन्दादिल थी। जिन्हें मैं आज तक दिल के इर्द-गिर्द जमाये बैठा था, उन्हें अलग खिसकाने को विवश हो गया।

मेरी दाढ़ी अब भी बढ़ी हुई थी। मेरे कपड़ों का मैलापन ऐसा लग रहा था जैसे मेरी विवशता हो। शाम को मैंने अपने घर के लिए बिस्तर बांध लिया।

गांव में पहुंचने पर लगा जैसे मेरा अपना गांव फिर से पराया होने जा रहा था। रात को बिस्तर पर लेटने पर महसूस हुआ कि मेरा हर अंग मेरे

से अलग हो गया हो। मैंने दिन में मां से कह सुनाई थी। मैंने [illegible] चेता-कर कहा था—'मा, अब तू मेरी शादी कर दे।'

सारा गाव गहरी अंधेरी रात में गहन निद्रा में डूब गया [illegible] मे एक आवाज जाग रही थी—'चौकीदार, खबरदार।' गांव के [illegible] कर्कश स्वर मे भौंक रहे थे। मैं आकाश को एकटक देख रहा था [illegible] आकाश जो कल शहर में था, आज इसी गाव में मेरे ऊपर है [illegible] मिलने वाले गाव या शहर मे होगा। तभी एक तारा टूटा और सारे आकाश में रोशनी फैल गई। फिर वही अंधेरा, उससे भी गहन धरती पर फैल गया। मेरी समूची दृष्टि पूरे क्षितिज पर थी, वहां से एक लाल रोशनी का चांद एक प्रहरी की तरह नभ में आ धमका। उसके बाद ही मुझे नींद आ गई, मुझे नई सुबह के लिए तैयार होना था।





करणीदान बारहठ

जन्म : 1 अगस्त, 1925
स्थान : फेफाना (श्रीगंगानगर)

प्रकाशित कृतियाँ

हिन्दी : कुहरा और किरणें. प्रेमलता, चाय के धब्बे, कलाई का धागा और खुरदरा आदमी (उपन्यास), औरत और जहर (कहानी-संग्रह) बड़वानल (कविता-संग्रह) ।

राजस्थानी : मंत्री री बेटी (उपन्यास), राणी सती, शकुन्तला, (नाटक), झरझर कंथा, (काव्य), आदमी रो सींग (कहानी-संग्रह), च्यानणों (एकांकी-संग्रह), दायजो, झिडियो (प्रोढोपयोड़ी, बालोपयोगी) ।

सम्प्रति : प्रधानाचार्य, श्री बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय; नोहर (राज.)